अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

प्रत्ययः ॥३।१।१॥

प्रत्ययः १।१॥ अर्थः—इतोऽग्रे आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः (५।४।१६० इति यावत्) 'प्रत्ययः' इति संज्ञात्वेनाधिक्रियते ॥ उदा०—कर्त्तव्यम, करणीयम् ॥

भाषार्थः—यहाँ से लेकर पञ्चमाध्याय की समाप्ति (५।४।१६०) पर्यन्त [प्रत्ययः] प्रत्यय संज्ञा का अधिकार जायेगा ॥ यह अधिकार तथा संज्ञा सूत्र दोनों ही है ॥

उदा०—कर्त्तव्यम्, करणीयम् (करना चाहिए) ॥

परश्च ॥३।१।२॥

परः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—यस्य प्रत्ययसंज्ञा विहिता स प्रत्ययः परश्च भवति, इत्यधिकारो वेदितव्य आपञ्चमाध्यायपरिसमाप्तेः ॥ उदा०—कर्त्तव्यम् । तैत्तिरीयम् ॥

भाषार्थः—जिसकी प्रत्यय संज्ञा कही है, [च] वह जिससे (धातु या प्रातिपदिक से) विधान किया जावे, उससे [परः] परे होता है । यह अधिकार भी पञ्चमाध्याय की समाप्ति (५।४।१६०) पर्यन्त जानना चाहिए ॥ अगले सूत्र ३।१।३ के परि० में उदाहरणों की सिद्धि स्वरसहित देखें ॥

आद्युदात्तश्च ॥३।१।३॥

आद्युदात्तः १।१॥ च अ० ॥ स०—आदिरुदात्तो यस्य स आद्युदात्तः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—यस्य प्रत्ययसंज्ञा विहिता सः प्रत्यय आद्युदात्तोऽपि भवति ॥ अधिकारसूत्रमिदं पञ्चमाध्यायपर्यन्तम्, परिभाषासूत्रं वा ॥ उदा—

कर्तव्यम्, तैत्तिरीयम् ।

भाषार्थः—जिसकी प्रत्यय संज्ञा कही है, वह [आद्युदात्तः] आद्युदात्त [च] भी होता है । यह भी अधिकारसूत्र है, पञ्चमाध्याय की समाप्तिपर्यन्त जायेगा ।

जहाँ जो प्रत्यय विधान किया जायेगा, उसको यह आद्युदात्त भी करता जायेगा। अथवा इसको परिभाषासूत्र भी माना जा सकता है॥

अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥३।१।४॥

अनुदात्तौ १।२॥ सुप्पितौ १।२॥ स०—सुप्च पिच्च सुप्पितौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०— प्रत्ययः॥ अर्थः— सुप्पितौ प्रत्ययौ अनुदात्तौ भवतः॥ पूर्वेणाद्युदात्ते प्राप्ते, अनुदात्तो विधीयते॥ उदा०—दृषदौ, दृषदः पित्—पचति, पठति॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र का यह अपवाद है। [सुप्पितौ] सुप् तथा पित् प्रत्यय [अनुदात्तौ] अनुदात्त होते है॥ यह भी अधिकार पञ्चमाध्यायपर्यन्त जानना चाहिए। अथवा—यह भी परिभाषासूत्र माना जा सकता है॥

गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥३।१।५॥

गुप्तिज्किद्भ्यः ५।३॥ सन् १।१॥ स०—गुप् च तिज् च कित् च गुप्तिज्कितः, तेभ्यो गुप्तिज्किद्भ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—गुप गोपने, तिज निशाने, कित निवासे रोगापनयने च, एतेभ्यो धातुभ्यः सन् प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—जुगुप्सते। तितिक्षते। चिकित्सति।

भाषार्थः—[गुप्तिज्किद्भ्यः] गुप तिज् कित् इन धातुओं से स्वार्थ में [सन्] सन् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है॥

उदा०—जुगुप्सते (निन्दा करता है), तितिक्षते (क्षमा करता है)। चिकित्सति (रोग का इलाज करता है)॥ इस सूत्र में कहे हुए वार्त्तिकों के कारण इन निर्दिष्ट अर्थों में ही इन धातुओं से सन् प्रत्यय होता है॥ सन्नन्त की सिद्धि हम बहुत बार दिखा चुके हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानें॥

यहाँ से 'सन्' की अनुवृत्ति ३।१।७ तक जायेगी॥

मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥३।१।६॥

मान्बधदान्शान्भ्यः ५।३॥ दीर्घः १।१॥ च अ०॥ अभ्यासस्य ६।१॥ स०—मान् च बधश्च दान् च मान्बधदान्शानः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अभ्यासस्य विकारः=आभ्यासस्तस्य आभ्यासस्य॥ अनु०—सन्, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—मान पूजायाम्, बध बन्धने, दान खण्डने, शान तेजने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः सन् प्रत्ययो भवति, अभ्यासविकारस्य च दीर्घादेशो भवति॥ उदा०—मीमांसते। बीभत्सते। दीदांसते। शीशांसते॥

भाषार्थः—[मान्…………भ्यः] मान् बध दान् और शान् धातुओं से सन् प्रत्यय होता है, [च] तथा [अभ्यासस्य] अभ्यास के विकार को अर्थात् अभ्यास को सन्यतः (७।४।७९) से इत्व करने के पश्चात् [दीर्घः] दीर्घ आदेश हो जाता है ॥

धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥३।१।७॥

धातोः ५।१॥ कर्मणः ६।१॥ समानकर्तृकात् ५।१॥ इच्छायाम् ७।१॥ वा अ०॥ स०—समानः कर्त्ता यस्य स समानकर्तृकः, तस्मात् समानकर्तृकात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सन्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इषिकर्मणोऽवयवो यो धातुः इषिणा समानकर्तृकः तस्मादिच्छायामर्थे वा सन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कर्त्तुमिच्छति = चिकीर्षति । हर्त्तुमिच्छति = जिहीर्षति । पठितुमिच्छति = पिपठिषति ॥

भाषार्थः - इच्छा क्रिया के [कर्मणः] कर्म का अवयव जो [धातोः] धातु [समानकर्तृकात्] इच्छा क्रिया का समानकर्तृक अर्थात् इष धातु के साथ समान कर्त्तावाला हो, उससे [इच्छायाम्] इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय [वा] विकल्प करके होता है ॥

उदाहरण में 'कर्त्तुम्' इच्छति क्रिया का कर्म है। सो कृ धातु से सन् प्रत्यय हुआ है। यहां 'कर्म का अवयव' कहने का प्रयोजन यह है कि 'प्रकर्त्तुम् इच्छति' आदि में जहां 'प्र' आदि विशेषण से युक्त 'कृ' कर्म हो, वहां कर्म के अवयव केवल कृ धातु से सन् प्रत्यय हो, सोपसर्ग से न हो। कर्त्तुं तथा इच्छति क्रिया का कर्त्ता एक ही देवदत्त है, इसलिए कृ धातु समानकर्तृक भी है। 'वा' कहने से पक्ष में 'कर्त्तुमिच्छति' ऐसा वाक्य भी प्रयोग में आता है। ऐसे ही अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना चाहिए ॥

चिकीर्षति की सिद्धि परिशिष्ट १।१।५७ के चिकीर्षकः के समान 'चिकीर्ष' बनाकर शप् तिप् लाकर जानें। अथवा—परि० १।२।९ में देखें ॥

यहां से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।२२ तक, तथा 'कर्मणः' की अनुवृत्ति ३।१।१० तक, और 'इच्छायाम्' की ३।१।९ तक जायेगी॥

क्यच्

सुप आत्मनः क्यच् ॥३।१।८॥

सुपः ५।१॥ आत्मनः ६।१॥ क्यच् १।१॥ अनु—कर्मणः, इच्छायाम्, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—एषितुः आत्मसम्बन्धिनः इषिकर्मणः सुबन्ताद् इच्छायामर्थे वा क्यच् प्रत्ययो भवति परश्च ॥ उदा०—आत्मनः पुत्रमिच्छति = पुत्रीयति ॥

भाषार्थः—इच्छा करनेवाले के [आत्मनः] आत्मसम्बन्धी इच्छा के [सुपः]

सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में विकल्प से [क्यच्] क्यच् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परिशिष्ट २।४।७१ में देखें ॥

यहाँ से 'सुप:' की अनुवृत्ति ३।१।११ तक, तथा 'आत्मन:' की ३।१।६ तक, एवं 'क्यच्' की अनुवृत्ति ३।१।१० तक जायेगी ॥

काम्यच्च ॥३।१।६॥ काम्यच्

काम्यच् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—सुप:, आत्मन:, कर्मण:, इच्छायाम्, वा, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—आत्मसम्बन्धिन: सुबन्तात्कर्मण: इच्छायामर्थे वा काम्यच् प्रत्ययो भवति परश्च ॥ उदा०—आत्मन: पुत्रमिच्छति=पुत्रकाम्यति । वस्त्रकाम्यति ॥

भाषार्थ:—आत्मसम्बन्धी सुबन्त कर्म से इच्छा अर्थ में विकल्प से [काम्यच्] काम्यच् प्रत्यय [च] भी होता है ॥ जब काम्यच् प्रत्यय पक्ष में नहीं होगा, तो विग्रहवाक्य रह जावेगा ॥ उदा०—आत्मन: पुत्रमिच्छति=पुत्रकाम्यति (अपने पुत्र की इच्छा करता है)। वस्त्रकाम्यति (अपने वस्त्र को चाहता है) ॥ पुत्रकाम्य की सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर पूर्ववत् शप् तिप् आकर—पुत्रकाम्यति बना है ॥

उपमानादाचारे ॥३।१।१०॥

उपमानात् ५।१॥ आचारे ७।१॥ अनु०—सुप:, क्यच्, कर्मण:, वा, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—उपमानवाचिन: सुबन्तात्कर्मण आचारेऽर्थे वा क्यच् प्रत्यय: परश्च भवति ॥ उदा०—पुत्रमिवाचरति अध्यापक: शिष्यम्=पुत्रीयति शिष्यम् । गर्दभमिवाचरति अश्वम्=गर्दभीयति ॥

भाषार्थ:—[उपमानात्] उपमानवाची सुबन्त कर्म से [आचारे] आचार अर्थ में विकल्प से क्यच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पुत्रमिवाचरति अध्यापक: शिष्यम्=पुत्रीयति शिष्यम् (अध्यापक पुत्र के समान शिष्य में आचरण करता है) । गर्दभमिवाचरति अश्वम्=गर्दभीयति (घोड़े के साथ गधे जैसा बरतता है) । सिद्धि २।४।७१ की तरह ही समझें ॥

यहाँ से 'सम्पूर्ण सूत्र' की अनुवृत्ति ३।१।११ तक जायेगी ॥

कर्त्तु: क्यङ् सलोपश्च ॥३।१।११॥ क्यङ्

कर्त्तु: ५।१॥ क्यङ् १।१॥ सलोप: १।१॥ च अ० ॥ स०—सस्य लोप:

सलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—उपमानादाचारे, सुपः, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपमानवाचिनः कर्त्तुः सुबन्तादाचारेऽर्थे वा क्यङ् प्रत्ययः परश्च भवति, तत्र च सकारान्तो यः शब्दस्तस्य सकारस्य वा लोपो भवति ॥ उदा०—श्येन इवाचरति काकः=श्येनायते । पण्डित इवाचरति मूर्खः=पण्डितायते । पुष्करमिवाचरति कुमुदं =कुमुदं पुष्करायते । पयायते तक्रम्, पयस्यते वा ॥

भाषार्थः—उपमानवाची सुबन्त [कर्त्तुः] कर्त्ता से आचार अर्थ में [क्यङ्] क्यङ् प्रत्यय विकल्प से होता है, तथा जो सकारान्त शब्द हों, उनके [सलोपः] सकार का लोप [च] भी विकल्प से हो जाता है ॥

उदा० — श्येनायते (कौआ बाज के समान आचरण करता है) । पण्डितायते (मूर्ख पण्डित के समान आचरण करता है) । पुष्करायते (नीला कमल सफेद कमल के समान खिल रहा है)। पयायते (मट्ठा दूध के समान आचरण करता है), पयस्यते । पयस् के सकार का लोप विकल्प से हो गया है । सिद्धि पुत्रीयति के समान ही है । क्यङ् के ङित् होने से आत्मनेपद अनुदात्तङित० (१।३।१२) से हो जाता है ॥

यहां से 'क्यङ्' की अनुवृत्ति ३।१।१८ तक जायेगी ॥

भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः ॥३।१।१२॥

भृशादिभ्यः ५।३॥ भुवि ७।१॥ अच्वेः ५।१॥ लोपः १।१॥ च अ० ॥ हलः ६।१॥ स०—भृश आदिर्येषां ते भृशादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः । न च्विः अच्विः, तस्मात् अच्वेः, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वा, क्यङ्, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अच्व्यन्तेभ्यो भृशादिभ्यः शब्देभ्यः भुवि=भवत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययः परश्च भवति, यश्च हलन्तः शब्दस्तस्य हलो लोपो भवति ॥ उदा०—अभृशो भृशो भवति=भृशायते । अशीघ्रः शीघ्रो भवति=शीघ्रायते, । अनुन्मनः उन्मनो भवति=उन्मनायते ॥

भाषार्थः—[अच्वेः] अच्व्यन्त [भृशादिभ्यः] भृशादि शब्दों से [भुवि] भू धातु के अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है, और उन भृशादि शब्दों के अन्तर्गत जो हलन्त शब्द हैं, उनके [हलः] हल् का [लोपः] लोप [च] भी होता है ॥ उदाहरणों में च्वि प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव (५।४।५०) है, अर्थात् जो भृश नहीं वह भृश होता है । सो यहां च्वि का अर्थ तो विद्यमान है, परन्तु ये शब्द च्व्यन्त नहीं हैं, अतः क्यङ् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा० — अभृशो भृशो भवति= भृशायते (जो अधिक नहीं वह अधिक होता है) । अशीघ्रः शीघ्रो भवति=शीघ्रायते (जो शीघ्रकारी नहीं वह शीघ्रकारी बनता है) । अनुन्मनः उन्मनो भवति=उन्मनायते (जिसका मन उखड़ा नहीं था, वह उखड़ सा गया है)॥

यहाँ से 'अच्वेः, भुवि' की अनुवृत्ति ३।१।१३ तक जायेगी ॥

लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥३।१।१३॥

लोहितादिडाज्भ्यः ५।३॥ क्यष् १।१॥ स०—लोहित आदिर्येषां ते लोहितादयः, लोहितादयश्च डाच् च लोहितादिडाचः, तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—भुवि, अच्वेः, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अच्व्यन्तेभ्यो लोहितादिभ्यः शब्देभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—अलोहितो लोहितो=भवति लोहितायते, लोहितायति । डाच्—पटपटायते, पटपटायति ॥

भाषार्थः—अच्व्यन्त [लोहितादिडाज्भ्यः] लोहितादि शब्दों से तथा डाच्-प्रत्ययान्त शब्दों से भू धातु के अर्थ में [क्यष्] क्यष् प्रत्यय होता है ॥ परि० १।३।९० में सिद्धियाँ देखें ॥

कष्टाय क्रमणे ॥३।१।१४॥

कष्टाय ४।१॥ क्रमणे ७।१॥ अनु०—क्यङ्, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चतुर्थीसमर्थात् कष्टशब्दात् क्रमणे=अनार्जवेऽर्थे वर्त्तमानात् क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कष्टाय (कर्मणे) क्रामति=कष्टायते ॥

भाषार्थः—चतुर्थी समर्थ [कष्टाय] कष्ट शब्द से [क्रमणे] क्रमण = कुटिलता अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥

कष्ट शब्द के चतुर्थी विभक्ति से निर्दिष्ट होने से ही चतुर्थी-समर्थ ऐसा अर्थ यहाँ लिया गया है ॥ उदा०—कष्टाय (कर्मणे) क्रामति=कष्टायते (क्लिष्ट कार्य में कुटिलतापूर्वक प्रवृत्त होता है) ॥

कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ॥३।१।१५॥

कर्मणः ५।१॥ रोमन्थतपोभ्यां ५।२॥ वर्त्तिचरोः ७।२॥ स०—रोमन्थश्च तपश्च रोमन्थतपसी, ताभ्यां·········, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । वर्त्तिश्च चर् च वर्त्तिचरौ, तयोः वर्त्तिचरोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यङ्, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—रोमन्थशब्दात्तपःशब्दाच्च कर्मणो यथाक्रमं वर्त्तिचरोरर्थयोः क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—रोमन्थं वर्त्तयति=रोमन्थायते गौः । तपश्चरति=तपस्यति ॥

भाषार्थः—[रोमन्थतपोभ्याम्] रोमन्थ तथा तप [कर्मणः] कर्म से यथासङ्ख्य करके [=वर्त्तिचरोः] वर्त्ति (वर्त्तनं वर्त्तिः) तथा चरि (=चरणं चरिः) अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ अकृत्सार्वधातु० (७।४।२५) से रोमन्थायते में दीर्घ होगा ॥ क्यङ् के ङित् होने से तपस्यति में अनुदात्तङित० (१।३।१२) से आत्मनेपद ही प्राप्त था,

सो तपसः परस्मैपदं च (वा० १।३।१५) इस वार्त्तिक से परस्मैपद हो गया है ॥
उदा०—रोमन्थायते गौः (गौ जुगाली करती है) । तपस्यति (तपस्या करता है) ॥

यहाँ से 'कर्मणः' की अनुवृत्ति ३।१।२१ तक जायेगी ॥

बाष्पोष्मभ्यामुद्वमने ॥३।१।१६॥

बाष्पोष्मभ्याम् ५।२॥ उद्वमने ७।१॥ स०—बाष्पश्च ऊष्मा च बाष्पोष्माणौ, ताभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणः, क्यङ्, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मभ्यां बाष्पोष्मशब्दाभ्यामुद्वमनेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—बाष्पमुद्वमति = बाष्पायते कूपः । ऊष्माणमुद्वमति = ऊष्मायते मनुष्यः ॥

भाषार्थः—[बाष्पोष्मभ्याम्] बाष्प और ऊष्म कर्म से [उद्वमने] उद्वमन अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥

उदा०—बाष्पायते कूप (कूआ भाप को ऊपर फेंकता है) । ऊष्मायते मनुष्यः (मनुष्य मुख से गरम वायु निकालता है)॥

उदाहरणों में अकृत्सार्वधातुकयो० (७।४।२५) से दीर्घ होता है ॥ ऊष्मायते में ऊष्मन् की नः क्ये: (१।४।१५) से पद संज्ञा होकर न लोपः प्राति० (८।२।७) से नकार का लोप हो जाता है ॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥३।१।१७॥

शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः ५।३॥ करणे ७।१॥ स०—शब्दश्च वैरं च कलहश्च अभ्रश्च कण्वञ्च मेघश्च शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघाः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणः, क्यङ्, वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शब्दः वैर कलह अभ्र कण्व मेघ इत्येतेभ्यः कर्मभ्यः करणे=करोत्यर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शब्दं करोति=शब्दायते । वैरं करोति=वैरायते । कलहं करोति=कलहायते । अभ्रायते सूर्यः । कण्वायते । मेघायते सूर्यः ॥

भाषार्थः—[शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः] शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व, मेघ, इन कर्म शब्दों से [करणे] करण अर्थात् करोति के अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शब्दायते (शब्द करता है)। वैरायते (वैर करता है) । कलहायते कलह करता है) । अभ्रायते सूर्यः (सूर्य बादल बनाता है) । कण्वायते (पाप करता है) । मेघायते सूर्यः (सूर्य बादल बनाता है)॥ यहां सर्वत्र सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से धातु संज्ञा, तथा क्यङ् के ङित् होने से आत्मनेपद होता है । इसी प्रकार सर्वत्र दीर्घ भी जानें ॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।१।२१ तक जायेगी ॥

सुखादिभ्यः कर्त्तृ वेदनायाम् ।।३।१।१८।।

सुखादिभ्यः ५।३।। कर्त्तृ लुप्तषष्ठ्यन्तनिर्देशः ।। वेदनायाम् ७।१।। स०—सुखम् आदि येषां तानि सुखादीनि, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ।। अनु०—कर्मणः, क्यङ्, वा, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—सुखादिभ्यः कर्मभ्यः वेदनायाम्=अनुभवेऽर्थे क्यङ् प्रत्ययो भवति, वेदयितुश्चेत् कर्त्तुः सम्बन्धीनि सुखादीनि भवन्ति ।। उदा०—सुखं वेदयते=सुखायते । दुःखायते ।।

भाषार्थः—[सुखादिभ्यः] सुखादि कर्मों से [वेदनायाम्] वेदना अर्थात् अनुभव करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय होता है, यदि सुखादि वेदयिता [कर्त्तृ] कर्त्ता-सम्बन्धी ही हों, अर्थात् जिसको सुख हो अनुभव करनेवाला भी वही हो, कोई अन्य नहीं ।। उदाहरण में उसी देवदत्त को सुख है, और अनुभव करनेवाला भी वही है। पूर्ववत् उदाहरणों में दीर्घ होता है ।।

उदा०—सुखायते (सुख का अनुभव करता है) । दुःखायते (दुःख का अनुभव करता है) ।।

नमोवरिवश्चित्रङः क्यच् ।।३।१।१९।।

नमोवरिवश्चित्रङः ५।१।। क्यच् १।१।। स०—नमश्च वरिवश्च चित्रङ् च नमोवरिवश्चित्रङ्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—करणे, कर्मणः, वा, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—नमस् वरिवस् चित्रङ् इत्येतेभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे क्यच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—नमः करोति देवेभ्यः=नमस्यति देवान् । वरिवः करोति=वरिवस्यति गुरून् । चित्रं करोति=चित्रीयते ।।

भाषार्थः—[नमोवरिवश्चित्रङः] नमस्, वरिवस्, चित्रङ् इन कर्मों से करोति के अर्थ में [क्यच्] क्यच् प्रत्यय होता है ।। क्यच् तथा क्यङ् प्रत्यय में यही भेद है कि क्यच् करने से परस्मैपद, तथा क्यङ् में आत्मनेपद होगा । चित्रङ् शब्द में ङित् करने से आत्मनेपद ही होता है ।। उदा०—नमस्यति देवान् (देवों को नमस्कार करता है) । वरिवस्यति गुरून् (गुरुओं की सेवा करता है) । चित्रीयते (आश्चर्य करता है) ।।

पुच्छभाण्डचीवराण्णिङ् ।।३।१।२०।।

पुच्छभाण्डचीवरात् ५।१।। णिङ् १।१।। स०—पुच्छञ्च भाण्डश्च चीवरञ्च पुच्छ-भाण्डचीवरम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—करणे, कर्मणः, वा, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—पुच्छ भाण्ड चीवर इत्येतेभ्यः कर्मभ्यो णिङ् प्रत्ययो भवति करणविशेषे ।।

उदा०—पुच्छं उदस्यति=उत्पुच्छयते गौः। परिपुच्छयते। भाण्डं समाचिनोति=सम्भाण्डयते। चीवरं परिदधाति=सञ्चीवरयते भिक्षुः॥

भाषार्थः—[पुच्छभाण्डचीवरात्] पुच्छ, भाण्ड, चीवर इन कर्मों से [णिङ्] णिङ् प्रत्यय होता है, क्रियाविशेष को कहने में॥ उदा०—उत्पुच्छयते गौः (गौ पूँछ उठाती है)। परिपुच्छयते (गौ पूँछ चारों तरफ चलाती है)। सम्भाण्डयते (बर्त्तनों को ठीक से रखता है)। सञ्चीवरयते भिक्षुः (भिक्षु कपड़े पहनता है)॥ उदाहरणों में ङित् होने से आत्मनेपद होता है। सिद्धि णिजन्त की सिद्धियों के समान है॥

मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृततूस्तेभ्यो णिच् ॥३।१।२१॥

मुण्ड.....तूस्तेभ्यः ५।३॥ णिच् १।१॥ स०—मुण्डश्च मिश्रश्च श्लक्ष्णश्च लवणञ्च व्रतञ्च वस्त्रञ्च हलश्च कलश्च कृतञ्च तूस्तञ्च मुण्ड.....तूस्तानि, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्मणः, करणे, वा, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त इत्येतेभ्यः कर्मभ्यः करोत्यर्थे णिच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—मुण्डं करोति=मुण्डयति। मिश्रयति। श्लक्ष्णयति। लवणयति। पयो व्रतयति। वस्त्रमाच्छादयति=संवस्त्रयति। हलिं गृह्णाति=हलयति। कलिं गृह्णाति=कलयति। निपातनादकारः, स च सन्वद्भावनिषेधार्थः। कृतं गृह्णाति=कृतयति। तूस्तानि विहन्ति=वितूस्तयति केशान्॥

भाषार्थः—[मुण्ड.....तूस्तेभ्यः] मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, तूस्त इन कर्मों से करोत्यर्थ में [णिच्] णिच् प्रत्यय होता है॥ लवण व्रत वस्त्रादि शब्द अकारान्त हैं। सो अतो लोपः (६।४।४८) से अकार लोप होकर यथाप्राप्त वृद्धि या गुण जब करने लगेंगे, तो अकार स्थानिवत् (१।१।५५) हो जायेगा॥ उदा०—मुण्डयति (मुण्डन करता है)। मिश्रयति मिश्रण करता है)। श्लक्ष्णयति (चिकना करता है)। लवणयति (नमकीन बनाता है)। पयो व्रतयति (दूध का व्रत करता है)। संवस्त्रयति (वस्त्र से ढांपता है)। हलयति (बड़े हल को पकड़ता है)। कलयति (कलि नामक पाश को पकड़ता है)। कृतयति (फल को ग्रहण करता है)। विस्तूस्तयति केशान् (जटाओं को अलग-अलग करता है)॥

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ् ॥३।१।२२॥

धातोः ५।१॥ एकाचः ५।१॥ हलादेः ५।१॥ क्रियासमभिहारे ७।१॥ यङ् १।१॥ स०—एकोऽच् यस्मिन् स एकाच्, तस्मात्, बहुव्रीहिः। हल् आदिर्यस्य स हलादिः, तस्मात् हलादेः, बहुव्रीहिः। क्रियायाः समभिहारः क्रियासमभिहारः, तस्मिन्,

षष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अनु०**—वा, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—एकाज् यो धातुर्हलादिः तस्मात् क्रियासमभिहारे=पौनःपुन्येऽर्थे भृशार्थे वा वर्त्तमानाद् यङ् प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ **उदा०**—पुनः पुनः पचति=पापच्यते, पापठ्यते। भृशं ज्वलति=जाज्वल्यते, देदीप्यते ॥

भाषार्थः—[क्रियासमभिहारे] **क्रियासमभिहार अर्थात् बार-बार करने अर्थ में, वा भृशार्थ=अतिशय में वर्त्तमान** [एकाचः] **एक अच्वाली जो** [हलादेः] **हलादि** [धातोः] **धातु उससे विकल्प से** [यङ्] **यङ् प्रत्यय होता है ॥**

यहाँ से 'यङ्' की अनुवृत्ति ३।१।२४ तक जायेगी, तथा 'धातोः' का अधिकार ३।१।९० तक जायेगा ॥

नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥३।१।२३॥

नित्यम् १।१॥ कौटिल्ये ७।१॥ गतौ ७।१॥ **अनु०**—धातोः, यङ्, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यो नित्यं कौटिल्ये गम्यमाने यङ् प्रत्ययो भवति, न तु समभिहारे ॥ **उदा०**—कुटिलं क्रामति=चङ्क्रम्यते । दन्द्रम्यते ॥

भाषार्थः—[गतौ] **गत्यर्थक धातुओं से** [नित्यम्] **नित्य** [कौटिल्ये] **कुटिल गति गम्यमान होने पर ही यङ् प्रत्यय होता है, समभिहार में नहीं ॥**

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति ३।१।२४ तक जायेगी ॥

लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम् ॥३।१।२४॥

लुपसद···गृभ्यः ५।३॥ भावगर्हायाम् ७।१॥ **स०**—लुपसद० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः । भावस्य गर्हा भावगर्हा, तस्यां भावगर्हायाम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अनु०**—नित्यं, धातोः, यङ्, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो नित्यं भावगर्हायां=धात्वर्थगर्हायां यङ् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—गर्हितं लुम्पति=लोलुप्यते । सासद्यते । चञ्चूर्यते । जञ्जप्यते । जञ्जभ्यते । दन्दह्यते । दन्दश्यते । निजेगिल्यते ॥

भाषार्थः—[लुपसद······गृभ्यः] **लुप, सद, चर, जप, जभ, दह, दश, गृ इन धातुओं से नित्य**[भावगर्हायाम्] **भाव की निन्दा अर्थात् धात्वर्थ की निन्दा में ही यङ् प्रत्यय होता है ॥ लोलुप्यते में लोप करनेवाला अर्थात् काटनेवाला निन्दित नहीं है, अपितु उसके काटने में ही निन्दा है । वह काटना क्रिया खराब ढंग से करता है, सो भावगर्हा है ॥**

सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचूर्ण-चुरादिभ्यो णिच् ॥३।१।२५॥

सत्याप·········चूर्णचुरादिभ्यः ५।३॥ णिच् १।१॥ स०—चुर् आदिर्येषां ते चुरादयः। सत्यापश्च पाशश्च रूपं च वीणा च तूलश्च श्लोकश्च सेना च लोम च त्वचं च वर्म च वर्ण च चूर्णं च चुरादयश्च सत्यापपाश·········चुरादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण इत्येतेभ्यः शब्देभ्यः, चुरादिभ्यश्च धातुभ्यो[1] णिच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सत्यम् आचष्टे सत्यापयति। विपाशयति। रूपयति। वीणया उपगायति=उपवीणयति। तूलेन अनुकुष्णाति=अनुतूलयति। श्लोकैरुपस्तौति=उपश्लोकयति, सेनयाऽभियाति=अभिषेणयति। लोमान्यनुमार्ष्टि=अनुलोमयति। त्वचं गृह्णाति=त्वचयति। वर्मणा संनह्यति=संवर्मयति। वर्णं गृह्णाति=वर्णयति। चूर्णैरवध्वंसयति=अवचूर्णयति ॥ चुरादिभ्यः—चोरयति। चिन्तयति ॥

भाषार्थः—[सत्याप······चुरादिभ्यः] **सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण इन शब्दों, तथा चुरादि (धातुपाठ में पढ़ी) धातुओं से [णिच्] णिच प्रत्यय होता है॥ उदा०—सत्यापयति (सत्य कहता है)। विपाशयति (बन्धन से छुड़ाता है)। रूपयति (दर्शाता है)। उपवीणयति (वीणा से गाता है)। अनुतूलयति (रूई के द्वारा कान के मैल आदि को खींचता है)। उपश्लोकयति (श्लोकों से स्तुति करता है)। अभिषेणयति (सेना से चढ़ाई करता है)। अनुलोमयति (बालों को साफ करता है)। त्वचयति (दालचीनी को पकड़ता है)। संवर्मयति (कवच सहित तैयार होता है)। वर्णयति (रंग पकड़ता है)। अवचूर्णयति (चूर्ण से किसी वस्तु का नाश करता है)॥ चुरादियों से—चोरयति (चुराता है)। चिन्तयति (चिन्ता करता है)॥ चुर् को प्रथम भूवादयो० (१।३।१) से धातु संज्ञा करके 'चोरि' बनाकर, पुनः सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा हुई। तत्पश्चात् पूर्ववत् शप् तिप् आकर शप् को निमित्त मानकर सार्वधातु०(७।३।८४)से 'रि' को 'रे' गुण, तथा अयादेश होकर 'चोरयति' बना॥ चुरादिगण में सर्वत्र एक बार भूवादयो० से धातु संज्ञा होकर, णिच् प्रत्यय लाकर, पुनः सनाद्यन्ता धातवः से धातु संज्ञा हुआ करेगी। सत्यापयति आदि में तो पूर्ववत् ही प्रथम प्रातिपदिक संज्ञा होकर णिच् लाकर**

---

१. धातोः का अधिकार आते हुए भी यहाँ चुरादियों के साथ ही धातु का सम्बन्ध बैठता है, सत्यापपाश० आदि के साथ नहीं। क्योंकि सत्याप आदि शब्द प्रातिपदिक हैं, तथा चुरादि धातुएं हैं॥

सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा "सत्यापि" की हुई है । पूर्ववत् शप् तिप् आकर, गुण अयादेश करके 'सत्यापयति' आदि बनेगा ॥

यहाँ से 'णिच्' की अनुवृत्ति ३।१।२६ तक जायेगी ॥

हेतुमति च ।।३।१।२६।।

हेतुमति ७।१।। च अ० ।। अनु०--णिच्, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—स्वतन्त्रस्य कर्त्तुः प्रयोजको हेतुः । तत्प्रयोजको हेतुश्च (१।४।५५) इत्यनेन हेतुसंज्ञा भवति । हेतुरस्यास्तीति हेतुमान्, हेतोः व्यापारः प्रेषणादिलक्षणः । तस्मिन् हेतुमति अभिधेये धातोर्णिच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—देवदत्तः कटं करोति यज्ञदत्तः तं प्रेरयति = कटं कारयति देवदत्तेन यज्ञदत्तः । ओदनं पाचयति ।।

भाषार्थः—स्वतन्त्र कर्त्ता के प्रयोजक को 'हेतु' कहते हैं । उसका जो प्रेषणादि-लक्षण व्यापार वह हेतुमान् हुआ, उसके अर्थात् [हेतुमति] हेतुमान् के अभिधेय होने पर [च] भी धातु से णिच् प्रत्यय होता है ।। चटाई बनाते हुए देवदत्त को यज्ञदत्त के द्वारा प्रेषण(=प्रेरणा)दिया जा रहा है कि चटाई बनाओ । सो उदाहरण में हेतुमत् अभिधेय है, अतः णिच् प्रत्यय कृ तथा पच् धातुओं से हो गया ।। उदा०—देवदत्तः कटं करोति यज्ञदत्तः तं प्रेरयति = कटं कारयति देवदत्तेन यज्ञदत्तः (यज्ञदत्त देवदत्त से चटाई बनवा रहा है) । ओदनं पाचयति (चावल पकवा रहा हैं) ।। सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है ।।

कण्ड्वादिभ्यो यक् ।।३।१।२७।।

कण्ड्वादिभ्यः ५।३।। यक् १।१।। स०—कण्डूः आदिर्येषां ते कण्ड्वादयः, तेभ्यः कण्ड्वादिभ्यः, बहुव्रीहिः ।। अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कण्ड्वादिभ्यो धातुभ्यो यक् प्रययो भवति ।। उदा०—कण्डूयति, कण्डूयते । मन्तूयति ।।

भाषार्थः—[कण्ड्वादिभ्यः] कण्ड्वादि धातुओं से [यक्] यक् प्रत्यय होता है ।। कण्ड्वादि धातु तथा प्रातिपदिक दोनों हैं । सो धातोः का अधिकार होने से यहाँ कण्ड्वादि धातु ही ली गई हैं ।। उदा०—कण्डूयति (खुजली करता है), कण्डूयते । मन्तूयति(अपराध करता है) ।। स्वरितञितः० (१।३।७२) से कण्डूयति में उभयपद होता है ।। मन्तु को दीर्घ अकृत्सार्व० (७।४।२५) से होता हैं ।। कण्डूय, मन्तूय की सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर शप तिप् आ ही जायेंगे ।।

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥३।१।२८॥

गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः ५।३॥ आयः १।१॥ स०—गुपूश्च धूपश्च विच्छिश्च पणिश्च पनिश्च गुपूधूपविच्छिपणिपनयः, तेभ्यः……, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गुपू, धूप, विच्छ, पण व्यवहारे स्तुतौ च, पन च इत्येतेभ्यो धातुभ्य आयः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गोपायति । धूपायति । विच्छायति । पणायति । पनायति ॥

भाषार्थः—[गुपूधूपविच्छिपणिपनिभ्यः] गुपू, धूप, विच्छि, पणि, पनि इन धातुओं से [आयः] आय प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गोपायति (रक्षा करता है)। धूपायति (पीड़ा देता हैं) । विच्छायति (चलता है) । पणायति (स्तुति करता है)। पनायति (स्तुति करता हैं) ॥ गुपू में ऊकार अनुबन्ध है । लघूपध गुण होकर 'गोपाय' धातु बन गई । पुनः शप् तिप् आकर गोपायति बना है ॥

ऋतेरीयङ् ॥३।१।२९॥

ऋतेः ५।१॥ ईयङ् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऋतिधातोः ईयङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऋतीयते, ऋतीयेते ॥

भाषार्थः—[ऋतेः] ऋति धातु से [ईयङ्]ईयङ् प्रत्यय होता है ॥उदा०—ऋतीयते (घृणा करता हैं) ॥ ऋत्+ईय=ऋतीय की (३।१।३२) से धातु संज्ञा होकर शप् त आ गये हैं । आत्मनेपद अनुदात्तङित० (१।३।१२) से हो गया है ॥

विशेषः—ऋति धातु धातुपाठ में नहीं पढ़ी हैं । यह सौत्र धातु घृणा अर्थ में है । जो धातु सूत्रपाठ (अष्टाध्यायी) में पढ़ी होती हैं, धातुपाठ में नहीं, उसे सौत्र धातु कहते हैं ॥

कमेर्णिङ् ॥३।१।३०॥

कमेः ५।१॥ णिङ् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कमुधातोर्णिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कामयते, कामयेते, कामयन्ते ॥

भाषार्थः—[कमेः] कमु कान्तौ धातु से [णिङ्] णिङ् प्रत्यय होता है ॥ ङकार अनुबन्ध आत्मनेपदार्थं है, तथा णकार अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि करने के लिये है ॥ कमु में उकार अनुबन्ध है ॥

उदा०—कामयते (कामना करता है) ॥

आयादय आर्धधातुके वा ॥३।१।३१॥

आयादयः १।३॥ आर्धधातुके ७।१॥ वा अ० ॥ स०—आय आदिर्येषां ते

आयादयः, बहुव्रीहिः ।। अनु०—प्रत्ययः ।। अर्थः—आयादयः प्रत्ययाः आर्धधातुकविषये विकल्पेन भवन्ति ।। नित्यप्रत्ययप्रसङ्गे तदुत्पत्तिरार्धधातुकविषये विकल्प्यते ।। उदा०—गोप्ता, गोपिता, गोपायिता । अर्तिता, ऋतीयिता । कमिता, कामयिता ।।

भाषार्थः—[आयादयः] आयादि प्रत्यय अर्थात् आय ईयङ् णिङ् प्रत्यय जिन-जिन धातुओं से कहे हैं, उनसे [आर्धधातुके] आर्धधातुक विषय की विवक्षा हो, तो वे प्रत्यय [वा] विकल्प से होंगे । नित्य प्रत्यय की उत्पत्ति प्राप्त थी, सो विकल्प कर दिया ।। यहाँ 'आर्धधातुके' में विषयसप्तमी है ।।

सनाद्यन्ता धातवः ।।३।१।३२।।

सनाद्यन्ताः १। ।। धातवः १।३।। स०—सन् आदिर्येषां ते सनादयः, बहुव्रीहिः । सनादयोऽन्ते येषां ते सनाद्यन्ताः, बहुव्रीहिः ।। अर्थः—सनाद्यन्ता समुदायाः धातुसंज्ञका भवन्ति ।। उदा०—चिकीर्षति, पुत्रीयति, पुत्रकाम्यति ।।

भाषार्थः—सन् जिनके आदि में है, वे सनादि प्रत्यय कहलाए । अर्थात् गुप्तिज्किद्भ्यः सन् (३।१।५) के सन् से लेकर प्रकृत सूत्र तक जितने क्यच् काम्यच् क्यङ् णिङ् आदि प्रत्यय हैं, वे सब सनादि हुए । वे सनादि प्रत्यय हैं अन्त में जिस शब्द के, वह सारा समुदाय (=सनादि अन्तवाला) सनाद्यन्त हुआ । उस [सनाद्यन्ताः] सनाद्यन्त समुदाय की [धातवः] धातु संज्ञा होती है ।। पिछले सारे सूत्रों के उदाहरण इस सूत्र के उदाहरण बनेंगे । इस प्रकरण में प्रातिपदिकों एवं सुबन्तों से भी (यथा लोहित, भृश, पुत्र आदि से) प्रत्यय की उत्पत्ति करके, पुनः प्रत्ययान्त की प्रकृत सूत्र से धातु संज्ञा कर दी जाती है, जिससे प्रातिपदिक भी तिङन्त बन जाते हैं । अतः उन्हें नामधातु कहते हैं, क्योंकि वे नाम से ही तिङन्त बनते हैं ।।

स्यतासी लृलुटोः ।।३।१।३३।।

स्यतासी १।२।। लृलुटोः ७।२।। स०—स्यश्च तासिश्च स्यतासी, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । लृ च लुट् च लृलुटौ, तयोः लृलुटोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—लृ इत्यनेन लृट्लृङोः द्वयोरपि ग्रहणम् ।। लृलुटोः परतो धातोः स्यतासी प्रत्ययौ यथाक्रमं भवतः ।। उदा०—करिष्यति ।अकरिष्यत् । लुट्—कर्त्ता, पठिता ।।

भाषार्थः—लृ से यहाँ लृट् लृङ् दोनों लकारों का ग्रहण है ।। धातु से [लृलुटोः] लृ (=लृट्, लृङ्) तथा लुट् परे रहते यथासंख्य करके [स्यतासी] स्य तास् प्रत्यय हो जाते हैं ।। सिद्धियाँ पहले कई बार आ चुकी हैं ।।

सिब्बहुलं लेटि ॥३।१।३४॥

सिप् १।१॥ बहुलम् १।१॥ लेटि ७।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लेटि परतो धातोर्बहुलं सिप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भविषति, भविषाति। भविषत्, भविषात्। भविषद्, भविषाद् ॥ भाविषति, भाविषाति। भाविषत्, भाविषात्। भाविषद्, भाविषाद् ॥ न च भवति—भवति, भवाति। भवत्, भवात्। भवद्, भवाद् ॥ एवं तसि—भविषतः, भविषातः। भाविषतः, भाविषातः। भवतः, भवातः ॥ झि—भविषन्ति, भविषान्ति। भविषन्, भविषान्। भाविषन्ति, भाविषान्ति। भाविषन्, भाविषान्। भवन्ति, भवान्ति। भवन्, भवान् ॥ सिपि—भविषसि, भविषासि। भविषः, भविषाः। भाविषसि, भाविषासि। भाविषः, भाविषाः। भवसि, भवासि। भवः, भवाः ॥ थसि—भविषथः, भविषाथः। भाविषथः, भाविषाथः। भवथः, भवाथः ॥ थ—भविषथ, भविषाथ। भाविषथ, भाविषाथ। भवथ, भवाथ ॥ मिपि—भविषमि, भविषामि। भविषम्, भविषाम्। भाविषमि, भाविषामि। भाविषम्। भाविषाम्। भवमि, भवामि। भवम्, भवाम् ॥ वसि—भविषवः, भविषावः। भविषव, भविषाव। भाविषवः, भाविषावः। भाविषव, भाविषाव। भववः, भवावः। भवव, भवाव ॥ मसि—भविषमः, भविषामः। भविषम, भविषाम। भाविषमः, भाविषामः। भाविषम, भाविषाम। भवमः, भवामः। भवम, भवाम ॥

जोषिषत्, तारिषत्, मन्दिषत्। न च भवति—पताति विद्युत् (ऋ० ७।२५।१)। उदधि च्यावयाति (तुलना—अथर्व० १०।१।१३; तै० ब्रा० १।६।४।५; तां० ब्रा० ६।१०।१६, ११।८।११, १३।५।१३ सर्वत्र तत्सदृश एव पाठो न तु पूर्णः)। जीवाति शरदः शतम् (ऋ० १०।८५।३९)। स देवाँ एह वक्षति (ऋ० १।१।२) ॥

भाषार्थः—[लेटि] लेट् लकार परे रहते धातु से [बहुलम्] बहुल करके [सिप्] सिप् प्रत्यय होता है ॥ उदाहरणों में भू धातु के सम्भावित रूप दिखाये गये हैं। जोषिषत् आदि उपलभ्यमान उदाहरण हैं ॥

कास्प्रत्ययादाममन्त्रे लिटि ॥३।१।३५॥

कास्प्रत्ययात् ५।१॥ आम् १।१॥ अमन्त्रे ७।१॥ लिटि ७।१॥ स०—कास् च प्रत्ययश्च कास्प्रत्ययम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः। न मन्त्रः अमन्त्रः, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कासृ शब्दकुत्सायाम् तस्मात् प्रत्ययान्ताच्च धातोः 'आम्' प्रत्ययो भवति लिटि परतः अमन्त्रविषये=लौकिकप्रयोगविषये ॥ उदा०—कासाञ्चक्रे। लोलूयाञ्चक्रे, पोपूयाञ्चक्रे ॥

भाषार्थः—[कास्प्रत्ययात्] 'कासृ शब्दकुत्सायाम्' धातु से, तथा प्रत्ययान्त

धातुओं से [लिटि] लिट् लकार परे रहते [आम्] आम् प्रत्यय होता है, यदि [अमन्त्रे] मन्त्रविषयक अर्थात् वेदविषयक प्रयोग न हो ।। उदा०—कासाञ्चक्रे (वह खाँसा)। लोलूयाञ्चक्रे (उसने बार-बार काटा), पोपूयाञ्चक्रे (बार-बार पवित्र किया) ।।

सिद्धि परिशिष्ट १।३।६३ के समान समझें । परले लोलूय की सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा करके, परि० १।१।४ के समान सिद्धि कर ली जावेगी। अब यह लोलूय धातु यङ् प्रत्ययान्त हो गई। सो आम् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से आकर लोलूयाञ्चक्रे परि० १।३।६३ के समान बनेगा ।।

यहाँ से 'आम्' की अनुवृत्ति ३।१।४० तक, तथा 'अमन्त्रे लिटि' की अनुवृत्ति ३।१।३६ तक जावेगी ।।

इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ।।३।१।३६।।

इजादेः ५।१।। च अ० ।। गुरुमतः ५।१।। अनृच्छः ५।१।। स०—इच् आदिर्यस्य स इजादिः, तस्मात्, बहुव्रीहिः । गुरुः वर्णो विद्यतेऽस्मिन् इति गुरुमान्, तस्मात् गुरुमतः, तदस्यास्त्य० (५।२।६४) इत्यनेन मतुप् प्रत्ययः । न ऋच्छ् अनृच्छ्, तस्मात्, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—आममन्त्रे लिटि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् तस्मात् आम् प्रत्ययो भवति, अमन्त्रे लिटि परतः ऋच्छधातुं वर्जयित्वा ।। उदा०—ईहाञ्चक्रे, ऊहाञ्चक्रे ।।

भाषार्थः—[इजादेः] इजादि [च] तथा [गुरुमतः] गुरुमान् जो धातु उससे आम् प्रत्यय हो जाता है, लौकिक प्रयोग विषय में लिट् परे रहते, [अनृच्छः] ऋच्छ् धातु को छोड़कर ।। ईह चेष्टायाम्, ऊह वितर्के धातुएं इजादि हैं, तथा दीर्घं च (१।४।१२) से गुरु संज्ञा होने से गुरुमान् भी हैं। सो आम् प्रत्यय प्रकृत सूत्र से हो गया। ऋच्छ् धातु भी इजादि, तथा संयोगे गुरु (१।४।११) से गुरु संज्ञा होने से गुरुमान् भी थी, सो आम् प्रत्यय की प्राप्ति थी, पर अनृच्छः कहने से निषेध हो गया।। परि० १।३।६३ में सिद्धि देखें ।।

दयायासश्च ।।३।१।३७।।

दयायासः ५।१।। च अ० ।। स०—दयश्च अयश्च आस् च दयायास्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—आममन्त्रे लिटि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—'दय दानगतिरक्षणेषु', 'अय गतौ', 'आस उपवेशने' इत्येतेभ्यो धातुभ्यो लिटि परतोऽमन्त्रे विषये आम् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—दयाञ्चक्रे । पलायाञ्चक्रे । आसाञ्चक्रे ।।

भाषार्थः—[दयायासः] दय अय तथा आस धातुओं से [च] भी अमन्त्रविषयक लिट् लकार परे रहते आम् प्रत्यय हो जाता है ॥ इन धातुओं के इजादि एवं गुरुमान् न होने से पूर्व सूत्र से आम् की प्राप्ति नहीं थी, सो विधान कर दिया ॥ उदा०—दयाञ्चक्रे (उसने रक्षा की)। पलायाञ्चक्रे (वह भाग गया)। आसाञ्चक्रे (वह बैठा) ॥ पलायाञ्चक्रे में परा पूर्वक अय धातु से आम् प्रत्यय हुआ है। उपसर्गस्यायतौ (८।२।१९) से र् को ल् हो गया है। शेष सब सिद्धि परि० १।३।६३ के समान ही जानें ॥

उषविदजागृभ्योऽन्यतरस्याम् ॥३।१।३८॥

उषविदजागृभ्यः ५।३॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ स०—उषश्च विदश्च जागृ च उषविदजाग्रः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—आममन्त्रे लिटि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥अर्थः—'उष दाहे', 'विद ज्ञाने', 'जागृ निद्राक्षये' इत्येतेभ्यो धातुभ्योऽमन्त्रे विषये लिटि परत आम् प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ उदा०—ओषाञ्चकार, उवोष। विदाञ्चकार, विवेद। जागराञ्चकार, जजागार ॥

भाषार्थः—[उषविदजागृभ्यः] उष विद तथा जागृ धातुओं से [अन्यतरस्याम्] विकल्प से अमन्त्र विषय में लिट् परे रहते आम् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'बहुलम्' की अनुवृत्ति ३।१।३९ तक जाती है ॥

भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ॥३।१।३९॥

भीह्रीभृहुवाम् ६।३॥ श्लुवत् अ० ॥ च अ० ॥ स०—भीश्च ह्रीश्च भृ च हुश्च भीह्रीभृहुवः, तेषां, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ श्लौ इव श्लुवत् ॥ अनु०—अन्यतरस्याम्, आममन्त्रे लिटि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'ञिभी भये', 'ह्री लज्जायाम्', 'डुभृञ् धारणपोषणयोः', 'हु दानादनयोः' इत्येतेभ्यो धातुभ्योऽमन्त्रे लिटि परतो विकल्पेन आम् प्रत्ययो भवति, श्लुवच्च एषां कार्यं भवति ॥ उदा०—बिभयाञ्चकार, बिभाय। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय। बिभराञ्चकार, बभार। जुहवाञ्चकार, जुहाव ॥

भाषार्थः—[भीह्रीभृहुवाम्] भी, ह्री, भृ, हु इन धातुओं से अमन्त्रविषयक लिट् परे रहते विकल्प से आम् प्रत्यय होता है, [च] तथा इनको [श्लुवत्] श्लुवत् कार्य, अर्थात् श्लु के परे रहते जो कार्य होने चाहियें, वे भी हो जाते हैं ॥ श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व, तथा भृञामित् (७।४।७६) से इत्व करना ही श्लुवत् कार्य हैं ॥ उदा०—बिभयाञ्चकार, बिभाय (वह डर गया था)। जिह्रयाञ्चकार, जिह्राय (वह लज्जित हो गया था)। बिभराञ्चकार, बभार (उसने पालन किया था)।

जुहवाञ्चकार, जुहाव (उसने हवन किया था)। 'भी' इत्यादि धातुओं को श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व, अभ्यासकार्य आदि सब पूर्ववत् होगा । भृ के अभ्यास को भृञामित्(७।४।७६) से इत्व होगा । जब आम् प्रत्यय नहीं होगा, तो तिप् के स्थान में परस्मैपदानाम्० (३।४।८२)से णल् होगा, तथा लिटि धातोरनभ्यासस्य (६।१।८) से द्वित्व होगा । आम् पक्ष में लिट् के पूर्व आम् प्रत्यय का व्यवधान होने से लिटि धातोरनभ्यास्य से द्वित्व प्राप्त नहीं होता था, अतः श्लुवत् कर दिया ॥

कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि ॥३।१।४०॥

कृञ् १।१॥ च अ० ॥ अनुप्रयुज्यते तिङ् ॥ लिटि ७।१॥ अनुप्रयुज्यते इत्यत्र पश्चादर्थे 'अनु' ॥ अनु० — आम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आम्प्रत्ययस्य पश्चात् कृञ् अनुप्रयुज्यते लिटि परतः ॥ कृञ् इत्यनेन प्रत्याहारग्रहणम्—कृभ्वस्तियोगे० (५।४।५०) इत्यतः प्रभृत्याऽकृञो द्वितीयातृतीय० (५।४।५८) इत्यस्य ञकारात् ॥ उदा०—पाठयाञ्चकार, पाठयाम्बभूव, पाठयामास ॥

भाषार्थः—आम्प्रत्यय के पश्चात् [कृञ्] कृञ् प्रत्याहार (=कृ भू अस्) का [च] भी [अनुप्रयुज्यते] अनुप्रयोग होता है, [लिटि] लिट् परे रहते ॥ 'कृञ्' से कृञ् प्रत्याहार लिया गया है—कृभ्वस्तियोगे० (५।४।५०) के 'कृ' से लेकर कृञो द्वितीयतृतीय० (५।४।५८) के ञकारपर्यन्त 'कृ, भू, अस्' तीन धातुओं का इससे ग्रहण होता है ॥

ऊपर से ही यहाँ 'लिटि' की अनुवृत्ति आ सकती थी, पुनः यहाँ जो 'लिटि' ग्रहण किया है, उसका यह प्रयोजन है कि आमः (२।४।८१) से लिट् का लुक् करने के पश्चात् कृ भू अस् का अनुप्रयोग करने पर उस लिट् की पुनरुत्पत्ति हो जावे । जैसा कि परि० १।३।६३ की सिद्धियों में भी दिखा आये हैं ॥

विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् ॥३।१।४१॥

विदाङ्कुर्वन्तु तिङ् ॥ इति अ० ॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अर्थः—विदाङ्कुर्वन्तु इत्येतद् रूपं विकल्पेन निपात्यते, पक्षे विदन्तु ॥ अत्र विदधातोर्लोटि प्रथमपुरुषस्य बहुवचने 'आम्' प्रत्ययः, गुणाभावः, लोट्प्रत्ययस्य लुक्, लोट्परस्य कृञोऽनुप्रयोगो निपात्यते ॥

भाषार्थः—[विदाङ्कुर्वन्तु] विदाङ्कुर्वन्तु [इति] यह रूप लोट् के प्रथम पुरुष के बहुवचन में निपातन किया जाता है, [अन्यतरस्याम्] विकल्प करके । पक्ष में विदन्तु भी बनेगा ॥ विद धातु को लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन के परे रहते आम् प्रत्यय तथा उस आम् प्रत्यय को निमित्त मानकर विद् को जो पुगन्तलघूपधस्य

च (७।३।८६) से गुण पाता है उसका अभाव, उस लोट् का लुक्, तथा लोट्परक कृञ् धातु का अनुप्रयोग यह सब निपातन से यहाँ सिद्ध किया जाता है ॥ शेष कुर्वन्तु में झि को अन्तादेश, एरुः (३।४।८६) से इ को उ, तनादिकृञ्भ्यः उः (३।१।७६) से उ विकरण, सार्वधातुकार्धधातुकयोः (७।४।८४), उरण्रपरः (१।१।५०) से गुण होकर—'कर् उ अन्तु' बना। अत उत्सार्वधातुके (६।४।११०) से उत्व, तथा यणादेश होकर कुर्वन्तु बन ही जावेगा ॥ विदाङ्कुर्वन्तु=स्वीकुर्वन्तु ॥

विशेष—जो कार्य लक्षणों से अर्थात् सूत्रों से सिद्ध नहीं होते, उन्हें सिद्ध करना "निपातन" कहा जाता है ॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति ३।१।४२ तक जायेगी ॥

अभ्युत्सादयाम्प्रजनयाञ्चिकयांरमयामकः पावयां-
क्रियाद्विदामक्रन्निति च्छन्दसि ॥३।१।४२॥

अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयाम् इति चत्वारि प्रथमान्तानि ॥ अकः तिङ् ॥ पावयांक्रियात् तिङ् ॥ विदामक्रन् तिङ् ॥ इति अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—अन्यतरस्याम् ॥ अत्र 'अकः' शब्दः अभ्युत्सादयां प्रजनयां चिकयां रमयाम् इत्येतैः सर्वैः सह सम्बध्यते ॥ अर्थः—अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयांक्रियात्, विदामक्रन् इत्येते शब्दाः छन्दसि विषये विकल्पेन निपात्यन्ते। सद जन रम इत्येतेषां ण्यन्तानां धातूनां लुङि आम् प्रत्ययो निपात्यते। चिकयामकः इत्यत्रापि चिञ धातोर्लुङि परत आम निपात्यते, द्विर्वचनं कुत्वञ्चात्र विशेषः। पावयांक्रियादिति पवतेः पुनातेर्वा ण्यन्तस्य लिङि 'आम्' निपात्यते। क्रियादिति चास्यानुप्रयोगः। विदामक्रन्निति विदेर्लुङि आम् निपात्यते गुणाभावश्च, अक्रन्नित्यस्य चानुप्रयोगः। उदा०—अभ्युत्सादयामकः, भाषायां विषये—अभ्युदसीषदत्। प्रजनयामकः, अपरपक्षे—प्राजीजनत्। चिकयामकः, पक्षे—अचैषीत्। रमयामकः, पक्षे—अरीरमत्। पावयांक्रियात्, पक्षे—पाव्यात्। विदामक्रन्, पक्षे—अवेदिषुः॥

भाषार्थः—[अभ्यु ·····मकः पावयांक्रियात् विदामक्रन्] अभ्युत्सादयामकः, प्रजनयामकः, चिकयामकः, रमयामकः, पावयांक्रियात्, विदामक्रन् [इति] ये शब्द [छन्दसि] वेदविषय में विकल्प करके निपातन किये जाते हैं ॥ रमयाम् के पश्चात् रखा हुआ 'अकः' शब्द 'अभ्युत्सादयाम्' आदि चारों शब्दों के साथ अभिसम्बद्ध होता है, अर्थात् अभ्युत्सादयाम् आदि चारों शब्दों में 'अकः' का अनुप्रयोग निपातन से होता है ॥ इन शब्दों में क्या क्या कार्य निपातन से सिद्ध किये गये हैं, यह यहाँ बताते हैं—

सद जन रम णिजन्त धातुओं से लुङ् लकार में आम् निपातन किया गया है। तत्पश्चात् 'अकः' का अनुप्रयोग निपातन है। यथाप्राप्त वृद्धि आदि सर्वत्र होती

जायेगी। चिकयामकः, यहाँ चिञ् धातु से लुङ् परे रहते आम् प्रत्यय, चि धातु को द्विर्वचन एवं कुत्व निपातन है, तत्पश्चात् 'अकः' का अनुप्रयोग भी निपातित है। ण्यन्त में अयामन्ताल्वाय्येत्० (६।४।५५) से णि को अयादेश हो ही जायेगा। पावयां-क्रियात्, यहाँ पूङ् या पूञ् ण्यन्त धातुओं से लिङ् परे रहते आम् प्रत्यय निपातन है, तथा क्रियात् का अनुप्रयोग भी निपातन है। विदामक्रन्, यहाँ विद धातु से लुङ् परे रहते आम् प्रत्यय, विद धातु को गुणाभाव, एवं अक्रन् का अनुप्रयोग निपातन हैं॥ पक्ष में अभ्युदसीषदत् आदि बनेंगे, जिनकी सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें॥

च्लि लुङि ॥३।१।४३॥

च्लि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ लुङि ७।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—लुङि परतो धातोः च्लिप्रत्ययो भवति॥ च्लेः स्थानेऽग्रे सिजादीनादेशान् वक्ष्यति, तत्रैवोदाहरिष्यामः॥

भाषार्थः—धातु से [लुङि] लुङ् लकार परे रहते [च्लि] च्लि प्रत्यय होता है॥

यहाँ से 'लुङि' की अनुवृत्ति ३।१।६६ तक जायेगी॥

च्लेः सिच् ॥३।१।४४॥

च्लेः ६।१॥ सिच् १।१॥ अनु०—लुङि॥ अर्थः—च्लेः स्थाने सिज् आदेशो भवति लुङि परतः॥ उदा०—अकार्षीत्, अहार्षीत्॥

भाषार्थः—[च्लेः] च्लि के स्थान में [सिच्] सिच् आदेश होता है॥ सिद्धियाँ परि० १।१।१ में देख लें॥

यहाँ से 'च्लेः' की अनुवृत्ति ३।१।६६ तक जायेगी॥

शल इगुपधादनिटः क्सः ॥३।१।४५॥

शलः ५।१॥ इगुपधात् ५।१॥ अनिटः ६।१॥ क्सः १।१॥ स०—इक् उपधा यस्य स इगुपधः, तस्माद् इगुपधाद्, बहुव्रीहिः। न विद्यते इट् यस्य सोऽनिट्, तस्य, बहुव्रीहिः॥ अनु०—च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—शलन्तो यो धातुः इगुपधः तस्मा-दनिटः च्लेः स्थाने 'क्स' आदेशो भवति लुङि परतः॥ उदा०—अधुक्षत्, अलिक्षत्॥

भाषार्थः—[शलः] शलन्त [इगुपधात्] इक् उपधावाली जो धातु उससे [अनिटः] अनिट् च्लि के स्थान में [क्सः] क्स आदेश होता है, लुङ् परे रहते॥

यहाँ से 'क्सः' की अनुवृत्ति ३।१।४७ तक जायेगी॥

श्लिष आलिङ्गने ॥३।१।४६॥

श्लिषः ५।१॥ आलिङ्गने ७।१॥ अनु०—क्सः, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—श्लिषधातोः आलिङ्गनेऽर्थे च्लेः स्थाने 'क्स' आदेशो भवति लुङि परतः ॥ उदा०—आश्लिक्षत् माता पुत्रीम् ॥

भाषार्थः—[श्लिषः] श्लिष धातु से [आलिङ्गने] आलिङ्गन अर्थ में च्लि के स्थान में क्स आदेश होता है लुङ् परे रहते ॥ उदा०—आश्लिक्षत् माता पुत्रीम् (माता ने अपनी पुत्री का आलिङ्गन किया) ॥ आश्लिक्षत् में षढोः कः सि (८।२।४१) से श्लिष् के ष् को क् हुआ है, क्स के स को आदेशप्रत्यययोः (८।३।५९) से षत्व होकर पूर्ववत् आश्लिक्षत् बन ही जावेगा ॥

न दृशः ॥३।१।४७॥

न अ० ॥ दृशः ५।१॥ अनु०—क्सः, च्लेः, लुङि, धातोः । अर्थः—दृश् धातोः परस्य च्लेः 'क्स' आदेशो न भवति लुङि परतः ॥ शल इगुपधादनिटः क्सः (३।१।४५) इत्यनेन क्स आदेशे प्राप्ते प्रतिषिध्यते । तस्मिन् प्रतिषिद्धे अङ्सिचौ भवतः ॥ उदा०—अदर्शत्, अद्राक्षीत् ॥

भाषार्थः—[दृशः] दृश् धातु से उत्तर च्लि के स्थान में क्स आदेश [न] नहीं होता लुङ् परे रहते ॥ शल इगुपधा० (३।१।४५) सूत्र से क्स प्राप्त होने पर निषेध है । क्स के प्रतिषेध हो जाने पर इरितो वा (३।१।५७) से अङ्, तथा पक्ष में सिच् आदेश हो जाते हैं ॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥३।१।४८॥

णिश्रिद्रुस्रुभ्यः ५।३॥ कर्त्तरि ७।१॥ चङ् १।१॥स०—णिश्रिद्रु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—ण्यन्तेभ्यः, श्रि द्रु स्रु इत्येतेभ्यश्च धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने चङ् आदेशो भवति कर्त्तरि लुङि परतः ॥ उदा०—ण्यन्तेभ्यः—अचीकरत्, अजीहरत् । अशिश्रियत् । अदुद्रुवत् । असुस्रुवत् ॥

भाषार्थः—[णिश्रिद्रुस्रुभ्यः] ण्यन्त, तथा श्रिञ् सेवायाम्, द्रु गतौ, स्रु गतौ धातुओं से च्लि के स्थान में [चङ्] चङ् आदेश होता है [कर्त्तरि] कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते ॥

यहाँ से 'चङ्' की अनुवृत्ति ३।१।५१ तक, तथा 'कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।१।६१ तक जायेगी ॥

विभाषा धेट्श्व्योः ॥३।१।४९॥

विभाषा १।१॥ धेट्श्व्योः ६।२॥ स०—धेट् च श्विश्च धेट्श्वी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—कर्त्तरि चङ्, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—'धेट् पाने', 'टुओश्वि गतिवृद्धयोः' इत्येताभ्यां धातुभ्याम् उत्तरस्य च्लेः स्थाने विभाषा चङ् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि परतः ॥ **उदा०**—अदधत्, अधात्, अधासीत् । श्वि—अशिश्वियत्, अश्वत्, अश्वयीत् ॥

भाषार्थः—[धेट्श्व्योः] **धेट् तथा टुओश्वि धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में चङ् आदेश** [विभाषा] **विकल्प से होता है, कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते ॥**

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।१।५० तक जायेगी ॥

गुपेश्छन्दसि ॥३।१।५०॥

गुपेः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ **अनु०**—विभाषा, कर्त्तरि चङ्, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—गुपू धातोरुत्तरस्य च्लेर्विभाषा चङ् आदेशो भवति छन्दसि विषये कर्त्तृवाचिनि लुङि परतः ॥ **उदा०**—इमान्नौ मित्रावरुणौ गृहानजूगुपतम्, अगौप्तम्, अगोपिष्टम्, अगोपायिष्टम् ॥

भाषार्थः—[गुपेः] **गुप धातु से उत्तर च्लि के स्थान में विकल्प से चङ् आदेश होता है,** [छन्दसि] **वेदविषय में, कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते ॥**

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।१।५१ तक जायेगी ॥

नोनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥३।१।५१॥

न अ० ॥ ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ५।३॥ स०—ऊनयतिश्च ध्वनयतिश्च एलयतिश्च अर्दयतिश्च ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतयः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—छन्दसि, कर्त्तरि चङ्, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—'ऊन परिहाणे', 'ध्वन शब्दे', 'इल प्रेरणे', 'अर्द गतौ याचने च' इत्येतेभ्यो धातुभ्यो ण्यन्तेभ्य उत्तरस्य छन्दसि विषये च्लेः स्थाने चङ् आदेशो न भवति, कर्त्तरि लुङि परतः ॥ **उदा०**—मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः (ऋ० १।५३।३), औनिनः इति भाषायाम् । मा त्वाग्निर्ध्वनयीत् (ऋ० १।१६२।१५), अदिध्वनत् इति भाषायाम् । काममैलयीः, ऐलिलः इति भाषायाम् । मैनमर्दयीत्, आर्दिदत् इति भाषायाम् ॥

भाषार्थः—[ऊनयतिध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः] **ऊन, ध्वन, इल, अर्द इन ण्यन्त धातुओं से उत्तर वेदविषय में च्लि के स्थान में चङ् आदेश** [न] **नहीं होता है ॥ चङ् का निषेध करने से सिच् हो जावेगा । ण्यन्त होने से णिश्रिद्रु०**

(३।१।४८) से चङ् प्राप्त था, उसका अपवाद यह सूत्र है। भाषा-प्रयोग में चङ् हो ही जायेगा। ऊनयीः ऐलयीः, मध्यम पुरुष सिप् के रूप हैं। उदाहरणों की सिद्धियाँ परिशिष्ट १।१।१ के अलावीत् इत्यादि के समान ही जानें॥ ऊनयीः अर्दयीत ध्वनयीत् इन प्रयोगों में आडजादीनाम् तथा लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६।४।७२, ७१) से आट् एवं अट् का आगम नहीं होता। क्योंकि यहाँ माङ् का योग होने से 'न माङ्योगे' (६।४।७४) से निषेध हो जाता है। ऐलयीः में आट् तथा 'इल्' के इ को आटश्च (६।१।८७) से वृद्धि होती है॥ भाषाविषय में चङ् होकर चङि (६।१।११) से द्वित्वादि हो जावेगा॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥३।१।५२॥

अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः ५।३॥ अङ् १।१॥ स०—अस्यात० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—'असु क्षेपणे', 'वच परिभाषणे', 'ख्याञ् प्रकथने' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने अङादेशो भवति कर्त्तरि लुङि परतः॥ उदा०—पर्यास्थत, पर्यास्थेताम्, पर्यास्थन्त। अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्। आख्यत्, आख्यताम्, आख्यन्॥

भाषार्थः—[अस्यतिवक्तिख्यातिभ्यः] असु वच ख्याञ् इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में [अङ्] अङ् आदेश होता है, कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते॥ 'वच' से ब्रूञ् के स्थान में जो वच आदेश (२।४।५३ से), तथा 'वच परिभाषणे' धातु, दोनों लिये गये हैं। इसी प्रकार ख्याञ् से चक्षिङ् को जो ख्याञ् आदेश (२।४।५४ से), तथा 'ख्याञ् प्रकथने' धातु, दोनों ही लिये गये हैं॥

यहाँ से 'अङ्' की अनुवृत्ति ३।१।५९ तक जायेगी॥

लिपिसिचिह्वश्च ॥३।१।५३॥

लिपिसिचिह्वः ५।१॥ च अ०॥ स०—लिपिश्च सिचिश्च ह्वाश्च लिपिसिचिह्वाः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः॥ अर्थः—'लिप उपदेहे', 'षिच क्षरणे', 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने अङ् आदेशो भवति कर्त्तरि लुङि परतः॥ उदा०—अलिपत्। असिचत्। आह्वत्॥

भाषार्थः—[लिपिसिचिह्वः] लिप सिच ह्वेञ् इन धातुओं से [च] भी कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है॥

यहाँ से 'लिपिसिचिह्वः' की अनुवृत्ति ३।१।५४ तक जायेगी॥

आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥३।१।५४॥

आत्मनेपदेषु ७।३॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अनु०—लिपिसिचिह्वः, अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—लिप्यादिभ्यो धातुभ्यः कर्तृवाचिनि लुङि आत्मनेपदेषु परतः च्लेः 'अङ्' आदेशो विकल्पेन भवति ॥ उदा०—अलिपत, अलिप्त । असिचत, असिक्त । अह्वत, अह्वास्त ॥

भाषार्थः—लिप इत्यादि धातुओं से कर्त्तृवाची लुङ् [आत्मनेपदेषु] आत्मनेपद परे रहते [अन्यतरस्याम्] विकल्प से च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है ॥ पूर्व सूत्र से नित्य अङ् प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया गया है। जब अङ् नहीं होगा, तो सिच् हो जायेगा ॥

पुषादिद्युताद्य्लृदितः परस्मैपदेषु ॥३।१।५५॥

पुषादिद्युताद्य्लृदितः ५।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ स०—पुष आदिर्येषां ते पुषादयः, द्युतः आदिर्येषां ते द्युतादयः, लृत् इत् यस्य स लृदित्, पुषादयश्च द्युतादयश्च लृदित् च इति पुषादिद्युताद्य्लृदित्, तस्मात् पुषादिद्युताद्य्लृदितः, बहुव्रीहिगर्भसमाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—पुषादिभ्यः द्युतादिभ्यः लृदिद्भ्यश्च धातुभ्यः कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः च्लेः 'अङ्'आदेशो भवति ॥ दिवादिषु 'पुष पुष्टौ' इत्यारभ्य 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' इति यावत् पुषादिर्गणः । भ्वादिषु 'द्युत दीप्तौ' इत्यारभ्य 'कृपू सामर्थ्ये' इति यावत् द्युतादिर्गणः ॥ उदा०—पुषादिभ्यः—अपुषत्, अशुषत् । द्युतादिभ्यः—अद्युतत्, अश्वितत् । लृदिद्भ्यः—अगमत्, अशकत् ॥

भाषार्थः—[पुषादिद्युताद्य्लृदितः] पुषादि द्युतादि तथा लृदित् धातुओं से च्लि के स्थान में अङ् होता है, कर्त्तृवाची लुङ् [परस्मैपदेषु] परस्मैपद परे रहते। दिवादिगण के अन्तर्गत जो 'पुष पुष्टौ' धातु है, वहाँ से लेकर 'गृधु अभिकांक्षायाम्' तक पुषादिगण माना गया है। तथा 'द्युत दीप्तौ' (भ्वादिगण के अन्तर्गत) से लेकर 'कृपू सामर्थ्ये' तक द्युतादि धातुयें मानी गई हैं ॥ अङ् के ङित् होने से सर्वत्र क्ङिति च (१।१।५) से गुण-निषेध होता है ॥ उदा०—पुषादियों से—अपुषत् (वह पुष्ट हुआ), अशुषत् (वह सूख गया)। द्युतादियों से—अद्युतत् (वह चमका), अश्वितत् (वह सफेद हो गया)। लृदितों से—अगमत् (वह गया), अशकत् (वह समर्थ हो गया) ॥

यहाँ से 'परस्मैपदेषु' की अनुवृत्ति ३।१।५७ तक जायेगी ॥

सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥३।१।५६॥

सर्त्तिशास्त्यर्तिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—सर्त्तिशा० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—परस्मैपदेषु, अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—'सृ गतौ', 'शासु अनुशिष्टौ', 'ऋ गतौ' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने अङ् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—असरत् । अशिषत् । आरत् ॥

भाषार्थः—[सर्त्तिशास्त्यर्त्तिभ्यः] सृ शासु तथा ऋ धातुओं से उत्तर [च] भी च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है, कर्त्तृवाची लुङ् परस्मैपद परे रहते ॥

इरितो वा ॥३।१।५७॥

इरितः ५।१॥ वा अ० ॥ स०—इर् इद् यस्य स इरित्, तस्माद् इरितः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—परस्मैपदेषु, अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—इरितो धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने अङ् आदेशो वा भवति, कर्तृवाचिनि लुङि परस्मैपदेषु परतः ॥ उदा०—रुधिर्—अरुधत्, अरौत्सीत् । भिदिर्—अभिदत्, अभैत्सीत् । छिदिर्—अच्छिदत्, अच्छैत्सीत् ॥

भाषार्थः—[इरितः] इरित् धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में [वा] विकल्प करके अङ् आदेश होता है, कर्त्तृवाची परस्मैपद लुङ् परे रहते ॥ रुधिर् इत्यादि धातुओं का इर् इत्संज्ञक है, अतः ये सब धातुयें इरित हैं । 'इर्' समुदाय की इत् संज्ञा इस सूत्र में किये गये निर्देश से समझनी चाहिए ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।५८ तक जायेगी ॥

जॄस्तम्भुम्रुचुम्लुचुग्रुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्विभ्यश्च ॥३।१।५८॥

जॄस्त······भ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—जॄस्तम्भु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—वा, अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ अर्थः—जॄष् वयोहानौ, स्तम्भुः सौत्रो धातुः, म्रुचु म्लुचु गत्यर्थौ, ग्रुचु ग्लुचु स्तेयकरणे, ग्लुञ्चु गत्यर्थः, टुओश्वि गतिवृद्ध्योः इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने वा अङ् आदेशो भवति कर्तृवाचिनि लुङि परतः ॥ उदा०—अजरत्, अजारीत् । अस्तभत्, अस्तम्भीत् । अम्रुचत्, अम्रोचीत् । अम्लुचत्, अम्लोचीत् । अग्रुचत्, अग्रोचीत् । अग्लुचत्, अग्लोचीत् । अग्लुचत्, अग्लुञ्चीत् । अश्वत्, अश्वयीत्, अशिश्वियत् ॥

भाषार्थः—[जॄस्तम्भु···भ्यः] जॄष्, स्तम्भु, म्रुचु, म्लुचु, ग्रुचु, ग्लुचु, ग्लुञ्चु, श्वि इन धातुओं से उत्तर [च] भी च्लि के स्थान में अङ् आदेश विकल्प से होता है, कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते ॥ जिस पक्ष में अङ् नहीं होता, उस पक्ष में सिच् होता है ॥

कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि ॥३।१।५९॥

कृमृदृरुहिभ्यः ५।३॥ छन्दसि ७।१॥ स०—कृ च दृ च मृ च रुहिश्च

कृमृदृरुहय:, तेभ्य:, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—अङ्, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातो: ॥ **अर्थः**—डुकृञ् करणे, मृङ् प्राणत्यागे, दृ विदारणे, रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने 'अङ' आदेशो भवति छन्दसि विषये कर्तृवाचिनि लुङि परतः ॥ **उदा०**—शकलाऽङ्गुष्ठकोऽकरत् । अयोऽमरत् । अदरत् अर्थान् । पर्वतमारुहत्, अन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ॥

भाषार्थ:—[कृमृदृरुहिभ्यः] कृ, मृ, दृ, रुह इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में अङ् आदेश होता है, कर्त्तृवाची लुङ् परे रहते, [छन्दसि] वेदविषय में ॥ अमरत्, यहाँ व्यत्ययो बहुलम् (३।१।८५) से व्यत्यय से परस्मैपद हो गया है ॥

चिण्ते पदः ॥३।१।६०॥

चिण् १।१॥ ते ७।१॥ पद: ५।१॥ **अनु०**—कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातो: ॥ **अर्थः**—'पद गतौ' इत्येतस्माद् धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो भवति, कर्तृवाचिनि लुङि तशब्दे परतः ॥ **उदा०**—उदपादि सस्यम्, समपादि भैक्षम् ॥

भाषार्थ:—[पदः] पद धातु से उत्तर च्लि के स्थान में [चिण्] चिण् आदेश होता है, कर्त्तृवाची लुङ् [ते] त शब्द परे रहते ॥ उदा०—उदपादि सस्यम् (उसने फसल को उत्पन्न किया), समपादि भैक्षम् (उसने भिक्षा की) ॥ उत् पूर्वक पद धातु से 'उद् अट् पद् च्लि त, ऐसा पूर्ववत् होकर प्रकृत सूत्र से चिण् होकर, चिणो लुक् (६।४।१०४) से त का लुक् हो गया है । 'उद् अट् पद् चिण्=इ', अब इस अवस्था में अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होकर उदपादि बन गया ॥

यहाँ से 'चिण्' की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक, तथा 'ते' की ३।१।६६ तक जायेगी ॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ॥३।१।६१॥

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्य: ५।३॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ **स०**—दीपजन० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—चिण्, ते, कर्त्तरि, च्लेः, लुङि, धातो: ॥ **अर्थः**—'दीपी दीप्तौ', 'जनी प्रादुर्भावे', 'बुध अवगमने', 'पूरी आप्यायने', 'तायृ सन्तानपालनयो:', 'ओप्यायी वृद्धौ' इत्येतेभ्यो धातुभ्य उत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो विकल्पेन भवति, कर्तृवाचिनि लुङि तशब्दे परतः ॥ **उदा०**—अदीपि, अदीपिष्ट । अजनि, अजनिष्ट । अबोधि, अबुद्ध । अपूरि, अपूरिष्ट । अतायि, अतायिष्ट । अप्यायि, अप्यायिष्ट ॥

भाषार्थ:—[दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यः] दीप, जन, बुध, पूरि, तायृ, ओप्यायी इन धातुओं से उत्तर च्लि के स्थान में, चिण् आदेश [अन्यतरस्याम्]

विकल्प से हो जाता है, कर्त्तृवाची लुङ् त शब्द परे रहते ॥ उदा०—अदीपि, अदीपिष्ट (वह प्रदीप्त हुआ)। अजनि, अजनिष्ट (वह उत्पन्न हुआ)। अबोधि, अबुद्ध (उसने जाना)। अपूरि, अपूरिष्ट (उसने पूर्ण किया)। अतायि, अतायिष्ट (उसने पूजा की)। अप्यायि, अप्यायिष्ट (वह बढ़ा)॥

अजनि में जनिवध्योश्च (७।३।३५) से वृद्धि-निषेध होता है। चिण्-पक्ष में सिद्धि पूर्व सूत्र के अनुसार जानें। जिस पक्ष में चिण् नहीं होगा, उस पक्ष में सिच् होकर पूर्ववत् आत्मनेपद में 'अट् दीप् इट् सिच् त' होकर सिच के स् को ष् तथा ष्टुत्व होकर अदीपिष्ट आदि बनेगा॥ अबुद्ध की सिद्धि परिशिष्ट १।२।११ में देखें॥ बुध् धातु अनिट् है, सो इडागम भी नहीं हुआ है॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति ३।१।६३ तक जायेगी॥

च्लि → चिण् (विकल्प)

अचः कर्मकर्त्तरि ॥३।१।६२॥

अचः ५।१॥ कर्मकर्त्तरि ७।१॥ स०—कर्म चासौ कर्त्ता च कर्मकर्त्ता, तस्मिन्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः॥ अनु०—अन्यतरस्याम, चिण्, ते, च्लेः, लुङि॥ अर्थः—अजन्ताद्धातोरुत्तरस्य कर्मकर्त्तरि लुङि तशब्दे परतः च्लेः स्थाने चिण् आदेशो विकल्पेन भवति॥ उदा०—अकारि कटः स्वयमेव, अकृत कटः स्वयमेव। अलावि केदारः स्वयमेव, अलविष्ट केदारः स्वयमेव॥

भाषार्थः—[अचः] अजन्त धातुओं से [कर्मकर्त्तरि] कर्मकर्त्ता लुङ् में त शब्द परे रहते च्लि के स्थान में चिण् आदेश विकल्प से होता है॥ उदा०—अकारि कटः स्वयमेव (चटाई स्वयमेव बन गई), अकृत कटः स्वयमेव। अलावि केदारः स्वयमेव (खेत स्वयं कट गया), अलविष्ट केदारः स्वयमेव। चिणपक्ष में अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि आदि कार्य होंगे। सिच् पक्ष में अकृत की सिद्धि परिशिष्ट १।२।१२ में देखें। अलविष्ट में कुछ भी विशेष नहीं है॥ सौकर्य के अतिशय में कर्म की कर्त्ता के समान विवक्षा हो जाती है, अर्थात् कर्म कर्त्ता बन जाता है। सो कर्त्ता को कर्मवद्भाव कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः (३।१।८७) से होकर कर्माश्रित कार्य चिण्भावकर्मणोः (३।१।६६) से जो चिण् होना है, वह नित्य प्राप्त ही था। अजन्त धातुओं से विकल्प करके चिण् हो, इसलिये यह सूत्र है॥ कर्मकर्त्ता किसे कहते हैं? वह कब होता है? इसकी विशेष व्याख्या ३।१।८७ सूत्र पर ही देखें। कर्मवाच्य को कहे हुए कार्य ३।१।८७ सूत्र से कर्मवद्भाव होने से कर्मकर्त्ता में भी होते हैं। अतः यहाँ भावकर्मणोः (१।३।१३) से आत्मनेपद सर्वत्र होगा॥

यहाँ से 'कर्मकर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक जावेगी॥

दुहश्च ॥३।१।६३॥

दुहः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—कर्मकर्त्तरि, अन्यतरस्याम्, चिण्, ते, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—'दुह प्रपूरणे' इत्यस्माद् धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो विकल्पेन भवति कर्मकर्त्तरि तशब्दे परतः ॥ उदा०—अदोहि गौः स्वयमेव, अदुग्ध गौः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[दुहः] दुह धातु से उत्तर [च] भी च्लि के स्थान में चिण् आदेश विकल्प से होता है कर्मकर्त्ता में त शब्द परे रहते ॥ न दुहस्नुनमां यक्चिणौ (३।१।८९) से कर्मकर्त्ता में दुह धातु से चिण् का नित्य ही प्रतिषेध प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया है ॥ कर्मकर्त्ता में कर्मवद्भाव होकर कर्मवाच्य में कहे हुए कार्य पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त होते हैं ॥

न रुधः ॥३।१।६४॥

न अ० ॥ रुधः ५।१॥ अनु०—कर्मकर्त्तरि, चिण्, ते, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—'रुधिर् आवरणे' इत्यस्माद् धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो न भवति कर्मकर्त्तरि तशब्दे परतः ॥ उदा०—अन्ववारुद्ध गौः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[रुधः] रुधिर् धातु से उत्तर च्लि के स्थान में चिण् आदेश [न] नहीं होता, कर्मकर्त्ता में त शब्द परे रहते ॥ कर्मकर्त्ता में ३।१।८७ से कर्मवद्भाव होकर चिण्भावकर्मणोः (३।१।६६) से चिण् की प्राप्ति थी, यहाँ निषेध कर दिया है ॥ उदा०—अन्ववारुद्ध गौः स्वयमेव (गौ अपने आप रुक गई) ॥ अनु अव पूर्वक रुधिर् धातु से सिच् होकर, पूर्ववत् झलो झलि (८।२।२६) से सिच् के स का लोप, झषस्तथोर्धो० (८।२।४०) से त को ध, तथा झलां जश् झशि (८।४।५२) से रुध् के 'ध्' को 'द्' होकर अन्ववारुद्ध बना है ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति ३।१।६५ तक जायेगी ॥

तपोऽनुतापे च ॥३।१।६५॥

तपः ५।१॥ अनुतापे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—न, कर्मकर्त्तरि, चिण्, ते, च्लेः, लुङि, धातोः ॥ **अर्थः**—अनुतापः=पश्चात्तापः, 'तप संतापे' इत्यस्माद् धातोरुत्तरस्य च्लेः स्थाने चिण् आदेशो न भवति, कर्मकर्त्तरि अनुतापे च तशब्दे परतः ॥ उदा०—कर्मकर्त्तरि—अतप्त तपस्तापसः । अनुतापे—अन्ववातप्त पापेन कर्मणा ॥

भाषार्थः—[तपः] तप धातु से उत्तर च्लि के स्थान में चिण् आदेश नहीं

होता है ,कर्मकर्त्ता में [च] तथा [अनुतापे] अनुताप अर्थ में त शब्द परे रहते ॥ 'अनुताप' पश्चात्ताप को कहते हैं ॥

अतप्त तपस्तापस: (तपस्वी ने स्वयमेव स्वर्गादि कामना के लिये तप को प्राप्त किया) में तपस्तप:कर्मकस्यैव (३।१।८८) से तप को कर्मवद्भाव होने से चिण् प्राप्त था, सो यहाँ निषेध कर दिया है। अनुताप अर्थ में कर्तृस्थभावक तप धातु अकर्मक है, अत: इसको कर्मवद्भाव प्राप्त ही नहीं था। सो अन्ववातप्त पापेन कर्मणा (जो पहले पाप किया है, उससे अनुतप्त हुआ) में कर्म में (शुद्ध कर्मवाच्य में) लकार हुआ है, न कि कर्मकर्त्ता में। यहाँ दोनों ही स्थानों में प्रकृत सूत्र से चिण् का निषेध हो गया है। चिण् का निषेध होने से सिच् हो जाता है, जिसका झलो झलि (८।२।२६) से लोप हो जाता है। शेष सिद्धि पूर्ववत् है ॥

चिण्भावकर्मणो: ॥३।१।६६॥

चिण् १।१॥ भावकर्मणो: ७।२॥ स०—भावश्च कर्म च भावकर्मणी, तयो:, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ॥ अनु०—ते, च्ले:, लुङि, धातो: ॥ अर्थ:—धातोरुत्तरस्य च्ले: चिण् आदेशो भवति भावे कर्मणि च लुङि तशब्दे परत: ॥ उदा०—भावे—अशायि भवता। कर्मणि—अकारि कटो देवदत्तेन ॥

भाषार्थ:—धातुमात्र से उत्तर च्लि के स्थान में [चिण्] चिण् आदेश होता है [भावकर्मणो:] भाव और कर्म में, लुङ् त शब्द परे रहते ॥ भाव और कर्म क्या है, यह सब हमने 'भावकर्मणो:' (१।३।१३) सूत्र पर लिखा है ॥

उदा०—भाव में—अशायि भवता (आप सो गये)। कर्म में—अकारि कटो देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाई गई) ॥ अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि आदि होकर सिद्धि पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से 'भावकर्मणो:' की अनुवृत्ति ३।१।६७ तक जायेगी ॥

सार्वधातुके यक् ॥३।१।६७॥

सार्वधातुके ७।१॥ यक् १।१॥ अनु०—भावकर्मणो:, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—भावकर्मवाचिनि सार्वधातुके प्रत्यये परत: धातोर्यक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भावे—आस्यते भवता, शय्यते भवता। कर्मणि—क्रियते कट:, गम्यते ग्राम: ॥

भाषार्थ:—भाव और कर्म में विहित [सार्वधातुके] सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तो, धातुमात्र से [यक्] यक् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—भाव में—आस्यते भवता

(आप के द्वारा बैठा जाता है), शय्यते भवता (आपके द्वारा सोया जाता है)। कर्म में—क्रियते कटः (चटाई बनाई जाती है), गम्यते ग्रामः (गाँव को जाया जाता है) ॥ सिद्धियाँ परिशिष्ट १।३।१३ में देखें ॥ शय्यते में केवल यह विशेष है कि अयङ् यि क्ङिति (७।४।२२) से अयङ् आदेश भी होता है ॥

यहाँ से 'सार्वधातुके' की अनुवृत्ति ३।१।८२ तक जायेगी ॥

कर्त्तरि शप् ॥३।१।६८॥

कर्त्तरि ७।१। शप् १।१॥ अनु०—सार्वधातुके, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतो धातोः शप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भवति, पठति। भवतु, पठतु। अभवत्, अपठत्। भवेत्, पठेत् ॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्तृवाची सार्वधातुक के परे रहते धातु से [शप्] शप् प्रत्यय होता है ॥ लिट् तथा आशीर्लिङ् को छोड़कर सब लकार (=तिङ्) सार्वधातुकसंज्ञक (३।४।११३) से होते हैं ॥ परन्तु लुट्, लृ (लृट्, लृङ्), लेट्, लुङ् में क्रमशः तास्, स्य, सिप्, च्लि विकरण हो जाते हैं, जो शप् के अपवाद हैं। अतः लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन्हीं चार लकारों में शप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।१।८८ तक जायेगी ॥

दिवादिभ्यः श्यन् ॥३।१।६९॥

दिवादिभ्यः ५।३॥ श्यन् १।१॥ स०—दिव आदिर्येषां ते दिवादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिवादिभ्यो धातुभ्यः श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्त्तरि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—दीव्यति, सीव्यति ॥

भाषार्थः—[दिवादिभ्यः] दिवादिगण की धातुओं से [श्यन्] श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ धातुमात्र से शप् प्रत्यय प्राप्त था, उसके अपवाद ये सब सूत्र विधान किये हैं ॥

यहाँ से 'श्यन्' की अनुवृत्ति ३।१।७२ तक जायेगी ॥

वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ॥३।१।७०॥

वा अ० ॥ भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः ५।१॥ स०—भ्राशश्च भ्लाशश्च भ्रमुश्च क्रमुश्च क्लमुश्च त्रसिश्च त्रुटिश्च लष् च इति भ्राशभ्लाश......लष्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—श्यन्, कर्त्तरि, सार्वधातुके, धातोः, प्रत्ययः,

परश्च ॥ अर्थः—टुभ्राशृ टुभ्लाशृ दीप्तौ, भ्रमु अनवस्थाने, भ्रमु चलने द्वयोरपि ग्रहणम्, क्रमु पादविक्षेपे, क्लमु ग्लानौ, त्रसी उद्वेगे, त्रुटी छेदने, लष कान्तौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वा श्यन् प्रत्ययः परश्च भवति कर्त्तरि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—भ्राशते, भ्राश्यते । भ्लाशते, भ्लाश्यते । भ्रमति, भ्राम्यति । क्रामति, क्राम्यति । क्लामति, क्लाम्यति । त्रसति, त्रस्यति । त्रुटति, त्रुट्यति । अभिलषति अभिलष्यति ॥

भाषार्थः—[भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः] टुभ्राशृ, टुभ्लाशृ, भ्रमु, क्रमु, क्लमु, त्रसि, त्रुटि, लष इन धातुओं से [वा] विकल्प से श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते । पक्ष में शप् प्रत्यय होगा ॥ उदा०—भ्राशते, भ्राश्यते (चमकता है) । भ्लाशते, भ्लाश्यते (चमकता है) । भ्रमति, भ्राम्यति (घूमता है) । क्रामति, क्राम्यति (चलता है) । क्लामति, क्लाम्यति (ग्लानि करता है) । त्रसति, त्रस्यति (डरता है) । त्रुटति, त्रुट्यति (टूटता है) । अभिलषति, अभिलष्यति (चाहता है) ॥ शमामष्टानां दीर्घः श्यनि (७।३।७४) से भ्राम्यति में श्यन् परे रहते दीर्घ होता है । ष्ठिवुक्लमुचमां० (७।३।३५) से क्लामति क्लाम्यति दोनों में (शप् तथा श्यन् दोनों पक्षों में शित् परे होने से) दीर्घ होता है । क्रमः परस्मैपदेषु (७।३।७६) से क्रामति, क्राम्यति में दीर्घ होता है । त्रुट धातु तुदादिगण में पढ़ी है, अतः पक्ष में श प्रत्यय होगा ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।१।७२ तक जायेगी ॥

अनुपसर्ग
यस् + श्यन् [वा]

यसोऽनुपसर्गात् ॥३।१।७१॥

यसः ५।१॥ अनुपसर्गात् ५।१॥ स०—न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—वा, श्यन्, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गाद्'यसु प्रयत्ने' इत्यस्माद् धातोः विकल्पेन श्यन् प्रत्ययो भवति, कर्त्तरि सार्वधातुके परतः ॥ 'यसु प्रयत्ने' दैवादिकः तस्मिन्नित्ये श्यनि प्राप्ते विकल्पेन विधीयते ॥उदा०—यस्यति, यसति ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गात्] अनुपसर्ग [यसः] यस् धातु से विकल्प से श्यन् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ 'यसु प्रयत्ने' दिवादिगण की धातु है। उससे नित्य श्यन् प्राप्त था, विकल्प विधान कर दिया है । पक्ष में शप् होगा ॥ उदा०—यस्यति, यसति (प्रयत्न करता है) ॥

सं + यस् + श्यन् [वा]

संयसश्च ॥३।१।७२॥

संयसः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—वा, श्यन्, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम्पूर्वाद् यसधातोः श्यन् प्रत्ययो वा भवति, कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—संयस्यति, संयसति ॥

भाषार्थः—[संयसः] सम् पूर्वक यस् धातु से [च] भी श्यन् प्रत्यय विकल्प से होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ पूर्व सूत्र में अनुपसर्ग यस् धातु से विकल्प कहा था, अतः सम्पूर्वक से प्राप्त नहीं था, सो विधान कर दिया है ॥ उदा०—संयस्यति, संयसति (अच्छी तरह प्रयत्न करता है) ॥

स्वादिभ्यः श्नुः ॥३।१।७३॥

स्वादिभ्यः ५।३॥ श्नुः १।१॥ स०—सु (षुञ्) आदिर्येषां ते स्वादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'षुञ् अभिषवे' इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नुप्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—सुनोति । सिनोति ।

भाषार्थः—[स्वादिभ्यः] 'षुञ् अभिषवे' इत्यादि धातुओं से [श्नुः] श्नु प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥

यहाँ से 'श्नुः' की अनुवृत्ति ३।१।७६ तक जायेगी ॥

श्रुवः शृ च ॥३।१।७४॥

श्रुवः ६।१॥ शृ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ० ॥ अनु०—श्नुः, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'श्रु श्रवणे' अस्माद् धातोः श्नुप्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः, शृ आदेशश्च श्रुधातोर्भवति ॥ उदा०—शृणोति, शृणुतः ॥

भाषार्थः—[श्रुवः] श्रु धातु से श्नु प्रत्यय होता है कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते, साथ ही श्रु धातु को [शृ] शृ आदेश [च] भी हो जाता है ॥ उदा०—शृणोति (सुनता है), शृणुतः ॥

अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥३।१।७५॥

अक्षः ५।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अनु०—श्नुः, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'अक्षू व्याप्तौ' इत्येतस्माद् धातोः श्नुः प्रत्ययो विकल्पेन भवति, कर्त्तरि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—अक्ष्णोति, अक्षति ॥

भाषार्थः—[अक्षः] अक्षू धातु से [अन्यतरस्याम्] विकल्प से श्नु प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ अक्षू धातु भ्वादिगण की है, सो नित्य शप् प्राप्त था, विकल्प कर दिया है ॥ उदा०—अक्ष्णोति, अक्षति (व्याप्त होता है) ॥

यहाँ से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति ३।१।७६ तक जायेगी ॥

तनूकरणे तक्षः ॥३।१।७६॥

तनूकरणे ७।१॥ तक्षः ५।१॥ **अनु०**—अन्यतरस्याम्, श्नुः, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—तनूकरणे=सूक्ष्मीकरणेऽर्थे वर्त्तमानात् तक्षूधातोः विकल्पेन श्नुः प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—तक्ष्णोति काष्ठम्, तक्षति ॥

भाषार्थः—[तक्षः] **तक्षू धातु** [तनूकरणे] **तनूकरण अर्थात् छीलने अर्थ में वर्त्तमान हो, तो श्नु प्रत्यय विकल्प से हो जाता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ तक्षू धातु भी भ्वादिगण की है, सो नित्य शप् प्राप्त था, विकल्प कर दिया है** ॥ उदा०—**तक्ष्णोति** काष्ठम् (लकड़ी छीलता है), **तक्षति** ॥

तुदादिभ्यः शः ॥३।१।७७॥

तुदादिभ्यः ५।३॥ शः १।१॥ **स०**—तुद आदिर्येषां ते तुदादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—'तुद व्यथने' इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः शः प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ **उदा०**—तुदति । नुदति ॥

भाषार्थः—[तुदादिभ्यः] **तुदादि धातुओं से** [शः] **श प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ श प्रत्यय** सार्वधातुकम० (१।२।४) **से ङित्वत् है । सो क्ङिति च (१।१।५) से तुद को गुण का निषेध हो जाता है** ॥ उदा०—**तुदति (पीड़ा देता है) । नुदति (प्रेरणा करता है)** ॥

रुधादिभ्यः श्नम् ॥३।१।७८॥

रुधादिभ्यः ५।३॥ श्नम् १।१॥ **स०**—रुध् आदिर्येषां ते रुधादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—रुधादिभ्यो धातुभ्यः श्नम् प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ **उदा०**—रुणद्धि । भिनत्ति ॥

भाषार्थः—[रुधादिभ्यः] **रुधादिगण की धातुओं से** [श्नम्] **श्नम् प्रत्यय होता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ सिद्धियाँ परिशिष्ट १।१।४६ में देखें** ॥

तनादिकृञ्भ्य उः ॥३।१।७९॥

तनादिकृञ्भ्यः ५।३॥ उः १।१॥ **स०**—तन् आदिर्येषां ते तनादयः, तनादयश्च कृञ् च तनादिकृञः, तेभ्यः, बहुव्रीहिगर्भेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—तनादिभ्यो धातुभ्यः कृञश्च उः प्रत्ययो भवति कर्त्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ **उदा०**—तनोति, सनोति । करोति ॥

भाषार्थः—[तनादिकृञ्भ्यः] तनादिगण की धातुओं से, तथा कृञ् धातु से [उः] उ प्रत्यय होता है कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ उदा०—तनोति (विस्तार करता है), सनोति (देता है)। करोति (करता है)॥ 'तन् उ ति' पूर्ववत् होकर, सार्वधातुका० (७।३।८४) से 'उ' को 'ओ' गुण होकर तनोति बन जायेगा ॥

यहाँ से 'उः' की अनुवृत्ति ३।१।८० तक जायेगी ॥

धिन्विकृण्व्योर च ॥३।१।८०॥

धिन्विकृण्व्योः ६।२॥ अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ स०—धिन्विश्च कृण्विश्च धिन्विकृण्वी, तयोः धिन्विकृण्व्योः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—उः, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धिवि कृवि इत्येताभ्यां धातुभ्याम् उः प्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः, अकारश्चान्तादेशो भवति ॥ उदा०—धिनोति। कृणोति ॥

भाषार्थः—[धिन्विकृण्व्योः] धिवि कृवि धातुओं से उ प्रत्यय, [च] तथा उनको [अ] अकार अन्तादेश भी हो जाता है, कर्त्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ ये भ्वादिगण की धातुयें हैं, सो शप् प्राप्त था, 'उ' विधान कर दिया है ॥

क्र्यादिभ्यः श्ना ॥३।१।८१॥

क्र्यादिभ्यः ५।३॥ श्ना लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ स०—क्री आदिर्येषां ते क्र्यादयः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—डुक्रीञ् इत्येवमादिभ्यो धातुभ्यः श्नाप्रत्ययो भवति कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ॥ उदा०—क्रीणाति, क्रीणीतः ॥

भाषार्थः—[क्र्यादिभ्यः] 'डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये' इत्यादि धातुओं से [श्ना] श्ना प्रत्यय होता है कर्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ॥ उदा०—क्रीणाति (खरीदता है), क्रीणीतः ॥ 'क्री ना ति', अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि (८।४।२) से न को ण होकर क्रीणाति बन गया। क्रीणीतः में ईहल्यघोः (६।४।११३) से ईत्व हो गया है ॥

यहाँ से 'श्ना' की अनुवृत्ति ३।१।८२ तक जायेगी ॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च ॥३।१।८२॥

स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः ५।३॥ श्नुः १।१॥ च अ० ॥ स०—स्तम्भु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—श्ना, सार्वधातुके, कर्त्तरि, धातोः, प्रत्ययः,

परश्च ।। अर्थः—स्तम्भु, स्तुम्भु, स्कम्भु, स्कुम्भु इति चत्वारः सौत्रा धातवः, 'स्कुञ् आप्रवणे' इत्येतेभ्यः श्नु प्रत्ययो भवति, चकारात् श्ना च कर्तृवाचिनि सार्वधातुके परतः ।। उदा०—स्तभ्नाति, स्तभ्नोति । स्तुभ्नाति, स्तुभ्नोति । स्कभ्नाति, स्कभ्नोति । स्कुभ्नाति, स्कुभ्नाति । स्कुनाति, स्कुनोति ।।

भाषार्थः—[स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः] स्तम्भादि धातुओं से [श्नुः] श्नु प्रत्यय होता है, [च] तथा श्ना प्रत्यय भी होता है, कर्तृवाची सार्वधातुक परे रहते ।। स्तम्भादि ४ सौत्र धातुयें रोकने अर्थ में हैं । स्कुञ् क्र्यादिगण में पढ़ी हैं, सो इससे श्ना प्रत्यय सिद्ध ही था, पुनः श्नु विधान करने के लिये वचन है ।। उदा०—स्तभ्नाति (रोकता है), स्तभ्नोति । स्तुभ्नाति (रोकता है), स्तुभ्नोति । स्कभ्नाति (रोकता है), स्कभ्नोति । स्कुभ्नाति (रोकता है), स्कुभ्नोति । स्कुनाति (कूदता है), स्कुनोति ।।

हलः श्नः शानज्झौ ।।३।१।८३।।

हलः ५।१।। श्नः ६।१।। शानच् १।१।। हौ ७।१।। अर्थः—हलन्ताद् धातोरुत्तरस्य श्नाप्रत्ययस्य स्थाने शानच् आदेशो भवति हौ परतः ।। उदा०—मुषाण रत्नानि । पुषाण ।।

भाषार्थः—[हलः] हलन्त धातु से उत्तर [श्नः] श्ना प्रत्यय के स्थान में [शानच्] शानच् आदेश हो जाता है [हौ] हि परे रहते ।। उदा०—मुषाण रत्नानि (रत्नों को चुरा लो) । पुषाण (पुष्ट करो) ।। मुष् पुष् हलन्त धातुयें हैं, सो पूर्ववत् लोट् लकार में 'मुष् श्ना सिप्' बन कर सेर्ह्यपिच्च (३।४।८७) से सिप् को हि, तथा प्रकृत सूत्र से श्ना को शानच् आदेश होकर 'मुष् शानच् हि' बना । अतो हेः (६।४।१०५) से हि का लुक होकर मुषाण बन गया है ।।

यहाँ से 'श्नः' की अनुवृत्ति ३।१।८४ तक जायेगी ।।

छन्दसि शायजपि ।।३।१।८४।।

छन्दसि ७।१।। शायच् १।१।। अपि अ० ।। अनु०—श्नः ।। अर्थः—छन्दसि विषये श्नः स्थाने 'शायच्' आदेशो भवति, शानजपि ।। उदा०—गृभाय जिह्वया मधु (ऋ० ८।१७।५) । शानच्—बधान पशुम् ।।

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में श्ना के स्थान में [शायच्] शायच् आदेश होता है, तथा शानच् [अपि] भी होता है ।। श्ना को शायच् आदेश होकर गृभ शायच् =गृभाय बनेगा ।।

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।१।८६ तक जायेगी।।

व्यत्ययो बहुलम् ॥३।१।८५॥

व्यत्ययः १।१। बहुलम् १।१॥ **अनु०**—छन्दसि ॥ **अर्थः**—छन्दसि विषये सर्वेषां विधीनां बहुलप्रकारेण व्यत्ययो भवति ॥ अत्र महाभाष्यकारः प्रकरणान्तर-विहितानां स्यादिविकरणानामपि व्यत्ययसिद्ध्यर्थं योगविभागं करोति । यथा—'व्यत्ययः' इत्येको योगः । तस्यायमर्थः—व्यत्ययो भवति स्यादिविकरणानाम् । ततश्च 'बहुलम्' । व्यत्यय इत्यनुवर्त्तते । तस्यायमर्थः—बहुलं छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति ॥ किं पुनरिदं व्यत्ययो नाम ? उत्तरयति—व्यतिगमनं व्यत्ययः । यस्य प्राप्तिः स न स्यादन्य एव स्याद्, अथवा कोऽपि न स्यात् ॥ के च ते विधयो येषां व्यत्ययो भवति ? उच्यते—सुपां व्यत्ययः, तिङां व्यत्ययः, वर्णव्यत्ययः, लिङ्गव्यत्ययः, कालव्यत्ययः, पुरुषव्यत्ययः, आत्मनेपदव्यत्ययः, परस्मैपदव्यत्ययः । तत्र क्रमेणोदाह्रियते ॥ **उदा०**—सुपां व्यत्ययः—युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणायाः (ऋक् ० १।१६४।६) । दक्षिणायामिति प्राप्ते, सप्तम्या विषये व्यत्ययेन षष्ठी । तिङां व्यत्ययः—चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति (ऋ० १।१६२।६)। तक्षन्तीति प्राप्ते, झिविषये व्यत्ययेन तिप् । वर्णव्यत्ययः—त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम् । शुधितमिति प्राप्ते, धकारस्य विषये भकारो वर्ण-व्यत्ययः । लिङ्गव्यत्ययः—मधोर्गृह्णाति; मधोस्तृप्ता इवासते । मधुन इति प्राप्ते, नपुंसकलिङ्गविषये पुंल्लिङ्गव्यत्ययः । कालव्यत्ययः—श्वोऽग्नीनाधास्यमानेन; श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन । आधाता यष्टेत्येवं प्राप्ते, अनद्यतनभविष्यत्कालविहितलुट्लकार-विषये व्यत्ययेन लृट्लकारः । पुरुषव्यत्ययः—अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः (ऋ० ७।१०४।१५)। वियूयादिति प्राप्ते, प्रथमपुरुषविषये व्यत्ययेन मध्यमपुरुषः । आत्मने-पदव्यत्ययः—ब्रह्मचारिणमिच्छते (अथर्व ११।५।१७)। इच्छतीति प्राप्ते, परस्मैपद-विषये आत्मनेपदव्यत्ययः । परस्मैपदव्यत्ययः—प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति । 'युध्यते' इति प्राप्ते, आत्मनेपदविषये परस्मैपदव्यत्ययः ॥

भाषार्थः—वेदविषय में [बहुलम्] बहुल करके सब विधियों का [व्यत्ययः] व्यत्यय होता है ॥

यहाँ महाभाष्यकार ने 'व्यत्ययः' ऐसा सूत्र का योगविभाग करके प्रकरणान्तर विहित जो स्यादिविकरण उनका भी व्यत्यय सिद्ध किया है । तथा द्वितीय योगविभाग 'बहुलम्' से वेदविषय में सभी विधियों का व्यत्यय सिद्ध किया है । वे कौन-कौनसी विधियाँ हैं, इसका भी सङ्कलन महाभाष्य में निम्न प्रकार से है—

सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन ॥

'उपग्रह' परस्मैपद आत्मनेपद को कहते हैं। नर अर्थात् पुरुषव्यत्यय। इन सब के उदाहरण ऊपर संस्कृतभाग में दिखा ही दिये हैं। तथा यह भी बता दिया है कि कहाँ पर क्या व्यत्यय हुआ है, और क्या प्राप्त था। अतः यहाँ पुनः उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। व्यत्यय' व्यतिगमन को कहते हैं, अर्थात् किसी विषय में प्राप्त कुछ हो और हो कुछ जाना, अथवा कुछ न होना, यही व्यत्यय है ॥

अङ्· लिङ्याशिष्यङ् ॥३।१।८६॥

लिङि ७।१॥ आशिषि ७।१॥ अङ् १।१॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः,

---

१. यहां व्यत्यय के विषय में लोगों में बड़ी भ्रान्ति है। अज्ञानवश कुछ लोग कहते हैं कि 'बाउला छन्दसि' ऐसा सूत्र बनाना चाहिए। तथा कुछ लोग कहते हैं कि वेद में व्यत्यय हो ही क्यों? जब परमात्मा ने वेद बनाया, तो उसे पहले ही पूरा-पूरा ठीक क्यों न बना दिया? इसका समाधान यह है कि जो व्यक्ति शास्त्र की मर्यादा एवं प्रक्रिया को पढ़ा नहीं, या जिसकी बुद्धि कुण्ठित होने से उसके मस्तिष्क में यह बात ठीक बैठी नहीं, ऐसे ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोगों के होते हुए, जब कि मूर्ख जनता उनको पण्डित या विद्वान् पुकारने लग जावे, ऐसी अवस्था में उनको समझाना भी बहुत कठिन है। तो भी हम जनता के अज्ञान की निवृत्ति के लिए कुछ थोड़ा कहते हैं—

निरुक्तकार ने चौथे पांचवे छठे अध्याय में अनवगत-संस्कार (=जिनका प्रकृति-प्रत्यय स्पष्ट ज्ञात नहीं होता) शब्दों का निर्वचन दिखाया है, जो पूर्वोत्तरपदाधिकार, प्रकरण, शब्दसारूप्य तथा अर्थोपपत्ति इन चार बातों के आधार पर होता है। अर्थात् उनमें प्रकृति-प्रत्यय की कल्पना ही पूर्वोक्तानुसार अनिवार्य मानी गई है। **'अर्थनित्यः परीक्षेत'** अर्थात् अर्थ को प्रधान मानकर निर्वचन करना ही निरुक्तकार का सिद्धान्त हैं। सो इसी प्रकार वेद में जहाँ पूर्वापरप्रकरणादि के अनुसार कोई शब्द सामान्य व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं प्रतीत होता, वहीं के लिए पाणिनि मुनि एवं महा-भाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने भी व्यत्यय के सिद्धान्त को मानकर वेदमन्त्रों के व्यापक अर्थ का प्रतिपादन किया है, नहीं तो मन्त्र संकुचित अर्थ में ही रह जाते। जैसा कि **"हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीम्"** यहां 'दाधार' का अर्थ धारण करता है, धारण किया, धारण करेगा, तीनों कालों में होता है, केवल भूतकाल में ही नहीं। यह भी एक प्रकार का व्यत्यय ही है, जो कि **छन्दसि लुङ्लङ्लिटः** (३।४।६) से कहा है। इस व्यत्यय से मन्त्र के अर्थ की व्यापकता सिद्ध होती है। केवल भूतकालिक अर्थ करने से अर्थ सङ्कुचित हो जाता अतः व्यत्यय वेद का एक मूलभूत अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण विधान है। इस पर उपहास करनेवाले स्वयं उपहास के पात्र हैं॥

परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये आशिषि यो लिङ् विधीयते, तस्मिन् परतोऽङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उपस्थेयं वृषभं तुग्रियाणाम् । सत्यमुपगेयम् । गमेम जानतो गृहान् । मन्त्रं वोचेमाग्नये (यजु० ३।११) । विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् (अथर्व १६।४।२) व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयम् । शकेम त्वा समिधम् (ऋ० १।६४।३)। अरुवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये (ऋ० १०।६३।१०) ॥

भाषार्थः—वेदविषय में [लिङि आशिषि] आशिषि लिङ् के परे रहते [अङ्] अङ् प्रत्यय होता है ।। छन्द में आशीर्लिङ् सार्वधातुक भी होता है, अतः शप् आदि विकरणों के अपवाद अङ् का विधान यहाँ किया गया है । अङ् करने का प्रयोजन स्था, गा, गम, वच, विद, शक, रुह इन्हीं धातुओं में है, सो इसी प्रकार संस्कृतभाग में उदाहरण दिये हैं ।। कर्मवत्

कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥३।१।८७॥

कर्मवत् अ० ॥ कर्मणा ३।१॥ तुल्यक्रियः १।१॥ स० – तुल्या क्रिया यस्य स तुल्यक्रियः (कर्त्ता), बहुव्रीहिः ॥ कर्मणा तुल्यं वर्त्तत इति कर्मवत्, तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः (५।१।११४) इति वतिः प्रत्ययः ॥ अनु०—कर्त्तरि ॥ अर्थः--कर्मणा= कर्मस्थया क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवद्भवति, अर्थात् यस्मिन् कर्मणि कर्तृ भूतेऽपि क्रिया तद्वल्लक्ष्यते यथा कर्मणि, स कर्त्ता कर्मवद्भवति=कर्माश्रयाणि कार्याणि प्रतिपद्यते ॥ कर्त्तरि शप् (३।१।६८) इत्यतोऽत्र कर्तृग्रहणं मण्डूकप्लुतगत्याऽनुवर्त्तते, तच्च प्रथमया विपरिणम्यते ॥ यग्-आत्मनेपद-चिण्-चिण्वद्भावाः प्रयोजनम् ॥ उदा०— भिद्यते काष्ठं स्वयमेव । अभेदि काष्ठं स्वयमेव । कारिष्यते कटः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—जिस कर्म के कर्त्ता हो जाने पर भी क्रिया वैसी ही लक्षित हो, जैसी कि कर्मावस्था में थी, उस [कर्मणा] कर्म के साथ [तुल्यक्रियः] तुल्यक्रियावाले कर्त्ता को [कर्मवत्] कर्मवद्भाव होता है ॥ इस सूत्र में कर्त्तरि शप् (३।१।६८) से कर्त्तरि की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुतगति से आ रही है, जिसका प्रथमा में विपरिणाम हो जाता है ।।

'देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति' यहाँ देवदत्त कर्त्ता तथा काष्ठ कर्म है । जब वही काष्ठ अत्यन्त सूखा हुआ हो, फाड़ने में कोई कठिनाई न पड़े, तो सौकर्यातिशय विवक्षा में वह कर्म ही कर्त्ता बन जाता है, अर्थात् कर्म की ही कर्तृत्व-विवक्षा होती है । जैसे– 'काष्ठं भिद्यते स्वयमेव', यहाँ लकड़ी स्वयं फटी जा रही है । सो ऐसी अवस्था में उस कर्त्ता को कर्म के समान माना जाये, कर्मवद्भाव हो जाये, इसलिये यह सूत्र है । कर्मवद्भाव करने के चार प्रयोजन हैं—सार्वधातुके यक् (३।१।६७) से यक्, भाव-

कर्मणोः (१।३।१३) से आत्मनेपद, चिण्भावकर्मणोः (३।१।६६) से चिण्, स्यसिच्सीयुट्० (६।४।६२) से चिण्वद्भाव। इन चारों प्रयोजनोंवाले उदाहरण ऊपर संस्कृतभाग में दिखा दिये हैं ॥

सूत्र में 'कर्मणा' शब्द कर्मस्थक्रिया का वाचक है। इसी से जाना जाता है कि धातुयें चार प्रकार की होती हैं—(१) कर्मस्थक्रियक, (२) कर्मस्थभावक, (३) कर्तृस्थक्रियक, (४) कर्तृस्थभावक। जिन धातुओं की क्रिया (=व्यापार) कर्म में ही स्थित रहे, वह कर्मस्थक्रियक हैं। जैसे—'देवदत्त लकड़ी फाड़ता है,' यहां फटनारूपी व्यापार लकड़ी-कर्म में हो रहा है, न कि कर्त्ता देवदत्त में। सो फाड़ना (=भिनत्ति) क्रिया कर्मस्थक्रियक है। जिनका धात्वर्थ कर्म में हो, वह कर्मस्थभावक हैं। यथा—'अग्निः घटं पचति' (अग्नि घट को पकाता है)। यहाँ पकनारूपी धात्वर्थ कर्म घट में है, अतः पकना क्रिया कर्मस्थभावक है। इसी प्रकार जिन धातुओं का व्यापार कर्त्ता में स्थित हो,वह कर्तृस्थक्रियक हैं।यथा—'देवदत्त गाँव को जाता है,' यहाँ जानारूपी व्यापार कर्त्ता में है, न कि कर्म में। इसी प्रकार कर्त्ता में स्थित धात्वर्थ को कर्तृस्थभावक कहते हैं।यथा—'देवदत्तः आस्ते=देवदत्त बैठता है।यहाँ बैठना रूपी धात्वर्थ देवदत्त में है ॥सामान्यरूप में क्रिया एवं भाव में इतना ही अन्तर माना गया है कि—"अपरिस्पन्दनसाधनसाध्यो धात्वर्थो भावः"अर्थात जिसमें हिलना-जुलना=चेष्टा न हो, ऐसे साधनों से सिद्ध करने योग्य धात्वर्थ भाव है। तथा 'सपरिस्पन्दनसाधनसाध्यस्तु क्रिया" अर्थात् जिसमें चेष्टा=हिलना-जुलना पाया जावे, ऐसे साधनों से सिद्ध करने योग्य धात्वर्थ का नाम क्रिया है। इस प्रकार जहाँ कुछ क्रियाकृत विशेष हो, वह कर्मस्थक्रियक और कर्तृस्थक्रियक, जहाँ न हो वह कर्मस्थभावक और कर्तृस्थभावक है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है ॥ इस तरह सूत्र में 'कर्मणा' शब्द 'कर्मस्थक्रिया' का वाचक होने से यह निष्कर्ष निकला कि कर्मवद्भाव कर्मस्थक्रियक एवं कर्मस्थभावक को ही होता है, कर्तृस्थक्रियक एवं कर्तृस्थभावक को नहीं होता ॥

यहाँ 'तुल्यक्रियः' में तुल्य शब्द सादृश्य अर्थ का वाचक है, न कि साधारण अर्थ का। सो सूत्र का अर्थ हुआ—जिस कर्म के कर्त्ता बन जाने पर भी (अर्थात् उदाहरण में काष्ठ पहले कर्म था, उसके कर्त्ता बन जाने पर भी) क्रिया तद्वत् लक्षित हो, जैसी कि कर्मावस्था में थी, ऐसे तुल्यक्रियावाले कर्त्ता को कर्मवद्भाव=कर्म के सदृश कार्य होता है। उदाहरण में जो भेदनक्रिया काष्ठ की कर्मावस्था में थी, वही भेदनक्रिया काष्ठ के कर्त्ता बन जाने पर भी है, अतः तुल्यक्रियत्व है ही। लकारसम्बन्धी कार्यों में ही यह कर्मवद्भाव होता है। अतः कर्मवाच्य में कहे हुए लकारसम्बन्धी चार कार्य कर्मकर्त्ता में भी हो जाते हैं, यही कर्मवद्भाव का प्रयोजन है ॥

यहाँ से 'कर्मवत्' की अनुवृत्ति ३।१।९० तक जायेगी ॥

तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥३।१।८८॥

तपः ६।१॥ तपःकर्मकस्य ६।१॥ एव अ० ॥ स०—तपः कर्म यस्य स तपःकर्मकः, तस्य, बहुव्रीहिः । अनु०—कर्मवत् ॥ अर्थः—'तप सन्तापे' अस्य धातोः कर्त्ता कर्मवद्भवति, स च तपःकर्मकस्यैव नान्यकर्मकस्य ॥ तुल्यक्रियाऽभावात्पूर्वेणाऽप्राप्तः कर्मवद्भावो विधीयते ॥ उदा०—तप्यते तपस्तापसः, अतप्त तपस्तापसः ॥

भाषार्थः—[तपः] 'तप सन्तापे' धातु के कर्त्ता को कर्मवद्भाव हो जाता है, यदि वह तप धातु [तपःकर्मकस्य] तप कर्मवाली [एव] ही हो, अन्य किसी कर्मवाली न हो ॥ यदि सकर्मक धातुओं को कर्मवद्भाव हो, तो तप को ही हो, ऐसा द्वितीय नियम भी महाभाष्य में इस सूत्र के योगविभाग से निकाला है ॥

सत्याचरणादि तप कर्म हैं। तपांसि तापसं तपन्ति (तपस्वी को सदाचारादि व्रत के पालनरूपी तपकर्म दुःख दे रहे हैं)। यहाँ तप धातु का तपांसि कर्त्ता, तथा तापसम् कर्म है। यही तापसम् कर्म जब पूर्वोक्त रीति से कर्त्ता बन जाता है, तो तप्यते तपस्तापसः (तपस्वी स्वयमेव स्वर्गादि कामना के लिये तप को प्राप्त करता है) यहाँ, कर्मवद्भाव हो जाता है ॥ कर्त्रावस्था में "तपन्ति" का अर्थ "दुःख देना" है, तथा कर्मकर्त्ता बन जाने पर 'प्राप्त होना' है। अतः तुल्यक्रियत्व=सदृशक्रियत्व न होने से पूर्व सूत्र से कर्मवद्भाव प्राप्त नहीं था, यह अप्राप्त-विधान है ॥ 'तप्यते' में कर्मवद्भाव होने से पूर्ववत् यक और आत्मनेपद हो गये हैं। तथा 'अतप्त' में चिण भावकर्मणोः (३।१।६६) से प्राप्त चिण् का तपोऽनुतापे च (३।१।६५) से निषेध हो जाने से सिच् ही हो जाता हैं, जिसका झलो झलि (८।२।२६) से लोप हो जाता है। शेष सिद्धियाँ पूर्ववत् ही हैं ॥

न दुहस्नुनमां यक्चिणौ ॥३।१।८९॥

न अ० ॥ दुहस्नुनमाम् ६।३॥ यक्चिणौ १।२॥ स०—दुहश्च स्नुश्च नम् च दुहस्नुनमः, तेषां, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । यक् च चिण् च यक्चिणौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मवत् ॥ अर्थः—दुह स्नु नम इत्येतेषां धातूनां कर्मकर्त्तरि कर्मवद्भावापदिष्टौ यक्चिणौ न भवतः ॥ दुहेरनेन यक् प्रतिषिध्यते, चिण् तु दुहश्च (३।१।६३) इत्यनेन पूर्वमेव विभाषितः ॥ उदा०—दुग्धे गौः स्वयमेव, अदुग्ध गौः स्वयमेव, अदोहि गौः स्वयमेव । प्रस्नुते शोणितं स्वयमेव, प्रास्नोष्ट शोणितं स्वयमेव । नमते दण्डः स्वयमेव, अनंस्त दण्डः स्वयमेव ॥

भाषार्थः—[दुहस्नुनमाम्] दुह, स्नु, नम इन धातुओं को कर्मवद्भाव में कहे

हुये कार्य [यक्चिणौ] यक् और चिण् [न] नहीं होते हैं ।। कर्मवद्भाव=कर्मकर्त्ता में यक्, चिण्, आत्मनेपद, चिण्वद्भाव यह चार कार्य होते हैं । उनमें से यक् और चिण् का प्रकृत सूत्र से प्रतिषेध हो जाने से यहाँ आत्मनेपद और चिण्वद्भाव ही होता है । चिण्वद्भाव भी अजन्त (६।४।६२ से) अङ्ग को ही कहा है। अतः दुह और नम् के अजन्त अङ्ग न होने से इनको चिण्वद्भाव नहीं होता। केवल स्नु जो कि अजन्त है, उसे पक्ष में चिण्वद्भाव होकर लुङ् लकार में 'प्रास्नाविष्ट" रूप भी बनता है ।।

'गां दोग्धि पयः' यहाँ गां कर्म है । जब गौ स्वयमेव दोहन-क्रिया कराने की इच्छा से खड़ी हो जाती है, तब सौकर्यातिशय विवक्षा में गां कर्म, कर्त्ता बन जाता है । उस अवस्था में कर्मवत्कर्मणा० (३।१।८७) से कर्मवद्भाव होकर सब कार्य प्राप्त थे, उन्हें निषेध कर दिया है । इसी प्रकार औरों में भी समझें ।। दुह धातु को कर्मकर्ता में केवल यक् का निषेध ही इस सूत्र से होता है, चिण् तो दुहश्च(३।१।६३) से विकल्प करके प्राप्त ही है । यक् का निषेध होने पर यथाप्राप्त शप् हो जाता है, तथा चिण् का निषेध होने पर सिच् हो जाता है ।।

कर्मवद्, श्यन् **कुषिरजोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च ।।३।१।९०।।**

कुषिरजोः ६।२।। प्राचाम् ६।३।। श्यन् १।१।। परस्मैपदम् १।१।। च अ० ।। स०—कुषिश्च रज् च कुषिरजौ, तयोः कुषिरजोः इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—कर्मवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—'कुष निष्कर्षे', 'रञ्ज रागे' अनयोर्धात्वोः कर्मकर्त्तरि श्यन् प्रत्ययो भवति, परस्मैपदं च प्राचामाचार्याणां मतेन ।। कर्मवद्भावेन यक्प्राप्तः, तस्यापवादः श्यन्, एवमात्मनेपदस्यापवादः परस्मैपदम् ।प्राचां ग्रहणं विकल्पार्थम्,अन्येषां मते यगात्मनेपदे भवत एव ।। उदा०—कुष्यति पादः स्वयमेव । रज्यति वस्त्रं स्वयमेव । अन्येषां मते—कुष्यते, रज्यते ।।

भाषार्थः—[कुषिरजोः] कुष और रञ्ज धातु को कर्मवद्भाव में [श्यन्] श्यन् प्रत्यय, [च] और [परस्मैपदम्] परस्मैपद होता है, [प्राचाम्] प्राचीन आचार्यों के मत में ।। कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः (३।१।८७) से कर्मवद्भाव होकर कर्मकर्त्ता में यक् और आत्मनेपद प्राप्त था, उसका अपवाद यह श्यन् और परस्मैपद का विधान है ।। 'प्राचाम्' ग्रहण यहां विकल्पार्थ है, अर्थात् प्राचीन आचार्यों के मत में श्यन् और परस्मैपद होगा, अन्यों के मत में यक् एवं आत्मनेपद ही होगा ।।

उदा०—कुष्यति पादः स्वयमेव (पैर स्वयं खिचता है)। रज्यति वस्त्रं स्वयमेव (कपड़ा स्वयं रँगा जा रहा) है । पक्ष में—कुष्यते, रज्यते ।। सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं ।।

धातोः ॥३।१।६१॥

धातोः ५।१॥ अर्थः —आ तृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः (३।४।११७) धातोरित्ययमधिकारो वेदितव्यः ॥ तव्यत्तव्यानीयरः (३।१।६६) इत्यादीनि वक्ष्यति, तानि धातोरेव विधास्यन्ते ॥

भाषार्थः— यहाँ से [धातोः] धातोः का अधिकार तृतीयाध्याय की समाप्तिपर्यन्त जायेगा, ऐसा जानना चाहिये ॥ अतः तृतीयाध्याय की समाप्तिपर्यन्त तव्यत् तव्य अनीयर् आदि जो प्रत्यय कहेंगे, वे धातु से ही होंगे ॥

तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् ॥३।१।६२॥

तत्र अ० ॥ उपपदम् १।१॥ सप्तमीस्थम् १।१॥ समीपोच्चारितं पदम् उपपदम् ॥ स०—सप्तम्यां विभक्तौ तिष्ठतीति सप्तमीस्थम्, तत्पुरुषः ॥ अनु०—धातोः ॥ अर्थः—तत्र=एतस्मिन् धात्वधिकारे सप्तमीस्थम्=सप्तमीनिर्दिष्टं यत्पदं तदुपपदसंज्ञं भवति ॥ उदा० - कुम्भकारः, नगरकारः ॥

भाषार्थः— [तत्र] इस धातु के अधिकार में जो [सप्तमीस्थम्] सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट पद हैं, उनकी [उपपदम्] उपपदसंज्ञा होती है ॥ कर्मण्यण् (३।२।१) में 'कर्मणि' सप्तमीनिर्दिष्ट पद है, सो इसकी उपपद संज्ञा होने से 'कर्म उपपद रहते' ऐसा सूत्र का अर्थ बनकर, उपपदमतिङ् (२।२।१६) से समास हो गया है ॥ सप्तमीनिर्दिष्ट पद कहीं उपपदसंज्ञक, तथा कहीं अर्थवाचक भी हैं, सो यह भेद तत्तत् सूत्र में ही विदित होगा ॥ सिद्धियाँ २।२।१६ सूत्र में देखें ॥

यहाँ से 'तत्र' की अनुवृत्ति ३।१।६४ तक जायेगी ॥

कृदतिङ् ॥३।१।६३॥

कृत् १।१॥ अतिङ् १।१॥ स०—न तिङ् अतिङ्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्र, धातोः, प्रत्ययः ॥ अर्थः—अस्मिन् धात्वधिकारे तिङ्भिन्नाः प्रत्ययाः कृत्संज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—कर्त्ता, कारकः । कर्त्तव्यम् ॥

भाषार्थः— इस धातु के अधिकार में [अतिङ्] तिङ्भिन्न जो प्रत्यय उनकी [कृत्] कृत्संज्ञा होती है ॥ कृत् संज्ञा होने से कृत्तद्धितसमासाश्च (१।२।४६) से कृत्-प्रत्ययान्त शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है, जो कि अर्थवदधातु० (१।२।४५) में 'अप्रत्ययः' निषेध करने से प्राप्त नहीं थी । एवं कर्त्ता कारकः में ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय भी कृत्संज्ञक होने से कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में हो जाते

हैं ॥ कर्त्ता, कारकः की सिद्धि परि० १।१।१,२ में देखें, तथा कर्त्तव्यम् की सिद्धि परि० ३।१।३ में देखें ॥

अस्त्री - असरूप प्रत्यय विकल्प से होते हैं।

वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ॥३।१।९४॥

वा अ० ॥ असरूपः १।१॥ अस्त्रियाम् ७।१॥ स०—समानं रूपं यस्य स सरूपः, बहुव्रीहिः । न सरूपः असरूपः, नञ्तत्पुरुषः । न स्त्री अस्त्री, तस्यां, नञ्-तत्पुरुषः ॥ अनु०—तत्र, धातोः, प्रत्ययः ॥ अर्थः—अस्मिन्धात्वधिकारे असरूपः= असमानरूपोऽपवाद-प्रत्ययो विकल्पेन बाधको भवति, स्त्र्यधिकारविहितप्रत्ययं वर्जयित्वा ॥ सर्वत्र अपवादैर्नित्यम् उत्सर्गा बाध्यन्ते इति नियमः । तत्र योऽसरूपोऽपवादः प्रत्ययः स विकल्पेन बाधकः स्यात् नतु नित्यम्, एतदर्थं सूत्रमिदमारभ्यते ॥ उदा०—ण्वुल्तृचौ (३।१।१३३) उत्सर्गसूत्रम्—"विक्षेपकः, विक्षेप्ता", तस्य इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः (३।१।१३५) इत्ययमपवादः, स विकल्पेन बाधको भवति—विक्षिपः ॥

भाषार्थः—इस धातु के अधिकार में [असरूपः] असमानरूपवाले अपवाद प्रत्यय [वा] विकल्प से बाधक होते हैं, [अस्त्रियाम्] 'स्त्री' अधिकार में विहित प्रत्ययों को छोड़कर ॥ अपवादसूत्र उत्सर्गसूत्रों को नित्य ही बाधकर हो जाते हैं। अतः विकल्प से बाधक हों, पक्ष में औत्सर्गिक प्रत्यय भी हो जायें, इसीलिये यह सूत्र बनाया है ॥ ण्वुल्तृचौ (३।१।१३३) यह उत्सर्गसूत्र है, तथा इगुपधज्ञा० (३।१।१३५) यह उसका अपवाद है । सो इगुपध क्षिप धातु से क प्रत्यय भी हुआ, तथा ण्वुल् तृच् भी विकल्प से हो गये, क्योंकि ये परस्पर असरूप थे ॥

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनुबन्धों को हटाकर परस्पर प्रत्ययों की असरूपता देखनी होगी । 'क' प्रत्यय अनुबन्धरहित 'अ' है, तथा ण्वुल और तृच्, वु तथा तृ हैं । सो ये परस्पर असरूप=समानरूपवाले नहीं हैं ॥ उदा०—विक्षेपकः, विक्षेप्ता, विक्षिपः (विघ्न डालनेवाला) ॥

कृत्य

कृत्याः ॥३।१।९५॥

कृत्याः १।३॥ अनु०—प्रत्ययः ॥ अर्थः—अधिकारोऽयम् । ण्वुल्तृचौ(३।१।१३३) इति यावत् ये प्रत्यया विधास्यन्ते, ते कृत्यसंज्ञका भविष्यन्तीति वेदितव्यम् ॥ उदा०—गन्तव्यो ग्रामो देवदत्तस्य देवदत्तेन वा ॥

भाषार्थः—यहाँ से आगे 'ण्वुल्तृचौ' (३।१।१३३) सूत्र तक जो भी प्रत्यय कहेंगे वे [कृत्याः] कृत्यसंज्ञक होंगे, ऐसा अधिकार जानना चाहिये ॥ गम्लृ धातु से तव्यय प्रत्यय हुआ है, जिसकी कृत्य संज्ञा है । अतः कृत्यानां कर्तरि वा (२।३।७१) से देवदत्त में विकल्प

से षष्ठी विभक्ति हो गई है ॥ कृत्य संज्ञा करने से कृत् संज्ञा की निवृत्ति नहीं होती है, अपितु कृत् संज्ञा भी कृत्यों की होती है । अतः कृत्तद्धित० (१।२।४६) से प्रातिपदिक संज्ञा सिद्ध हो जाती है ॥ तव्यत्, तव्य, अनीयर्

तव्यत्तव्यानीयरः ॥३।१।९६॥

तव्यत्तव्यानीयरः १।३॥ स०—तव्यच्च तव्यश्च अनीयर् च तव्यत्तव्यानीयरः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः तव्यत् तव्य अनीयर् इत्येते प्रत्ययाः भवन्ति॥ उदा०—कर्त्तव्यम् । कर्त्तव्यम् । करणीयम् ॥

भाषार्थः—धातु से [तव्यत्तव्यानीयरः] तव्यत तव्य और अनीयर् प्रत्यय होते हैं ॥ तव्यत् में तित् स्वरार्थ है । अतः तित्स्वरितम् (६।१।१७९) से तव्य का 'य' स्वरित होता है । तथा तव्य प्रत्यय आद्युदात्तश्च (३।१।३) से आद्युदात्त होता है, शेष अनुदात्त हो ही जायेगा । अनीयर् में रित् उपोत्तमं रिति (६।१।२११) से मध्योदात्त करने के लिये है ॥

अचो यत् ॥३।१।९७॥ यत्

अचः ५।१॥ 'यत्' १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अजन्ताद्धातोर्यत् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—गेयम्, पेयम्, चेयम्, जेयम् ॥

भाषार्थः—[अचः] अजन्त धातु से [यत्] यत् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥

यहां से 'यत्' की अनुवृत्ति ३।१।१०५ तक जायेगी ॥ यत्

पोरदुपधात् ॥३।१।९८॥ पु-अन्त, अत्-उपधा

पोः ५।१॥ अदुपधात् ५।१॥ स०—अत् उपधा यस्य स अदुपधः, तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अदुपधात् पवर्गान्ताद्धातोर्यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शप्—शप्यम् । जप्—जप्यम् । रभ्—रभ्यम् । डुलभष्—लभ्यम् । गम्लृ—गम्यम् ॥

भाषार्थः—[अदुपधात्] अकार उपधावाली [पोः] पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय होता है । उदा०—शप्यम् (शाप के योग्य), जप्यम् (जपने योग्य), रभ्यम् (शीघ्रता से करने योग्य), लभ्यम् (प्राप्त करने योग्य), गम्यम् (जाने योग्य) ॥ उदाहरणों में अनुबन्ध हटा देने पर सब धातुएं अदुपध तथा पवर्गान्त हैं, सो यत् प्रत्यय

हो गया है ॥ ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद सूत्र है ॥

शकिसहोश्च ॥३।१।९९॥

शकिसहोः ६।२॥ च अ० ॥ स०—शकिश्च सह् च शकिसहौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—'शक्लृ शक्तौ', 'षह मर्षणे' इत्येताभ्यां धातुभ्यां यत् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—शक्यम् । सह्यम् ॥

भाषार्थः— [शकिसहोः] **'शक्लृ शक्तौ', 'षह मर्षणे' इन धातुओं से [च] भी यत् प्रत्यय होता है ॥ यह भी ण्यत् का अपवादसूत्र है ॥ यहां पञ्चम्यर्थ में षष्ठी का प्रयोग है ॥** उदा०—**शक्यम् (हो सकने योग्य) । सह्यम् (सहन करने योग्य) ॥**

गदमदचरयमश्चानुपसर्गे ॥३।१।१००॥

गदमदचरयमः ५।१॥ च अ० ॥ अनुपसर्गे ७।१॥ **स०**—गदश्च मदश्च चरश्च यम् चेति गदमदचरयम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः । न विद्यते उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—गद व्यक्तायां वाचि, मदी हर्षे, चर गतिभक्षणयोः, यम उपरमे इत्येतेभ्य उपसर्गरहितेभ्यो धातुभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । **उदा०**—गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् ॥

भाषार्थः—[गदमदचरयमः] **गद, मद, चर, यम् इन [अनुपसर्गे] उपसर्गरहित धातुओं से [च] भी यत् प्रत्यय होता है ॥ यह भी पूर्ववत् ण्यत् का अपवाद है ॥** उदा०— **गद्यम् (बोलने योग्य) । मद्यम् (हर्ष करने योग्य) । चर्यम् (खाने योग्य) । यम्यम् (शान्त करने योग्य) ॥**

अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ॥३।१।१०१॥

अवद्यपण्यवर्याः १।३॥ गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु ७।३॥ **स०**—अवद्यपण्यवर्याः, गर्ह्यपणितव्या० उभयत्रापि इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—गर्ह्यम्=निन्द्यम्, पणितव्यम्=क्रेतव्यम्, अनिरोधः=अप्रतिबन्धः इत्येतेष्वर्थेषु यथासङ्ख्यम् अवद्यपण्यवर्या इत्येते शब्दा यत्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ **उदा०**—अवद्यं पापम् । पण्यः कम्बलः, पण्या गौः । शतेन वर्या, सहस्रेण वर्या ॥

[भाषा]र्थः—[अवद्यपण्यवर्याः] **अवद्य पण्य वर्या (वृङ् सम्भक्तौ से) ये शब्द [यथा]सङ्ख्य करके [गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु] गर्ह्य पणितव्य और अनिरोध अर्थों में [यत्प्र]त्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥** उदा०—**अवद्यं पापम् (निन्दनीय, न करने**

योग्य) । पण्य: कम्बल: (खरीदने योग्य कम्बल), पण्या गौ: (खरीदने योग्य गौ) । शतेन वर्या, सहस्रेण वर्या (सौ या सहस्र से सेवन करने योग्य) ॥ अवद्यम् में वद: सुपि क्यप् च (३।१।१०६) से वद् धातु से क्यप् की प्राप्ति में यत् निपातन किया है । अनिरोध से भिन्न अर्थों में वृञ् धातु से एतिस्तुशास्वृ० (३।१।१०६) से क्यप् प्रत्यय होगा ॥

वह्यं करणम् ॥३।१।१०२॥

वह्यम् १।१। करणम् १।१॥ अनु०—यत्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—वह्यम् इत्यत्र वह धातो: करणे यत् प्रत्ययो निपात्यते ॥ उदा०—वहत्यनेनेति वह्यं शकटम् ॥

भाषार्थ:—[वह्यम्] वह्य शब्द में वह धातु से [करणम्] करण कारक में यत् प्रत्यय निपातन किया जाता है ॥ कृत्य प्रत्यय भाव तथा कर्म (३।४।७०) में ही होते हैं, सो यहाँ करण में भी निपातन कर दिया है ॥

अर्य: स्वामिवैश्ययो: ॥३।१।१०३॥

अर्य: १।१॥ स्वामिवैश्ययो: ७।२॥ स०—स्वामी च वैश्यश्च स्वामिवैश्यौ, तयो: स्वामिवैश्ययो:, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ॥ अनु०—यत्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—अर्य इत्यत्र स्वामिवैश्ययोरभिधेययो: 'ऋ गतौ' अस्मात् धातोर्यत् प्रत्ययो निपात्यते ॥ उदा०—अर्य: स्वामी । अर्यो वैश्य: ॥

भाषार्थ:—[स्वामिवैश्ययो:] स्वामी और वैश्य अभिधेय हों, तो [अर्य:] अर्य शब्द ऋ धातु से यत्प्रत्ययान्त निपातन है ॥ ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥

उपसर्या काल्या प्रजने ॥३।१।१०४॥

उपसर्या १।१॥ काल्या १।१॥ प्रजने ७।१॥ अनु०—यत्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—उपपूर्वात् 'सृ गतौ' इत्यस्माद् धातोर्यत्प्रत्ययान्त: स्त्रीलिङ्ग: 'उपसर्या' शब्दो निपात्यते, काल्या चेत् सा (=उपसर्या) प्रजने भवति ॥ काल: प्राप्तोऽस्या: सा काल्या, कालाद्यत् (५।१।१०६) इति यत् प्रत्यय: ॥ उपसर्या गौ: । उपसर्या वडवा ॥

भाषार्थ:—[उपसर्या] उपसर्या शब्द उपपूर्वक सृ धातु से यत्प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है, [प्रजने] प्रजन अर्थात् प्रथम गर्भग्रहण का [काल्या] समय जिसका हो गया है, इस अर्थ में ॥ पूर्ववत् ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद

है ॥ उदा०—उपसर्या गौः (प्रथम बार गर्भग्रहण का समय जिसका आ गया हो, ऐसी गौ) । उपसर्या वडवा ॥

अजर्यं सङ्गतम् ॥३।१।१०५॥

अजर्यम् १।१॥ सङ्गतम् १।१॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अजर्यमित्यत्र नञ्पूर्वात् 'जृष् वयोहानौ' इत्यस्माद् धातोः सङ्गतेऽभिधेये यत्प्रत्ययो निपात्यते कर्तरि वाच्ये ॥ उदा०—अजर्यमार्यसङ्गतम् । अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम् ॥

भाषार्थः—नञ्पूर्वक जृष् धातु से [अजर्यम्] अजर्य शब्द [सङ्गतम्] सङ्गत अभिधेय हो, तो कर्त्तृ वाच्य में यत्प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है ॥ उदा०—अजर्यमार्यसङ्गतम् (कभी पुरानी न होनेवाली आर्यसङ्गति) । अजर्यं नोऽस्तु सङ्गतम् (हमारी सङ्गति कभी पुरानी न हो) ॥ पूर्ववत् ण्यत् प्राप्त था, यत् निपातन कर दिया है । तथा कृत्यसंज्ञक होने से तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः (३।४।७०) से भाव-कर्म में ही यत् प्राप्त था, कर्त्ता में निपातन कर दिया है ॥

वदः सुपि क्यप् च ॥३।१।१०६॥

वदः ५।१॥ सुपि ७।१॥ क्यप् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ गदमदचर० (३।१।१००) इत्यतः 'अनुपसर्गे' अप्यनुवर्तते मण्डूकप्लुतगत्या ॥ **अर्थः**—वद धातोरुपसर्गरहिते सुबन्त उपपदे क्यप् प्रत्ययो भवति, चकाराद् यत् च ॥ उदा०—ब्रह्मणः वदनम्=ब्रह्मोद्यम्, ब्रह्मवद्यम् । सत्योद्यम्, सत्यवद्यम् ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [वदः] वद धातु से [सुपि] सुबन्त उपपद होने पर [क्यप्] क्यप् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से यत् भी होता है ॥ क्यप् होने पर वचिस्वपि० (६।१।१५) से संप्रसारण भी हो गया है । कुम्भकारः की सिद्धि के समान यहाँ भी उपपद संज्ञा होकर समासादि कार्य हो गये हैं ॥ उदा०—ब्रह्मोद्यम् (ब्रह्म का कथन), ब्रह्मवद्यम् । सत्योद्यम् (सत्य का कथन), सत्यवद्यम् ॥

यहाँ से 'सुपि' की अनुवृत्ति ३।१।१०८ तक जायेगी । तथा 'क्यप्' की अनुवृत्ति ३।१।१२१ तक जायेगी ॥

भुवो भावे ॥३।१।१०७॥

भुवः ५।१॥ भावे ७।१॥ अनु०—सुपि, क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च, अनुपसर्गे ॥ **अर्थः**—अनुपसर्गे सुप्युपपदे भूधातोर्भावे क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ब्रह्मभूयं गतः, देवभूयं गतः ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [भुवः] भू धातु से सुबन्त उपपद होने पर [भावे] भाव

में क्यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ब्रह्मभूयं गतः (ब्रह्मता को प्राप्त हुआ), देवभूयं गतः (देवत्व को प्राप्त हुआ) ॥

यहाँ से 'भावे' की अनुवृत्ति ३।१।१०८ तक जायेगी ॥

हनस्त च ॥३।१।१०८॥

हनः ६।१॥ त लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ च अ० ॥ अनु०—भावे, सुपि, क्यप्, अनुपसर्गे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गे सुबन्त उपपदे हन्धातोर्भावे क्यप् प्रत्ययो भवति, तकारश्चान्तादेशः ॥ उदा०—ब्रह्मणो हननं=ब्रह्महत्या, दस्युहत्या ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [हनः] हन् धातु से सुबन्त उपपद रहते भाव में क्यप् प्रत्यय होता है, [च] तथा [त] तकार अन्तादेश भी अलोऽन्त्यस्य (१।१।५१) से हो जाता है ॥ उदा०—ब्रह्महत्या (ईश्वर वा वेद की आज्ञा का उल्लङ्घन करना), दस्युहत्या (दस्यु का हनन) ॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप् ॥३।१।१०९॥

एतिस्तुशास्वृदृजुषः ५।१॥ क्यप् १।१॥ स०—एतिश्च स्तुश्च शास् च वृ च दृ च जुष् च एतिस्तुशास्वृदृजुष्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इण्, ष्टुञ्, शासु, वृञ्, दृङ्, जुषी इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः ॥

भाषार्थः—[एतिस्तुशास्वृदृजुषः] इण्, ष्टुञ्, शासु, वृञ्, दृङ्, जुषी इन धातुओं से [क्यप्] क्यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—इत्यः (प्राप्त होने योग्य) । स्तुत्यः (स्तुति के योग्य) । शिष्यः (शासन करने योग्य) । वृत्यः (स्वीकार करने योग्य) । आदृत्यः (आदर करने योग्य) । जुष्यः (सेवन करने योग्य) ॥ 'इत्यः' आदि में ह्रस्वस्य पिति० (६।१।६९) से तुक् आगम हो जायेगा, शेष पूर्ववत् है । 'शिष्यः' में शास इदङ्हलोः (६।४।३४) से उपधा को इत्व, एवं शासिवसिघ० (८।३।६०) से षत्व होता है ॥

ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः ॥३।१।११०॥

ऋदुपधात् ५।१॥ च अ० ॥ अक्लृपिचृतेः ५।१॥ स०—ऋकार उपधा यस्य स ऋदुपधः, तस्मात्, बहुव्रीहिः । क्लृपिश्च चृतिश्च क्लृपिचृती, न क्लृपिचृती अक्लृपिचृतिः, तस्मात्, द्वन्द्वगर्भो नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऋकारोपधाद्धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति, क्लृपिचृती वर्जयित्वा ॥ उदा०—वृतु—वृत्यम्, वृधु—वृध्यम् ॥

भाषार्थः—[ऋदुपधात्] ऋकार उपधावाली धातुओं से [च] भी क्यप् प्रत्यय होता है, [अक्लृपिचृतेः] क्लृपि और चृति धातुओं को छोड़कर। हलन्त धातु होने से पूर्ववत् ण्यत् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है। क्लृप्, चृत् धातुयें भी ऋदुपध हैं, सो इस सूत्र से अतिव्याप्ति होने पर उनका निषेध कर दिया है ॥ उदा०—वृत्यम् (बरतने योग्य), वृध्यम् (बढ़ने योग्य) ॥

ई च खनः ॥३।१।१११॥

ई लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥च अ० ॥ खनः ५।१॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—खन् धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति, ईकारश्चान्तादेशः ॥ उदा०—खेयम् ॥

भाषार्थः—[खनः] 'खनु अवदारणे' धातु से क्यप् प्रत्यय होता है, [च] तथा [ई] ईकारादेश भी अन्त्य अल् 'न्' को हो जाता है ॥ उदा०—खेयम् (खोदने योग्य)। ख ई क्यप्, आद्गुणः (६।१।८४) से पूर्व पर को गुण एकादेश होकर खेयम् बन गया है ॥

भृञोऽसंज्ञायाम् ॥३।१।११२॥

भृञः ५।१॥ असंज्ञायाम् ७।१॥ स०—असंज्ञायामित्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असंज्ञायां विषये भृञ् धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भृत्याः कर्मकराः ॥

भाषार्थः—[भृञः] भृञ् धातु से [असंज्ञायाम्] असंज्ञाविषय में क्यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—भृत्याः कर्मकराः (पालने योग्य सेवक) ॥ पूर्ववत् उदाहरण में तुक् आगम हो जायेगा ॥

मृजेर्विभाषा ॥३।१।११३॥

मृजेः ५।१॥ विभाषा १।१॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'मृजूष् शुद्धौ' इत्यस्माद् धातोः विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति, पक्षे ण्यद् भवति ॥ उदा०—परिमृज्यः, परिमार्ग्यः ॥

भाषार्थः—[मृजेः] मृज् धातु से [विभाषा] विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ ऋदुपध होने से नित्य ऋदुपधाच्चा० (३।१।११०) से क्यप् प्राप्त था, यहाँ विकल्प विधान कर दिया है ॥ उदा०—परिमृज्यः (शुद्ध करने योग्य), परिमार्ग्यः ॥ ऋदुपधाच्चा० सूत्र भी ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) का अपवाद है, अतः पक्ष में यहाँ ण्यत् होता है। जिस पक्ष में ण्यत् होगा, उस पक्ष में मृजेर्वृद्धिः (७।२।११४) से वृद्धि, तथा चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व भी हो जाता है ॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः ॥३।१।११४॥

राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथ्याः १।३॥ स०—राजसूय० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य इत्येते शब्दाः क्यप्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ 'राजसूयः'—राजन्शब्दपूर्वात् षुञ् धातोः कर्मणि अधिकरणे वा क्यप् प्रत्ययः तुगभावो दीर्घत्वञ्च निपात्यते । 'सूर्यः' इति षू प्रेरणे इत्यस्मात्, सृ गतौ इत्येतस्माद्वा कर्तरि क्यप् निपात्यते । 'सृ गतौ' इत्येतस्मात् क्यपि परत उत्वम्; एवं 'षू प्रेरणे' अस्मात् क्यपि परतो रुडागमो निपात्यते । मृषोद्यम् इति—मृषापूर्वस्य वदधातोः क्यप् निपात्यते । वदः सुपि० (३।१।१०६) इति यत्क्यपोः प्राप्तयोः नित्यं क्यप् निपात्यते । 'रुच्यः' इति—रुच् धातोः कर्त्तरि क्यप् निपात्यते, ण्यतोऽपवादः । 'कुप्यम्'—इत्यत्र गुप् धातोः क्यप् आदेः गकारस्य च कत्वं निपात्यते संज्ञायां विषये । ण्यतोऽपवादः । 'कृष्टपच्या' इति—कृष्टपूर्वात् पच्धातोः संज्ञायां विषये कर्मकर्तरि क्यप् निपात्यते । 'अव्यथ्यः'इतिः—नञ्पूर्वाद् व्यथ धातोः कर्तरि क्यप् निपात्यते ॥ उदा०—राज्ञा सोतव्यो = राजसूयो यज्ञः । सरति निरन्तरं लोकैः सह गच्छतीति सूर्यः; अथवा—कर्मणि स्रियते विज्ञायते विज्ञाप्यते वा विद्वद्भिः (यजुः ७।४१) सूर्यः; यद्वा—षू धातोः सुवति प्रेरयतीति सूर्यः । मृषोद्यं वाक्यम् । रोचतेऽसौ रुच्यः । कुप्यम् । कृष्टे पच्यन्ते कृष्टपच्याः । न व्यथते अव्यथ्यः ॥

भाषार्थः—[राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टापच्याव्यथ्याः] राजसूय, सूर्य, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यथ्य ये शब्द क्यप्प्रत्ययान्त निपातन हैं ॥ 'राजसूयः' (राजसूय नामक यज्ञ), यहाँ राजन् शब्द पूर्वक षुञ् धातु से कर्म या अधिकरण में क्यप् प्रत्यय, तुक् का अभाव, एवं दीर्घत्व का निपातन है । 'सूर्यः' षू प्रेरणे तथा सृ गतौ दोनों धातुओं से बन सकता है । सृ धातु से क्यप् परे रहते उकार निपातन से कर दिया है, तत्पश्चात् हलि च (८।२।७७) से दीर्घ हो जायेगा, अथवा षू धातु से करें तो रुट् आगम निपातन से करना होगा । 'मृषोद्यम्' मृषा उपपद रहते वद् धातु से ण्यत् की प्राप्ति में क्यप् निपातन करके 'मृषोद्यम्' (झूठा वचन) बना है । 'रुच्यम्' (सुन्दर) में भी रुच् धातु से क्यप् का निपातन है । 'कुप्यम्' (सोने चाँदी से भिन्न जो धातु) में संज्ञाविषय में गुप् धातु से क्यप् प्रत्यय, तथा आदि 'ग्' को 'क्' निपातन किया है । 'कृष्टपच्या' (हल चली हुई भूमि में स्वयं जो पक जाते हैं) में कृष्टपूर्वक पच् धातु से संज्ञाविषय में कर्मकर्त्ता में क्यप् निपातन है । 'अव्यथ्यः' (जो व्यथित नहीं होता) में नञ्पूर्वक व्यथ धातु से क्यप् निपातन है ॥ सब शब्दों के विग्रह संस्कृत उदाहरण के साथ हैं ॥

भिद्योद्ध्यौ नदे ॥३।१।११५॥

भिद्योद्ध्यौ १।२॥ नदे ७।१॥ स०—भिद्यश्च उद्ध्यश्च भिद्योद्ध्यौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भिद्य उद्ध्य इत्येतौ शब्दौ नदेऽभिधेये कर्त्तरि वाच्ये क्यप्प्रत्ययान्तौ निपात्येते ॥ उदा०—भिद्धातोः—कूलानि भिनत्तीति=भिद्योनदः । उज्झ उत्सर्गे, उन्दी क्लेदने इत्येतस्माद्वा—उज्झति, उत्सृजति जलानीत्युद्ध्यो नदः ॥

भाषार्थः—[भिद्योद्ध्यौ] भिद्य उद्ध्य शब्दों में [नदे] नद (=नदी) अभिधेय हो, तो कर्त्ता में क्यप् प्रत्यय भिद् तथा उन्दी धातु से निपातन किया जाता है ॥ उद्ध्यः में उन्दी धातु से नकार का लोप, तथा धकार निपातन से हो जाता है । अथवा 'उज्झ उत्सर्गे' धातु से क्यप् परे रहते, झकार को धत्व भी निपातन से होता है ॥ उदा०—भिद्यः (किनारों को तोड़नेवाली नदी) । उद्ध्यो नदः (तटों को गीला करनेवाला नद) ।

पुष्यसिद्ध्यौ नक्षत्रे ॥३।१।११६॥

पुष्यसिद्ध्यौ १।२॥ नक्षत्रे ७।१॥ स०—'पुष्यसिद्ध्यौ' इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नक्षत्रेऽभिधेये पुषेः सिधेश्च धातोः क्यप् निपात्यतेऽधिकरणे कारके ॥ उदा०—पुष्यन्त्यस्मिन् कार्याणि स पुष्यः । सिद्ध्यन्त्यस्मिन् कार्याणि स सिद्ध्यः ॥

भाषार्थः—[नक्षत्रे] नक्षत्र अभिधेय हो, तो अधिकरण कारक में पुष सिध धातुओं से क्यप्प्रत्ययान्त [पुष्यसिद्ध्यौ] पुष्य सिद्ध्य शब्द निपातन किये गये हैं ॥ उदा०—पुष्यः (नक्षत्रविशेष) । सिद्ध्यः (नक्षत्रविशेष) ॥

विपूयविनीयजित्या मुञ्जकल्कहलिषु ॥३।१।११७॥

विपूयविनीयजित्याः १।३॥ मुञ्जकल्कहलिषु ७।३॥ स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विपूय विनीय जित्य इत्येते शब्दा यथासङ्ख्यं मुञ्ज कल्क हलि इत्येतेष्वर्थेषु निपात्यन्ते ॥ विपूयेत्यत्र विपूर्वात् 'पूञ् पवने' इत्येतस्माद्धातोः, विनीयेत्यत्र विपूर्वान्नीधातोः, जित्येत्यत्र च 'जि जये' इत्यस्माद् धातोः कर्मणि क्यप् निपात्यते ॥ उदा०—विपूयो मुञ्जः । विनीयः कल्कः । जित्यो हलिः ॥

भाषार्थः—[विपूयविनीयजित्याः मुञ्जकल्कहलिषु] विपूर्वक पूञ् धातु से मुञ्ज अर्थ में 'विपूय'; विपूर्वक नी धातु से कल्क अर्थ में 'विनीय', तथा 'जि' धातु से हलि अर्थ में जित्य शब्द निपातन किये जाते हैं ॥ जित्यः' में तुक् आगम ह्रस्वस्य

ञिति० (६।१।६६) से होता है ॥ उदा०—विपूयो मुञ्जः (मूंज)। विनीयः कल्कः (औषधि की पीठी)। जित्यो हलिः (बड़ा हल)॥ जब मुञ्ज कल्क हलि ये अर्थ नहीं होंगे, तब इन धातुओं के अजन्त होने से अचो यत् (३।१।९८) से यत् प्रत्यय होता है ॥

प्रति अपि + ग्रह + क्यप्

प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥३।१।११८॥

प्रत्यपिभ्यां ५।२॥ ग्रहेः ५।१॥ स०—प्रतिश्च अपिश्च प्रत्यपी, ताभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रति अपि इत्येवं पूर्वाद् ग्रहेर्धातोः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मत्तस्य न प्रतिगृह्यम् (तै० ब्रा० १।३।२।७)। तस्मान्नापिगृह्यम् (का० सं० १४।५) ॥

भाषार्थः—[प्रत्यपिभ्याम्] प्रति अपि पूर्वक [ग्रहेः] ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ प्रत्यपिभ्यां ग्रहेश्छन्दसि (वा० ३।१।११८) इस भाष्यवार्तिक से छन्द में ही ये प्रयोग बनेंगे ॥

यहाँ से 'ग्रहेः' की अनुवृत्ति ३।१।११९ तक जायेगी ॥

क्यप्

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु च ॥३।१।११९॥

पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु ७।३॥ च अ० ॥ स०—पदञ्च अस्वैरी च बाह्या च पक्ष्यश्च पदास्वैरिबाह्यापक्ष्याः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ग्रहेः, क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पदम्, अस्वैरी=परतन्त्रः, बाह्या=बहिर्भूता, पक्षे भवः=पक्ष्यः इत्येतेष्वर्थेषु ग्रहधातोः क्यप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पद—प्रगृह्यं पदम्, अवगृह्यं पदम्। अस्वैरी—गृह्यका इमे। बाह्या—ग्रामगृह्या सेना, नगरगृह्या सेना। पक्ष्य—वासुदेवगृह्याः, अर्जुनगृह्याः ॥

भाषार्थः—[पदास्वैरिबाह्यापक्ष्येषु] पद, अस्वैरी, बाह्या, पक्ष्य इस अर्थों में [च] भी ग्रह धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पद-प्रगृह्यं पदम् (प्रगृह्य-संज्ञक पद), अवगृह्यं पदम् (अवग्रह के योग्य पद)। अस्वैरी—गृह्यका इमे (ये पराधीन हैं)। बाह्या—ग्रामगृह्या सेना (गाँव से बाहर की सेना), नगरगृह्या सेना। पक्ष्य—वासुदेवगृह्याः (वासुदेव के पक्षवाले), अर्जुनगृह्याः ॥

क्यप्, ण्यत्

विभाषा कृवृषोः ॥३।१।१२०॥

विभाषा १।१॥ कृवृषोः ६।२॥ स०—कृ च वृष् च कृवृषौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कृ वृष् इत्येताभ्यां

धातुभ्यां विकल्पेन क्यप् प्रत्ययो भवति, पक्षे ण्यदेव ॥ उदा०—कृत्यम्, कार्यम् । वृष्यम्, वर्ष्यम् ॥

भाषार्थः—[कृवृषोः] कृ तथा वृष् धातुओं से [विभाषा] विकल्प से क्यप् प्रत्यय होता है, पक्ष में ण्यत् होता है ॥ कृ धातु से ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत् प्राप्त था, क्यप् विकल्प से विधान कर दिया है । सो पक्ष में ण्यत् होगा । इसी प्रकार वृष् धातु से ऋदुपधाच्चा० (३।१।११०) से नित्य क्यप् प्राप्त था, यहाँ विकल्प कर दिया है ॥ उदा०—कृत्यम् (करने योग्य) में तुक् आगम, एवं कार्यम् में अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि होती है । वृष्यम् (सन्तानोत्पत्ति के योग्य) यहाँ क्यप्, तथा वर्ष्यम् में ण्यत् हुआ है ॥

युग्यं च पत्रे ॥३।१।१२१॥

युग्यम् १।१॥ च अ० ॥ पत्रे ७।१॥ अनु०—क्यप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ पतति गच्छति अनेनेति पत्रं वाहनमुच्यते ॥ अर्थः—युग्यमित्यत्र पत्रे वाच्ये युज्धातोः क्यप्, जकारस्य च कुत्वं निपात्यते ॥ उदा०—योक्तुमर्हः=युग्यो गौः, युग्योऽश्वः ॥

भाषार्थः—[पत्रे] पत्र अर्थात् वाहन को कहना हो, तो युज् धातु से [च] भी क्यप् प्रत्यय, तथा जकार को कुत्व [युग्यम्] युग्य शब्द में निपातन किया गया है ॥ उदा०—युग्यो गौः (जोतने योग्य बैल), युग्योऽश्वः (जोतने योग्य घोड़ा) ॥

अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥३।१।१२२॥

अमावस्यत् १।१॥ अन्यतरस्याम् अ० ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अमावस्यदित्यत्र अमापूर्वाद् वस् धातोः कालेऽधिकरणे वर्तमानाद् ण्यति परतो विभाषा वृद्ध्यभावो निपात्यते ॥ उदा०—सह वसतोऽस्मिन् काले सूर्यचन्द्रमसौ—अमावस्या, अमावास्या ॥

भाषार्थः—[अमावस्यत्] अमावस्या में अमापूर्वक वस् धातु से काल अधिकरण में वर्त्तमान होने पर ण्यत् प्रत्यय परे रहते [अन्यतरस्याम्] विकल्प से वृद्धि निपातन किया है ॥ ण्यत् परे रहते नित्य वृद्धि प्राप्त थी, विकल्प कर दिया है ॥ 'अमा' शब्द सह अर्थ में वर्तमान है । जिस काल में सूर्य-चन्द्रमा साथ-साथ रहते हैं, वह काल अमावास्या है । वृद्धि का अभाव निपातन करने से अमावस्या भी बन जाता है ॥

छन्दसि निष्टर्क्यदेवहूयप्रणीयोन्नीयोच्छिष्यमर्यस्तर्याध्वर्यखन्यखान्यदेवयज्यापृच्छ्यप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचाय्यपृडानि ॥३।१।१२३॥

छन्दसि ७।१॥ निष्टर्क्य····पृडानि १।३॥ स०—निष्टर्क्य० इत्यत्रेतरे-

तरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये निष्टर्क्यं, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ्य, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य, उपचाय्यपृड इत्येते शब्दा निपात्यन्ते ॥ तत्र 'निष्टर्क्य' इत्यत्र निस्पूर्वात् 'कृती छेदने' अस्माद्धातोः ऋदुपधत्वात् (३।१।११०) क्यपि प्राप्ते ण्यद् निपात्यते; कृतेः आद्यन्तविपर्ययो निसः षत्वञ्चापि निपात्यते। निष्टर्क्यं चिन्वीत पशुकामः। प्रदक्षिणं पर्यास्योर्ध्वग्रन्थि निष्टर्क्यं बध्नाति (ऐ० ब्रा० ५।१।३); गर्भाणां धृत्यै निष्टर्क्यं बध्नाति प्रजानाम् (तै० सं० ६।१।७।२); गर्भाणां धृत्या अप्रपादाय निष्टर्क्यं बध्नाति (का० २४।५)। 'देवहूय' इत्यत्र देवशब्द उपपदे हु दानादनयोरित्येतस्माद्धातोः क्यप् प्रत्ययो दीर्घत्वं तुगभावश्च निपात्यते। यद्वा—ह्वेञ् धातोः क्यप् निपात्यते। यजादित्वात् (६।१।१५) सम्प्रसारणं, हलः (६।४।२) इति दीर्घः। स्पर्धन्ते वा उ देवहूये (ऋ० ७।८५।२)। प्रपूर्वान्नयतेः क्यप् =प्रणीयः। उत्पूर्वाच्च नयतेः क्यप् =उन्नीयः। त्रिभ्यो धातुभ्योऽजन्तत्वाद्य ति प्राप्ते क्यप् निपात्यते। उत् पूर्वात् 'शिष्लृ विशेषणे' इत्येतस्माद् धातोर्ण्यति प्राप्ते क्यप् निपात्यते। उच्छिष्यः (आ० श्रौ० ११।७।३)। मर्या, स्तर्या, ध्वर्या, खन्य इति चत्वारो यदन्ताः शब्दाः। 'मृङ् प्राणत्यागे', 'स्तृञ् आच्छादने', 'ध्वृ हूर्च्छने', 'खनु अवदारणे' इत्येतेभ्यो धातुभ्यो यथाक्रमं ण्यति प्राप्ते यत् निपात्यते। स्तर्या स्त्रियामेव। खनु धातोर्ण्यदपि भवति—खान्यः। 'देवयज्या' इति देवपूर्वाद् यज्धातोर्ण्यति प्राप्ते यप्रत्ययो निपात्यते । स्त्रीलिङ्गे निपातनमेतत्। 'आपृच्छ्यः, प्रतिषीव्यः' एतौ क्यबन्तौ। आङ्पूर्वात् 'प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्', प्रतिपूर्वात् 'षिवु तन्तुसन्ताने' इत्येताभ्यां यथाक्रमं क्यप् भवति। ब्रह्मणि उपपदे वदतेर्ण्यत् =ब्रह्मवाद्यः। भवतेः स्तौतेश्च ण्यत् निपात्यते, आवादेशश्च भवति धातोस्तन्नि० (६।१।७७) इत्यनेन—भाव्यः, स्ताव्यः। उपपूर्वात् चिञ्धातोर्ण्यत् निपात्यते। पृड उत्तरपदे वृद्धौ कृतायाम् आयादेशश्च निपातनाद् भवति—उपचाय्यपृडम् ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में [निष्टर्क्य······पृडानि] निष्टर्क्यादि शब्दों का निपातन किया जाता है ॥ किस शब्द में क्या निपातन है, यह आगे दिखाते हैं। 'निष्टर्क्य' में निस् पूर्वक 'कृती छेदने' धातु से ण्यत् प्रत्यय निपातन से करके, लघूपधगुण होकर 'निस् कर्त य' बना। कर्त को आद्यन्तविपर्यय तथा, निस् के स को ष निपातन से होकर 'निष तर्क्य' बना, पुनः ष्टुत्व होकर 'निष्टर्क्य' बना है। 'देवहूय' में देव शब्द उपपद रहते हु धातु से क्यप् निपातन करते हैं। तथा तुक् आगम का अभाव और धातु को दीर्घ भी निपातन से होता है। अथवा—ह्वेञ् धातु से क्यप् निपातन से करके यजादि (६।१।१५से) संप्रसारण कर लेने के पश्चात् हलः (६।४।२) से दीर्घ होगा। 'प्रणीयः', 'उन्नीयः' में प्रपूर्वक तथा उत्पूर्वक नी धातु से क्यप् निपातन

है। यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (८।४।४४) से 'द्' को 'न्' हो ही जायेगा। 'उच्छिष्यः' में उत्पूर्वक शिष् धातु से क्यप् निपातन है। यहाँ शश्छोऽटि (८।४।६२) से 'श' को 'छ', एवं स्तोः श्चुना० (८।४।३९) से श्चुत्व होकर 'उच्छिष्यः' बनता है। मृङ्,स्तृञ्, ध्वृ, खनु इन चारों धातुओं से ण्यत् की प्राप्ति में यत्प्रत्यय निपातन से करके यथाक्रम चार शब्द मर्या, स्तर्या, ध्वर्या, खन्य बनते हैं। स्तर्या में यत्प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में ही निपातन है। खनु से ण्यत् प्रत्यय करके 'खान्य' भी बनेगा। 'देवयज्या' में देव उपपद रहते यज् धातु से 'य' प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। आङ्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप् निपातन करके 'आपृच्छ्यः' बनता है। यहाँ 'ग्रहिज्याव० (६।१।१६) से सम्प्रसारण होता है। प्रति पूर्वक षिवु धातु से भी क्यप् तथा षत्व निपातन से करके 'प्रतिषीव्यः' बनता है। यहाँ धात्वादे षः सः (६।१।६२) से षिवु के 'ष' को 'स', तथा हलि च (८।२।७७) से प्रतिषीव्यः में दीर्घ भी होता है। ब्रह्म उपपद रहते वद धातु से ण्यत् करके'ब्रह्मवाद्यः' बनता है। यहां वदः सुपि क्यप् च (३।१।१०६) से क्यप् प्राप्त था। भू तथा स्तु धातु से ण्यत् प्रत्यय निपातन से करके,अचो ञ्णिति (७।२।११५)से वृद्धि होकर–'भौ य,स्तौ य'बना। पुनः धातोस्तन्नि० (६।१।७७) से आवादेश करके भाव्यः, स्ताव्यः बना है। उप पूर्वक चिञ् धातु से पृड उत्तरपद होने पर ण्यत् प्रत्यय निपातन से किया है। पूर्ववत् वृद्धि होकर आयादेश निपातन से करके 'उपचाय्यपृडं हिरण्यम्' बनता है॥

ऋहलोर्ण्यत् ॥३।१।१२५॥

ऋहलोः ६।२॥ ण्यत् १।१॥ स०—ऋ च हल् च ऋहलौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ऋवर्णान्ताद्धलन्ताच्च धातोर्ण्यत् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—कृ—कार्यम्, हृ—हार्यम्, धृ—धार्यम्, स्मृ—स्मार्यम्। हलन्तात्—पठ्–पाठ्यम्, पच्–पाक्यम्, वच्—वाक्यम्॥

भाषार्थः—[ऋहलोः] ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से [ण्यत्] ण्यत् प्रत्यय होता है॥ उदा०–कार्यम्,(करने योग्य),हार्यम्(हरण करने योग्य),धार्यम्(धारण करने योग्य), स्मार्यम् (स्मरण करने योग्य)। हलन्तों से—पाठ्यम् (पढ़ने योग्य), पाक्यम् (पकने योग्य), वाक्यम् (कहने योग्य)॥ ऋकारान्त धातुओं को अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि होती है, तथा हलन्त धातुओं को अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होती है। पच् तथा वच् धातुओं को चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व हो जायेगा॥

विशेषः—ऋहलोः में पञ्चम्यर्थ में षष्ठी है॥

यहाँ से 'ण्यत्' की अनुवृत्ति ३।१।१३१ तक जायेगी॥

ओरावश्यके ॥३।१।१२५॥

ओ: ५।१।। आवश्यके ७।१।। अनु०—ण्यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—उवर्णान्ताद्धातोरावश्यके द्योत्ये ण्यत् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—लाव्यम्, पाव्यम् ॥

भाषार्थः—[ओः] उवर्णान्त धातुओं से [आवश्यके] आवश्यक द्योतित होने पर ण्यत् प्रत्यय होता है ॥

ण्यत्

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमश्च ॥३।१।१२६॥

आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः ५।१।। च अ० ।। स०—आसुश्च युश्च वपिश्च रपिश्च लपिश्च त्रपिश्च चम् च आसुयुवपिरपिलपित्रपिचम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अर्थः—आङ्पूर्वात् सुनोतेः, यु, वपि, रपि, लपि, त्रपि, चम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्च ण्यत् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । त्राप्यम् । आचाम्यम् ॥

भाषार्थः—[आसुयुवपिरपिलपित्रपिचमः] आङ्पूर्वक षुञ्, यु, वप्, रप्, लप्, त्रप् और चम् इन धातुओं से [च] भी ण्यत् प्रत्यय होता है।। उदा०—आसाव्यम् (उत्पन्न करने योग्य)। याव्यम्(मिलाने योग्य)। वाप्यम् (बीज बोने योग्य)। राप्यम् (बोलने योग्य) । लाप्यम् (बोलने योग्य) । त्राप्यम् (लज्जा करने योग्य) । आचाम्यम् (आचमन करने योग्य) ॥ आसाव्यम्, याव्यम् में अचो ञ्णिति (७।२। ११५) से वृद्धि होकर, धातोस्तन्नि० (६।१।७७) से वान्तादेश होता है। अन्यत्र अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होगी ।।

ण्यत्

आनाय्योऽनित्ये ॥३।१।१२७॥

आनाय्यः १।१।। अनित्ये ७।१।। स०—न नित्योऽनित्यः,तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—ण्यत्, धातोः प्रत्ययः, परश्च । अर्थः—आनाय्य इति निपात्यतेऽनित्येऽभिधेये । आङ्पूर्वान्नयतेः 'ण्यत्' आयादेशश्च भवति निपातनात् ।। उदा०—आनाय्यो दक्षिणाग्निः[1] ।।

---

१. यज्ञ की अग्नियाँ तीन होती हैं—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि । ये तीनों अग्नियाँ सतत प्रज्वलित रहती हैं । परन्तु प्रतिदिन यज्ञ के आरम्भ में आहवनीय अग्नि के संस्कारार्थ गार्हपत्य अग्नि से दो चार अङ्गार लाकर आहवनीय में रखे जाते हैं । दक्षिणाग्नि के संस्कारार्थ गार्हपत्य वैश्यकुल या भ्राष्ट्र (भाड़ या चूल्हा) से अग्नि लाकर दक्षिणाग्नि में रखी जाती है । दक्षिणाग्नि में संस्कारार्थ लाई हुई

भाषार्थः—[आनाय्यः] आनाय्यः शब्द आङ्पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत् प्रत्ययान्त [अनित्ये] अनित्य अर्थ को कहना हो तो निपातन किया जाता है ॥ वृद्धि करने पर आयादेश भी निपातन से हो जाता है ॥

प्रणाय्योऽसंमतौ ॥३।१।१२८॥ ण्यत्

प्रणाय्यः १।१॥ असंमतौ ७।१॥ संमननं संमतिः ॥ स०- -अविद्यमाना संमतिरस्मिन् सोऽसंमतिः,तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ—संमतिः=पूजा । असंमतावभिधेये प्रपूर्वान्नियतेः ण्यत् प्रत्ययः, आयादेशश्च निपात्यते ॥ उदा०—प्रणाय्यश्चौरः ॥

भाषार्थः—प्र पूर्वक णीञ धातु से [असंमतौ] अपूजित अभिधेय हो, तो ण्यत प्रत्यय तथा वृद्धि कर लेने पर आयादेश [प्रणाय्यः] प्रणाय्य शब्द में निपातन किया जाता है ॥ चोर निन्दित है, अतः उसको प्रणाय्य कहा गया है । उपसर्गादसमा० (८।४।१४) से प्रणाय्य में णत्व हो जाता है ॥

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु ॥३।१।१२९॥ ण्यत्

पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्याः १।३॥ मानहविर्निवाससामिधेनीषु ७।३॥ स०—पाय्यञ्च सान्नाय्यञ्च निकाय्यश्च धाय्या च इति पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्याः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । मानञ्च हविश्च निवासश्च सामिधेनी च मानहविर्निवाससामिधेन्यः, तासु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ण्यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्या इत्येते शब्दाः यथाक्रमं मान, हविः, निवास, सामिधेनी इत्येतेष्वभिधेयेषु निपात्यन्ते ॥ 'पाय्यम्' इति माङ् धातोः ण्यत्' प्रत्ययः, आदेर्मकारस्य पत्वञ्च मानेऽभिधेये निपात्यते । **'सान्नाय्यम'** इति संपूर्वान्नियतेः ण्यत् प्रत्ययः, वृद्धौ कृतायाम् आयादेशः, उपसर्गस्य दीर्घत्वञ्च निपात्यते हविरभिधेये । **'निकाय्यः'** इति निपूर्वाच्चिञ धातोः ण्यत् प्रत्ययः, वृद्धौ कृतायामायादेशः, आदेश्च कारस्य कुत्वञ्च निपात्यते निवासेऽभिधेये । **'धाय्या'** इति डुधाञ् धातोर्ण्यत् प्रत्ययो निपात्यते सामिधेन्यामभिधेये ॥

भाषार्थः—[पाय्यसान्नाय्यनिकाय्यधाय्याः] पाय्य, सान्नाय्य, निकाय्य, धाय्या

अग्नि का स्थान नियत न होने से वह अनियत=अनित्य कही जाती है । यह 'आनाय्य' निपातन वहीं होता है, जहाँ दक्षिणाग्नि में गार्हपत्य से अग्नि लाई जाती है । जहाँ अन्य स्थान (वैश्य कुल या भ्राष्ट्र) से अग्नि लाई जाती है, वहाँ 'आनेय' का प्रयोग होता है ॥

शब्द यथासङ्ख्य करके [मानहविर्निवाससामीधेनीषु] मान, हवि, निवास, तथा सामिधेनी अभिधेय में निपातन किये जाते हैं ।। 'पाय्य' में माङ् माने धातु से ण्यत्, तथा आदि मकार को पकार निपातन से किया है, मान कहना हो तो । 'सान्नाय्य' में सम् पूर्वक णीञ् धातु से ण्यत्, उपसर्ग को दीर्घ, तथा वृद्धि करने के पश्चात् आयादेश निपातन से किया है, हवि को कहने में । 'निकाय्य' में चिञ् धातु से ण्यत्, तथा आदि 'च्' को 'क्', एवं आयादेश निवास अभिधेय होने पर निपातन से किया है । 'धाय्या' में डुधाञ् धातु से ण्यत् निपातन किया है, सामिधेनी को कहने में ।। पाय्य एवं धाय्या में आतो युक्० (७।३।३३) से युक् आगम हो ही जायेगा ।। सब उदाहरणों में अजन्त धातुओं के होने से यत् प्रत्यय की प्राप्ति थी, ण्यत् निपातन कर दिया है, मान आदि अर्थों में । सो इन अर्थों से अतिरिक्त स्थल में यत् ही होगा ।। उदा०—पाय्यं मानम् (तोलने के बाट), मेयम् अन्य अर्थों में बनेगा । सान्नाय्यं हविः (हवि का नाम), 'सन्नेयम्' अन्यत्र बनेगा । निकाय्यो निवासः (निकाय्य निवास को कहते हैं), निचेयम् अन्यत्र बनेगा । धाय्या सामिधेनी (ऋचा का नाम), धेयम् अन्यत्र बनेगा ।।

क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ।।३।१।१३०।। ण्यत्

क्रतौ ७।१।। कुण्डपाय्यसंचाय्यौ १।२।। स०—कुण्डपाय्यश्च सञ्चाय्यश्च कुण्डपाय्यसञ्चाय्यौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—ण्यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कुण्डपाय्य संचाय्य इत्येतौ शब्दौ क्रतावभिधेये निपात्येते ।। 'कुण्डपाय्य, इत्यत्र कुण्डशब्दे तृतीयान्त उपपदे पिबतेर्धातोरधिकरणे यत्प्रत्ययो निपात्यते, युक् चागमः । 'संचाय्य' इत्यत्र सम्पूर्वात् चिञ्धातोः 'ण्यत' प्रत्ययः, आयादेशश्च निपात्यते अधिकरणे कारके ।। उदा०—कुण्डेन पीयतेऽस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुः । संचीयतेऽस्मिन् सोम इति संचाय्यः क्रतुः ।।

भाषार्थः—क्रतु यज्ञविशेषों की संज्ञा है । [क्रतौ] क्रतु अभिधेय हो, तो [कुण्डपाय्यसंचाय्यौ] कुण्डपाय्य तथा संचाय्य शब्द निपातन किये जाते हैं ।। कुण्ड शब्द तृतीयान्त उपपद रहते 'पा पाने' धातु से अधिकरण में यत प्रत्यय, तथा युक् का आगम निपातन करके 'कुण्डपाय्य' शब्द बनाते हैं । सम् पूर्वक चिञ धातु से ण्यत् प्रत्यय तथा वृद्धि कर लेने पर आयादेश निपातन करके 'संचाय्य' बनता है ।।

उदा०—कुण्डपाय्यः क्रतुः (कुण्ड के द्वारा सोम पिया जाता है जिस यज्ञ में) । संचाय्यः क्रतुः, (जिसमें सोम का सङ्ग्रह किया जाता है ऐसा यज्ञ) ।।

अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः।।३।१।१३१।। ण्यत्

अग्नौ ७।१।। परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः १।३।। स०—परिचाय्या० इत्यत्रेतरेतर-

योगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ण्यत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परिचाय्या, उपचाय्या, समूह्य इत्येते शब्दा निपात्यन्ते अग्नावभिधेये ॥ परिचाय्या उपचाय्य इत्यत्र पूरिपूर्वाद् उपपूर्वाच्च चिञ् धातोः ण्यत् प्रत्यय आयादेशश्च निपात्यते—परिचाय्यः, उपचाय्यः । समूह्य इत्यत्र समपूर्वात् वहधातोर्ण्यति सम्प्रसारणं दीर्घत्वञ्च निपात्यते—समूह्यं चिन्वीत पशुकामः ॥

भाषार्थः—[परिचा······ह्याः] परिचाय्य उपचाय्य समूह्य ये शब्द [अग्नौ] अग्नि अभिधेय हो, तो निपातन किये जाते हैं ॥ परिपूर्वक उपपूर्वक चिञ् धातु से ण्यत् प्रत्यय, तथा आयादेश निपातन से करके परिचाय्य उपचाय्य शब्द बनते हैं ॥ सम् पूर्वक वह धातु से ण्यत् प्रत्यय, एवं सम्प्रसारण निपातन के करके 'सम्, ऊह्, य=समूह्य बन गया है ॥ उदा०—परिचीयतेऽस्मिन् परिचाय्यः (यज्ञ की अग्नि जहाँ स्थापित की जाती है) । उपचीयते असौ उपचाय्यः (यज्ञ में संस्कार की गई आग) । समूह्यं चिन्वीत पशुकामः (पशु की कामनाकरने वाला समूह्य=यज्ञ की अग्नि का चयन करे) ॥

यहाँ से 'अग्नौ' की अनुवृत्ति ३।१।१३२ तक जायेगी ॥

चित्याग्निचित्ये च ॥३।१।१३२॥

चित्याग्निचित्ये १।२॥ च अ० ॥ स०—चित्यश्च अग्निचित्या च चित्याग्निचित्ये, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अग्नौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चित्यशब्द अग्निचित्याशब्दश्च निपात्येते अग्नावभिधेये ॥ 'चित्यः' इति चिञ् धातोः कर्मणि क्यप् प्रत्ययो निपात्यते । 'अग्निचित्या' इति अग्निपूर्वात् चिञ्धातोः भावे यकारप्रत्ययः गुणाभावः तुगागमश्च निपात्यते ॥ उदा०—चीयतेऽसौ चित्यः । अग्निचयनमेव अग्निचित्या ॥

भाषार्थः—[चित्याग्निचित्ये] चित्य तथा अग्निचित्या शब्द [च] भी निपातन किये जाते हैं, अग्नि अभिधेय हो तो ॥ चित्य में चिञ् धातु से कर्म में क्यप् प्रत्यय निपातन है । तुक् आगम ह्रस्वस्य पिति० (६।१।६९) से हो ही जायेगा । अग्निचित्या शब्द में अग्नि शब्द उपपद रहते चिञ् धातु से भाव में यकार प्रत्यय, तुक् आगम, एवं गुणाभाव निपातन है । य प्रत्यय निपातन करने से आद्युदात्तश्च (३।१।३) से यह शब्द अन्तोदात्त है ॥ यहाँ गतिकारको० (६।२।१३९) से उत्तरपद का प्रकृति-स्वर हुआ है ॥

ण्वुल्तृचौ ॥३।१।१३३॥

ण्वुल्तृचौ १।२॥ स०—ण्वुल् च तृच्च ण्वुल्तृचौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—

धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः-धातोः ण्वुल्तृचौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा० - कारकः, हारकः, पाठकः । कर्ता, हर्ता, पठिता ॥

भाषार्थः—धातुमात्र से [ण्वुल्तृचौ] ण्वुल् तथा तृच् प्रत्यय होते हैं ॥ सिद्धियाँ परिशिष्ट १।१।१, २ में देखें ॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥३।१।१३४॥

नन्दिग्रहिपचादिभ्यः ५।३॥ ल्युणिन्यचः १।३॥ स०—नन्दिश्च ग्रहिश्च पच् च नन्दिग्रहिपचः, नन्दिग्रहिपचः आदयो येषां ते नन्दिग्रहिपचादयः, तेभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । ल्युश्च णिनिश्च अच्च ल्युणिन्यचः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नन्द्यादिभ्यो ग्रहादिभ्यः पचादिभ्यश्च धातुभ्यो यथासङ्ख्यं ल्यु णिनि अच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—नन्द्यादि—नन्दयतीति नन्दनः । वाशयतीति वाशनः । ग्रहादि—गृह्णातीति ग्राही, उत्साही, उद्वासी । पचादि—पचतीति पचः, वपतीति वपः, वदः ॥

भाषार्थः—[नन्दिग्रहिपचादिभ्यः] नन्द्यादि ग्रहादि तथा पचादि धातुओं से यथासङ्ख्य करके [ल्युणिन्यचः] ल्यु णिनि तथा अच् प्रत्यय होते हैं ॥ इस प्रकार तीनों गणों से तीन प्रत्यय यथासङ्ख्य करके, अर्थात् नन्द्यादियों से ल्यु, ग्रहादियों से णिनि, तथा पचादियों से अच् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—नन्द्यादियों से —नन्दनः (प्रसन्न करनेवाला), वाशनः (शब्द करनेवाला पक्षी) । ग्रहादियों से – ग्राही (ग्रहण करनेवाला), उत्साही (उत्साह करनेवाला), उद्वासी (निकलनेवाला) । पचादियों से—पचः (पकानेवाला), वपः (बोनेवाला), वदः (बोलनेवाला) ॥ नन्दनः वाशनः में नन्दिवाशिमदि० (वा० ३।१।१३४) इस वार्त्तिक के कारण हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् लाकर ही ल्यु प्रत्यय होता है, पुनः उस णिच् का णेरनिटि (६।४।५१) से लोप हो जाता है । ग्रह से णिनि प्रत्यय करके ग्राहिन् बना । स्वाद्युत्पत्ति होकर ग्राहिन् सु बना । अब सौ च (६।४।१३) से दीर्घ, तथा हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सुलोप, एवं नलोपः प्रा० (८।२।७) से न् का लोप होकर 'ग्राही' बन गया है । अजपि सर्वधातुभ्यः (भा० वा० ३।१।१३४) इस महाभाष्य के वार्त्तिक से पचादि आकृतिगण माना जाता है ॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ॥३।१।१३५॥

इगुपधज्ञाप्रीकिरः ५।१॥ कः १।१॥ स०—इक् उपधा यस्य स इगुपधः, बहुव्रीहिः ।

इगुपधश्च ज्ञा च प्रीञ् च कॄ च इगुपधज्ञाप्रीकिर्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः,प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इगुपधेभ्यो, ज्ञा, प्रीञ्, कॄ(तुदादि)इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विक्षिपतीति विक्षिपः, विलिखः, बुधः । जानातीति ज्ञः । प्रियः । किरः ॥

भाषार्थः—[इगुपधज्ञाप्रीकिरः] इक् प्रत्याहार उपधावाली धातुओं से, तथा ज्ञा, प्रीञ्, कॄ इन धातुओं से [कः] क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विक्षिपः (विघ्न डालनेवाला), विलिखः (कुरेदनेवाला), बुधः (विद्वान्) । ज्ञः (जाननेवाला)। प्रियः (प्रेम करनेवाला) । किरः (सुअर) ॥ आतो लोप० (६।४।६४) से ज्ञा के आ का लोप होकर ज्ञः बना है । प्रियः में अचि श्नु० (६।४।७७) से इयङ् होता है । किरः में ऋत इद्० (७।१।१००) से इकार हुआ है ॥

यहाँ से 'कः' की अनुवृत्ति ३।१।१३६ तक जायेगी ॥

उपसर्ग + आत् + क

आतश्चोपसर्गे ॥३।१।१३६॥

आतः ५।१॥ च अ० ॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—कः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आकारान्तेभ्यो धातुभ्य उपसर्ग उपपदे कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रतिष्ठत इति प्रस्थः, सुष्ठु ग्लायतीति सुग्लः, सुम्लः ॥

भाषार्थः—[आतः] आकारान्त धातुओं से [च] भी [उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—प्रस्थः (प्रस्थान करनेवाला), सुग्लः (बहुत ग्लानि करनेवाला), सुम्लः (उदास होनेवाला) ॥ सिद्धि में ग्लै म्लै धातुओं को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व हो गया है । आतो लोप इटि च (६।४।६४) से स्था ग्ला म्ला धातुओं के आकार का लोप कित प्रत्यय परे रहते हो ही जायेगा ॥

श

पाघ्राध्माधेट्दृशः शः ॥३।१।१३७॥

पाघ्राध्माधेट्दृशः ५।१॥ शः १।१॥ स०—पाश्च घ्राश्च ध्माश्च धेट् च दृश् च पाघ्रा दृश्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पा, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृश् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः शः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उत्पिबः, विपिबः । उज्जिघ्रः, विजिघ्रः । उद्धमः, विधमः । उद्धयः, विधयः । उत्पश्यः, विपश्यः । अनुपसर्गेभ्योऽपि—जिघ्रः । धयः । पश्यः ॥

भाषार्थः—[पाघ्राध्माधेट्दृशः] पा पाने, घ्रा, ध्मा, धेट्, दृशिर् इन धातुओं से (उपसर्ग उपपद हो या न हो तो भी) [शः] श प्रत्यय होता है ॥ सोपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा, धेट् से पूर्वसूत्र से क प्रत्यय प्राप्त था । तथा अनुपसर्ग पा, घ्रा, ध्मा, धेट् से

श्याद्व्यधास्रु० (३।१।१४१) से आकारान्त मानकर ण प्रत्यय प्राप्त था। एवं दृश् धातु से इगुपध होने से इगुपधज्ञा० (३।१।१३५) से क प्रत्यय प्राप्त था, उनका यह अपवाद है ॥

यहाँ से 'शः' की अनुवृत्ति ३।१।१३९ तक जायेगी ॥

अनुपसर्गाल्लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यश्च ॥३।१।१३८॥

अनुपसर्गात् ५।१॥ लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—अनुपसर्गाद् इत्यत्र बहुव्रीहिः। लिम्पविन्द० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—शः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहितेभ्यो लिम्प, विन्द, धारि, पारि, वेदि, उदेजि, चेति, साति, साहि इत्येतेभ्यो धातुभ्यः शः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—लिम्पतीति लिम्पः। विन्दतीति विन्दः। धारयः। पारयः। वेदयः। उदेजयः। चेतयः। सातयः। साहयः॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गात्] उपसर्गरहित [लिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसातिसाहिभ्यः] लिप उपदेहे, विद्लृ लाभे, तथा णिच्प्रत्ययान्त धृञ् धारणे, पृ पालनपूरणयोः, विद चेतनाख्याननिवासेषु (चुरा०), उद्पूर्वक एजृ कम्पने, चिती संज्ञाने, साति (सौत्रधातु), षह मर्षणे इन धातुओं से [च] भी श प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'अनुपसर्गात्' की अनुवृत्ति ३।१।१४० तक जायेगी ॥

ददातिदधात्योर्विभाषा ॥३।१।१३९॥

ददातिदधात्योः ५।२॥ विभाषा १।१॥ स०—ददातिश्च दधातिश्च ददातिदधाती, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनुपसर्गात्, शः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गाभ्यां डुदाञ् डुधाञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां शः प्रत्ययो विकल्पेन भवति ॥ णस्यापवादः। तेन पक्षे सोऽपि भवति ॥ उदा०—ददः, दायः। दधः, धायः ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [ददातिदधात्योः] डुदाञ् और डुधाञ् धातुओं से [विभाषा] विकल्प से श प्रत्यय होता है ॥ आकारान्त होने से श्याद्व्यधास्रु० (३।१।१४१) से 'ण' नित्य प्राप्त था, सो पक्ष में वह भी हो जायेगा ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।१।१४० तक जायेगी ॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥३।१।१४०॥

ज्वलितिकसन्तेभ्यः ५।३॥ णः १।१॥ स०—ज्वल् इति=आदिर्येषां ते ज्वलितयः, बहुव्रीहिः। कस अन्ते येषां ते कसन्ताः, बहुव्रीहिः। ज्वलितयश्च ते कसन्ताश्चेति

ज्वलितिकसन्ताः, तेभ्यः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः ।। **अनु०**—विभाषा, अनुपसर्गात्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—इतिशब्दोऽत्राद्यर्थवाची ।। ज्वल् इति='ज्वल दीप्तौ' इत्यारभ्य कस् अन्तः='कस गतौ' इत्यन्तेभ्योऽनुपसर्गेभ्यो धातुभ्यो विकल्पेन णः प्रत्ययो भवति, पक्षे सामान्यविहितोऽच् ।। **उदा०**—ज्वलतीति ज्वालः, ज्वलः । चालः, चलः ।।

भाषार्थः—[ज्वलितिकसन्तेभ्यः] 'ज्वल दीप्तौ' धातु से लेकर 'कस गतौ' पर्यन्त जितनी धातुएँ हैं, उनसे [णः] ण प्रत्यय होता है ।। यहाँ 'ज्वल् इति' में इति शब्द आदि अर्थ का वाचक है । सो 'ज्वलिति' से अर्थ हुआ— ज्वल जिनके आदि में है'; तथा कसन्त का अर्थ हुआ—'कस गतौ पर्यन्त' । इस प्रकार ज्वल से लेकर कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प से ण प्रत्यय होगा । पक्ष में अच् प्रत्यय अजपि सर्वधातुभ्यः (वा० ३।१।१३४) इस वार्त्तिक से हो गया है ।। उदा०—ज्वालः (जलनेवाला), ज्वलः । चालः (चलनेवाला), चलः ।।

यहाँ से 'णः' की अनुवृत्ति ३।१।१४३ तक जायेगी ।। ण

श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसश्च ।।३।१।१४१।।

श्याद्व्यधास्रुसंस्र्वतीणवसावहृलिहश्लिषश्वसः ५।१।। च अ० ।। **स०**—श्याश्च आच्च व्यधश्च आस्रुश्च संस्रुश्च अतीण् च अवसाश्च अवहृ च लिहश्च श्लिषश्च श्वस् च श्याद्व्य···श्वस्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। **अनु०**—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—श्यैङ गतौ इत्यस्माद्, आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः, व्यध ताडने, आङ् संपूर्वक स्रु गतौ, अतिपूर्वक इण्, अवपूर्वक षोऽन्तकर्मणि, अवपूर्वक हृञ्, लिह आस्वादने, श्लिष आलिङ्गने, श्वस प्राणने इत्येतेभ्यश्च धातुभ्यो णः प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—अवश्यायः । प्रतिश्यायः । आकारान्तेभ्यः—दायः, धायः । व्याधः । आस्रावः । संस्रावः । अत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ।।

भाषार्थः—[श्याद्व्य······श्वसः] श्यैङ्, आत्=आकारान्त, व्यध्, आङ् और संपूर्वक स्रु, अतिपूर्वक इण्, अवपूर्वक षो, अवपूर्वक हृ, लिह्, श्लिष्, श्वस् इन धातुओं से [च] भी ण प्रत्यय होता है ।।

दुन्योरनुपसर्गे ।।३।१।१४२।।

दुन्योः ६।२।। अनुपसर्गे ७।१।। **स०**—दुश्च, नीश्च दुन्यौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। न उपसर्गो यस्य सः अनुपसर्गः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ।। **अनु०**—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—टुदु उपतापे, णीञ् प्रापणे इत्येताभ्यामुपसर्गरहिताभ्यां धातुभ्यां णः प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—दुनोतीति दावः । नयतीति नायः ।।

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्गरहित [दुन्योः] 'टुदु उपतापे' तथा 'णीञ्

प्रापणे' धातुओं से ण प्रत्यय होता है ॥ अचो ञ्णिति से वृद्धि, आयादेशादि पूर्ववत् होकर दावः (वन) तथा नायः (नेता) की सिद्धि जानें ॥

विभाषा ग्रहः ॥३।१।१४३॥

विभाषा १।१॥ ग्रहः ५।१॥ अनु०—णः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्रह-धातोर्विकल्पेन णः प्रत्ययो भवति ॥ पक्षे सामान्यविहितोऽच् ॥ उदा०—ग्राहः, ग्रहः ॥

भाषार्थः—[ग्रहः] ग्रह धातु से [विभाषा] विकल्प से ण प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में सामान्यविहित पचाद्यच् (३।१।१३४) होगा ॥ उदा०—ग्राहः (मकर), ग्रहः (नक्षत्र) ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।१।१४४ तक जायेगी ॥

गेहे कः ॥३।१।१४४॥

गेहे ७।१॥ कः १।१॥ अनु०—ग्रहः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्रह-धातोर्गेहे कर्त्तरि वाच्ये कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गृह्णातीति गृहम्; गृहाः दाराः ॥

भाषार्थः—ग्रह धातु से [गेहे] गेह=गृह कर्त्ता वाच्य होने पर [कः] क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गृहम् (घर); गृहाः दाराः (घर में स्थित स्त्रियाँ) ॥

शिल्पनि ष्वुन् ॥३।१।१४५॥

शिल्पिनि ७।१॥ ष्वुन् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः ष्वुन् प्रत्ययो भवति शिल्पिनि कर्तरि वाच्ये ॥ उदा०—नर्तकः, खनकः, रजकः । नर्तकी, रजकी, खनकी ॥

भाषार्थः—धातु से [शिल्पिनि] शिल्प कर्ता अभिधेय हो, तो [ष्वुन्] ष्वुन् प्रत्यय होता है ॥ परिशिष्ट १।३।६ में नर्तकी, रजकी, खनकी की सिद्धि की है, सो उसी प्रकार पुंल्लिङ्ग में ङीष् न होकर नर्तकः, रजकः, खनकः बनेगा ॥

यहाँ से 'शिल्पिनि' की अनुवृत्ति ३।१।१४७ तक जायेगी ॥

गस्थकन् ॥३।१।१४६॥

गः ५।१॥ थकन् १।१॥ अनु०—शिल्पिनि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गायतेर्धातोस्थकन् प्रत्ययो भवति, शिल्पिनि कर्त्तरि वाच्ये ॥ उदा०—गाथकः, गाथिका ॥

भाषार्थः—[गः] गै धातु से [थकन्] थकन् प्रत्यय होता है, शिल्पी कर्ता वाच्य हो तो ॥ उदा०—गाथकः (गवैया), गाथिका ॥ स्त्रीलिङ्ग में टाप् प्रत्यय होकर, प्रत्ययस्थात् कात्० (७।३।४४) से इत्व होकर गाथिका बन गया है ॥

यहाँ से 'गः' की अनुवृत्ति ३।१।१४७ तक जायेगी ॥

ण्युट् च ॥३।१।१४७॥

ण्युट् १।१॥ च अ० ॥ **अनु०**—गः, शिल्पिनि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—शिल्पिन्यभिधेये गाधातोर्ण्युट् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—गायनः, गायनी ॥

भाषार्थः—**शिल्पी कर्त्ता वाच्य हो, तो** [च] **गा धातु से** [ण्युट्] **ण्युट्** प्रत्यय **होता है ॥ यहाँ चकार से गा धातु का अनुकर्षण है ॥ ण्युट् के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में** टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) **से ङीप् होकर गायनी (गानेवाली) बना है ॥**

यहाँ से 'ण्युट्' की अनुवृत्ति ३।१।१४८ **तक** जायेगी ॥

हश्च व्रीहिकालयोः ॥३।१।१४८॥

हः ५।१॥ च अ० ॥ व्रीहिकालयोः ७।२॥ स०—व्रीहिश्च कालश्च व्रीहिकालौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—ण्युट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—व्रीहिकालयोरभिधेययोः 'हः' धातोर्ण्युट् प्रत्ययो भवति ॥ 'हा' इत्यनेन सामान्यग्रहणात् 'ओहाङ् गतौ, ओहाक् त्यागे' इति द्वयोरपि ग्रहणं भवति ॥ **उदा०**—हायना । हायनः ॥

भाषार्थ:—[व्रीहिकालयोः] **व्रीहि और काल अभिधेय हों, तो** [हः] **'हा' धातु से** [च] **ण्युट् प्रत्यय होता है ॥ हा से ओहाक् तथा ओहाङ् दोनों धातुओं का ग्रहण है, क्योंकि अनुबन्ध हटा देने पर दोनों का 'हा' रूप रह जाता है ॥ चकार से यहाँ ण्युट् का अनुकर्षण है ॥** उदा०—**हायना (हायना नाम की व्रीहि=धान्यविशेष) । हायनः (संवत्सर=वर्ष) ॥**

प्रसृल्वः समभिहारे वुन् ॥३।१।१४९॥

प्रसृल्वः १।३, अत्र पञ्चम्याः स्थाने जस् ॥ समभिहारे ७।१॥ वुन् १।१॥ **स०**—प्रुश्च सृ च लू च प्रसृल्वः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ इह सम्यग्विचारेण क्रियाकरणं समभिहारशब्देन गृह्यते ॥ **अर्थः**—प्रु, सृ, लू इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति समभिहारे गम्यमाने ॥ **उदा०**—प्रवतीति =प्रवकः । सरतीति=सरकः । लुनातीति=लवकः ॥

भाषार्थः—[प्रसृल्वः] **प्रु, सृ, लू इन धातुओं से** [समभिहारे] **समभिहार गम्यमान होने पर** [वुन्] **वुन् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ समभिहार शब्द से ठीक-ठीक कार्य करना अर्थ लिया गया है, न कि क्रिया का बार-बार करना । सो जो अच्छी प्रकार क्रिया न करे, वहाँ प्रत्यय नहीं होगा ॥** उदा०—**प्रवकः (अच्छे प्रकार चलनेवाला) । सरकः (अच्छी प्रकार सरकनेवाला) । लवकः (अच्छी प्रकार काटनेवाला) ॥**

यहाँ से 'वुन्' की अनुवृत्ति ३।१।१५० तक जायेगी ॥

आशिषि च ॥३।१।१५०॥

आशिषि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—वुन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिषि गम्यमाने धातुमात्राद् वुन् प्रत्ययो भवति ॥ चकाराद् वुन्ननुकृष्यते ॥ उदा०—जीवतात् =जीवकः । नन्दतात्=नन्दकः ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो, तो धातुमात्र से [च] वुन् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ चकार से वुन् का अनुकर्षण है ॥ उदा०—जीवकः (जो चिरकाल तक जीवे) । नन्दकः (जो प्रसन्न होवे) ॥ सिद्धियाँ ण्वुल् की सिद्धियों (देखो—परिशिष्ट १।१।१) के समान हैं ॥

॥ इति प्रथमः पादः ॥

—:०:—

द्वितीयः पादः

कर्मण्यण् ॥३।२।१॥

कर्मणि ७।१॥ अण् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुम्भं करोतीति=कुम्भकारः, नगरकारः । काण्डं लुनातीति=काण्डलावः, शरलावः । वेदमधीते=वेदाध्यायः । चर्चां पठतीति= चर्चापाठः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते धातुमात्र से [अण्] अण् प्रत्यय होता है ॥ उदाहरण में कुम्भ आदि कर्म उपपद हैं, सो 'कृ' इत्यादि धातुओं से अण् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—कुम्भकारः, नगरकारः । काण्डलावः (शाखा को काटनेवाला), शरलावः । वेदाध्यायः (वेद को पढ़नेवाला) । चर्चापाठः । (पदच्छेद विभक्ति पढ़नेवाला) ॥ परिशिष्ट १।१।३८ के स्वादुङ्कारम् के समान ही सब सिद्धियाँ हैं ॥ यहाँ उपपदमतिङ् (२।२।१९) से समास होता है, यही विशेष है । वेदान् कर्म उपपद् रहते अधिपूर्वक इङ् धातु से अण् होकर, वृद्धि आयादेश यणादेश होकर वेदाध्यायः बन गया है ॥

यहाँ से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति ३।२।५८ तक, तथा 'अण्' की अनुवृत्ति ३।२।२ तक जायेगी ॥

अण्

ह्वावामश्च ॥३।२।२॥

ह्वावामः ५।१॥ च अ० ॥ स०—ह्वाश्च वाश्च माश्च ह्वावामाः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मण्यण, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च, वेञ् तन्तुसन्ताने, माङ् माने इत्येतेभ्यश्च धातुभ्यः कर्मण्युपपदे अण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुत्रं ह्वयति=पुत्रह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥

भाषार्थः—[ह्वावामः] ह्वेञ्, वेञ्, माङ् इन धातुओं से [च] भी कर्म उपपद रहते अण् प्रत्यय होता है ॥ ह्वेञ् वेञ् इन धातुओं को आत्व करके सूत्र में निर्देश किया है ॥ उदा०—पुत्रह्वायः (पुत्र को बुलानेवाला) । तन्तुवायः (जुलाहा) । धान्यमायः (धान मापनेवाला) ॥ आतोऽनुपसर्गे कः (३।२।३) से क प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है । आतो युक्चिण्कृतोः (७।३।३३) से पुत्रह्वायः आदि में युक् का आगम हुआ है ॥

क

आतोऽनुपसर्गे कः ॥३।२।३॥

आतः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ कः १।१॥ स०—अनुपसर्गे इत्यत्र बहुव्रीहिः ॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गेभ्य आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कर्मण्युपपदे कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—गां ददातीति=गोदः, कम्बलदः ।पार्ष्णि त्रायते=पार्ष्णित्रम्, अङ्गुलित्रम् ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] अनुपसर्ग [आतः] आकारान्त धातुओं से कर्म उपपद रहते [कः] क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—गोदः (गौ देनेवाला), कम्बलदः (कम्बल देनेवाला) । पार्ष्णित्रम् (मोजा), अङ्गुलित्रम् (दस्ताना) ॥ दा के आकार का लोप आतो लोप इटि च (६।४।६४) से हो गया है । सर्वत्र कुम्भकारः के समान ही सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'कः' की अनुवृत्ति ३।२।७ तक जायेगी ॥

क

सुपि स्थः ॥३।२।४॥

सुपि ७।१॥ स्थः ५।१॥ अनु०—कः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सुबन्त उपपदे स्थाधातोः कः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—समे तिष्ठतीति समस्थः, विषमस्थः ॥

भाषार्थः—[सुपि]सुबन्त उपपद रहते[स्थः]स्था धातु से क प्रत्यय होता है ॥ उदा०—समस्थः (सम में ठहरनेवाला), विषमस्थः (विषम में ठहरनेवाला) ॥ उदाहरण में आतो लोप इटि च (६।४।६४) से स्था के आकार का लोप हो जायेगा ॥

विशेषः—यहाँ से आगे 'सुपि' तथा 'कर्मणि' दोनों पदों की अनुवृत्ति चलती है।

सो जिन सूत्रों में सकर्मक धातुओं का सम्बन्ध होगा, वहां कर्मणि की अनुवृत्ति लगानी होगी। तथा जहाँ अकर्मक धातुओं का सम्बन्ध होगा, वहाँ 'सुपि' की अनुवृत्ति लगानी होगी। ऐसा सर्वत्र समझें, जैसा कि सूत्रों में सर्वत्र दिखाया भी है॥

यहाँ से 'सुपि' की अनुवृत्ति ३।२।८३ तक जायेगी॥

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥३।२।५॥

तुन्दशोकयो: ७।२॥ परिमृजापनुदो: ६।२॥ स०—उभयत्रापि इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ **अनु०**—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ **अर्थः**—तुन्द शोक इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः यथासङ्ख्यं परिपूर्वात् 'मृज' धातोः, अपपूर्वाच्च 'नुद' धातोः कः प्रत्ययो भवति॥ **उदा०**—तुन्दं परिमार्ष्टि=तुन्दपरिमृज आस्ते। शोकम् अपनुदति =शोकापनुदः पुत्रो जातः॥

भाषार्थः—[तुन्दशोकयोः] तुन्द तथा शोक कर्म उपपद रहते यथासङ्ख्य करके [परिमृजापनुदोः] परिपूर्वक मृज तथा अपपूर्वक नुद धातु से क प्रत्यय होता है॥ उदा०—तुन्दपरिमृज आस्ते (आलसी बैठता है)। शोकापनुदः पुत्रो जातः (शोक दूर करनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ)॥

प्रे दाज्ञः ॥३।२।६॥

प्रे ७।१॥ दाज्ञः ५।१॥ स०—दाश्च ज्ञाश्च दाज्ञाः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ **अनु०**—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ **अर्थः**—प्रपूर्वाभ्यां ददाति जानाति इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्मण्युपपदे कः प्रत्ययो भवति॥ **उदा०**—विद्यां प्रददाति= विद्याप्रदः। शास्त्राणि प्रकर्षेण जानातीति=शास्त्रप्रज्ञः, पथिप्रज्ञः॥

भाषार्थः—[प्रे] प्रपूर्वक [दाज्ञः] दा तथा ज्ञा धातु से कर्म उपपद रहते क प्रत्यय होता है॥ उदा०—विद्याप्रदः (विद्या को देनेवाला)। शास्त्रप्रज्ञः (शास्त्रों को जाननेवाला), पथिप्रज्ञः (मार्ग को जाननेवाला)॥ पूर्ववत् उदाहरणों में दा तथा ज्ञा के आकार का लोप हो जायेगा॥

समि ख्यः ॥३।२।७॥

समि ७।१॥ ख्यः ५।१॥ **अनु०**—कः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ **अर्थः**—सम्पूर्वात् ख्याञ् धातोः कर्मण्युपपदे कः प्रत्ययो भवति॥ **उदा०**—गां सञ्चष्टे= गोसंख्यः, अविसंख्यः॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [समि] सम्पूर्वक [ख्यः] ख्याञ् धातु से क प्रत्यय होता है ।। उदा०—गोसंख्यः (गौओं को गिननेवाला), अविसंख्यः (भेड़ों को गिननेवाला) ।। सिद्धि में आकार का लोप पूर्ववत् ही होगा ।।

गापोष्टक् ॥३।२।८॥

गापोः ६।२।। टक् १।१।। स०—गाश्च पाश्च गापौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०--कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कर्मण्युपपदे गा पा इत्येताभ्यां धातुभ्यां टक् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—शक्रं गायति=शक्रगः; साम गायति=सामगः । शक्रगी, सामगी । सुरां पिबति=सुरापः, शीधुपः । सुरापी, शीधुपी ।।

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [गापोः] गा तथा पा धातुओं से [टक्] टक् प्रत्यय होता है ।। उदा०--शक्रगः (इन्द्र अर्थात् ईश्वर का गान करनेवाला); सामगः (साम को गानेवाला) । शक्रगी, सामगी । सुरापः (सुरा को पीनेवाला); शीधुपः (ईख का रस पीनेवाला) । सुरापी, शीधुपी ।। टक् प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् हो जायेगा ।।

हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥३।२।९॥

हरतेः ५।१।। अनुद्यमने ७।१।। अच् १।१।। स०—अनुद्यमन इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अनुद्यमनं=पुरुषार्थेन कार्याऽसम्पादनम् ।। अर्थः—हरतेर्धातोः अनुद्यमनेऽर्थे वर्त्तमानात् कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—भागं हरति=भागहरः, रिक्थहरः, अंशहरः ।।

भाषार्थः—[अनुद्यमाने] अनुद्यमन अर्थ में वर्त्तमान [हरतेः] हृञ् धातु से कर्म उपपद रहते [अच] अच् प्रत्यय होता है ।। उदा०—भागहरः (अपने हिस्से को ले जानेवाला), रिक्थहरः (धन को ले जानेवाला), अंशहरः (अपना हिस्सा ले जानेवाला) ।।

यहाँ से 'हरतेः' की अनुवृत्ति ३।२।११ तक, तथा 'अच्' की अनुवृत्ति ३।२।१५ तक जायेगी ।।

वयसि च ॥३।२।१०॥

वयसि ७।१।। च अ० ।। अनु०—हरतेः, अच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—हरतेर्धातोः कर्मण्युपपदे वयसि गम्यमाने अच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—अस्थिहरः[1] श्वा, कवचहरः[2] क्षत्रियकुमारः ।।

---

१. कुत्ते के हड्डी ले जाने से उसकी अवस्था की प्रतीति हो रही है, अर्थात् वह मांस खानेयोग्य हो गया है ।।

२. यहां भी क्षत्रिय के कवच धारण करने से उसकी अवस्था की प्रतीति हो रही है, अर्थात् वह कवच धारण करने योग्य हो गया है ।।

भाषार्थः—[वयसि] वयस्=अवस्था=आयु गम्यमान हो, तो [च] भी कर्म उपपद रहते हृञ् धातु से अच् प्रत्यय होता है ।। उदा०—अस्थिहरः श्वा (हड्डी ले जानेवाला कुत्ता), कवचहरः क्षत्रियकुमारः (कवच धारण करनेवाला क्षत्रियकुमार) ।।

आङि ताच्छील्ये ।।३।२।११।।

आङि ७।१।। ताच्छील्ये ७।१।। अनु०—हरतेः, अच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। तच्छीलस्य भावः ताच्छील्यम्=तत्स्वभावता ।। अर्थः—ताच्छील्ये गम्यमान आङ्पूर्वाद् हृञ्धातोः कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—फलानि आहरति=फलाहरः, पुष्पाहरः ।।

भाषार्थः—[आङि] आङ् पूर्वक हृञ् धातु से कर्म उपपद रहते [ताच्छील्ये] ताच्छील्य=तत्स्वभावता (ऐसा उसका स्वभाव ही है) गम्यमान हो, तो अच् प्रत्यय होता है ।। उदा०—फलाहरः (फलों को लानेवाला), पुष्पाहरः (पुष्पों को लानेवाला) ।।

अर्हः ।।३।२।१२।।

अर्हः ५।१।। अनु०—अच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—'अर्ह पूजायाम्' अस्माद् धातोः कर्मण्युपपदेऽच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—पूजाम् अर्हति=पूजार्हा, गन्धार्हा, मालार्हा, आदरार्हा ।।

भाषार्थः—[अर्हः] 'अर्ह पूजायाम्' धातु से कर्म उपपद रहते 'अच्' प्रत्यय होता है ।। उदा०—पूजार्हा (पूजा के योग्य), गन्धार्हा (सुगन्धित द्रव्य प्रयोग करने योग्य), मालार्हा (माला डालने योग्य), आदरार्हा (आदर के योग्य) ।। स्त्रीलिङ्ग में सर्वत्र 'टाप्' प्रत्यय हो गया है । अण् प्रत्यय होता, तो टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होता, अच् प्रत्यय का यही फल है ।।

स्तम्बकर्णयोः रमिजपोः ।।३।२।१३।।

स्तम्बकर्णयोः ७।२।। रमिजपोः ६।२।। स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—अच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—स्तम्ब कर्ण इत्येतयोः सुबन्तयोरुपपदयोः यथासङ्ख्यं रम जप इत्येताभ्यां धातुभ्यामच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—स्तम्बे रमते =स्तम्बेरमः ।[1] कर्णे जपति=कर्णेजपः ।।

---

१. स्तम्ब घास को कहते हैं । जो घास में घूमने से सुख माने, वह 'स्तम्बेरमः' है । हाथी विशेषतया घूमने पर ही सुखी रहता है, सो हाथी को ही स्तम्बेरमः रूढ़ि रूप से कहते हैं ।।

भाषार्थः—[स्तम्बकर्णयोः] स्तम्ब और कर्ण सुबन्त उपपद रहते [रमिजपोः] रम तथा जप धातुओं से अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—स्तम्बेरमः (हाथी)। कर्णेजपः (जो कान में कुछ कहता रहे, अर्थात् 'चुगलखोर') ॥ उदाहरणों में हलदन्तात्सप्तम्याः (६।३।७) से सप्तमी विभक्ति का अलुक् हो गया है ॥ इस सूत्र में रम धातु अकर्मक है, तथा जप धातु शब्दकर्मक है। अतः कर्ण जप धातु का कर्म नहीं बन सकता। सो 'सुपि' का सम्बन्ध लगाया है ॥

शमि धातोः संज्ञायाम् ॥३।२।१४॥

शमि ७।१॥ धातोः ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अत्र शम् इत्यव्ययम्, तस्मात् प्रातिपदिकानुकरणत्वाद् विभक्तेरुत्पत्तिः। एवम् सर्वत्राव्ययस्थले बोध्यम् ॥ अनु०—अच्, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—शम्यव्यय उपपदे धातुमात्रात् संज्ञायाम् विषयेऽच् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—शम् करोति=शङ्करः, शंभवः, शंवदः ॥

भाषार्थः—[शमि] शम् अव्यय के उपपद रहते [धातोः] धातुमात्र से [संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शङ्करः (कल्याण करनेवाला), शंभवः (कल्याणवाला), शंवदः (कल्याण की बातें करनेवाला) ॥ इस सूत्र में शम् अव्यय है, सो यहां प्रातिपदिक-अनुकरण में सप्तमी विभक्ति हुई है ॥

अधिकरणे शेतेः ॥३।२।१५॥

अधिकरणे ७।१॥ शेतेः ५।१॥ अनु०—अच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अधिकरणे सुबन्त उपपदे शीङ्धातोः अच् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—खे शेते =खशयः, गर्त्ते शेते=गर्त्तशयः ॥

भाषार्थः—[अधिकरणे] अधिकरण सुबन्त उपपद रहते [शेतेः] शीङ् धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—खशयः (आकाश में सोनेवाला=पक्षी), गर्त्तशयः (गड्ढे में सोनेवाला) ॥

यहां से 'अधिकरणे' की अनुवृत्ति ३।१।१६ तक जायेगी ॥

चरेष्टः ॥३।२।१६॥

चरेः ५।१॥ टः १।१॥ अनु०—अधिकरणे, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—चरधातोरधिकरणे सुबन्त उपपदे टः प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—कुरुषु चरति =कुरुचरः, मद्रचरः। कुरुचरी, मद्रचरी ॥

भाषार्थः—अधिकरण सुबन्त उपपद रहते [चरेः] चर धातु से [टः] 'ट' प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कुरुचरः (कुरु देश में भ्रमण करनेवाला), मद्रचरः (मद्र देश

में घूमनेवाला) । कुरुचरी, मद्रचरी ॥ 'ट' के टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होकर कुरुचरी आदि भी बनेगा ॥

यहाँ से 'टः' की अनुवृत्ति ३।२।२३, तथा 'चरेः' की ३।२।१७ तक जायेगी ॥

भिक्षासेनादायेषु च ॥३।२।१७॥

भिक्षासेनादायेषु ७।३॥ च अ० ॥ स०—भिक्षा च सेना च आदाय च भिक्षासेनादायाः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—चरेष्टः, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भिक्षा सेना आदाय इत्येतेषु शब्देषूपपदेषु चरधातोः टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भिक्षया चरति=भिक्षाचरः । सेनया चरति=सेनाचरः । आदाय चरति=आदायचरः ॥

भाषार्थः—[भिक्षासेनादायेषु] भिक्षा, सेना, आदाय शब्द उपपद रहते [च] भी चर धातु से ट प्रत्यय होता है ॥ ऊपर सूत्र में अधिकरण सुबन्त उपपद रहते ट प्रत्यय किया था। यहाँ सामान्य कोई सुबन्त उपपद रहते कह दिया है ॥ उदा०—भिक्षाचरः (भिक्षा के हेतु से घूमता है) । सेनाचरः (सेना के हेतु से घूमता है) । आदायचरः (लेकर घूमता है) ॥ सिद्धियाँ तो सर्वत्र कुम्भकारः के समान ही समझते जायें । केवल अनुबन्ध-विशेष देखकर वृद्धि गुण की प्राप्ति पर ही ध्यान देना है ॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥३।२।१८॥

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु ७।३॥ सर्त्तेः ५।१॥ स०—पुरश्च अग्रतश्च अग्रे च पुरोऽग्रतोऽग्रयः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—टः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पुरस्, अग्रतस्, अग्रे इत्येतेषूपपदेषु सृधातोः टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुरः सरति=पुरस्सरः । अग्रतः सरति=अग्रतस्सरः । अग्रेसरः ॥

भाषार्थः—[पुरोऽग्रतोऽग्रेषु] पुरस्, अग्रतस्, अग्रे ये अव्यय उपपद रहते [सर्त्तेः] सृ धातु से ट प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पुरस्सरः (आगे चलनेवाला) । अग्रतस्सरः (आगे चलनेवाला) । अग्रेसरः (आगे जानेवाला) ॥

यहाँ से 'सर्त्तेः' की अनुवृत्ति ३।२।१९ तक जायेगी ॥

पूर्वे कर्त्तरि ॥३।२।१९॥

पूर्वे ७।१॥ कर्त्तरि ७।१॥ अनु०—सर्त्तेः, टः, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्तृवाचिनि पूर्वसुबन्त उपपदे सृधातोः टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पूर्वः सरति=पूर्वसरः ॥

भाषार्थः—[कर्त्तरि] कर्त्तावाची [पूर्वे] पूर्व सुबन्त उपपद हो, तो सृ धातु से ट प्रत्यय होता है ॥ पूर्व शब्द प्रथमान्त कर्त्तावाची है ॥ उदा०—पूर्वसरः (पहला सरकनेवाला) ॥

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥३।२।२०॥

कृञः ५।१॥ हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ७।३॥ स०—हेतुश्च ताच्छील्यञ्च आनुलोम्यञ्च हेतुताच्छील्यानुलोम्यानि, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—टः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हेतुः=कारणम्, ताच्छील्यम्=तत्स्वभावता, आनुलोम्यम्=अनुकूलता इत्येतेषु गम्यमानेषु कर्मण्युपपदे कृञ्धातोः 'टः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—हेतौ—शोककरी अविद्या, यशस्करी विद्या। ताच्छील्ये—धर्मं करोति =धर्मंकरः, अर्थंकरः। आनुलोम्ये—वचनं करोति=वचनकरः पुत्रः, आज्ञाकरः शिष्यः, प्रैषकरः ॥

भाषार्थः—कर्म उपपद रहते [कृञः] कृञ् धातु से [हेतु······षु] हेतु ताच्छीय आनुलोम्य गम्यमान हो, तो ट प्रत्यय होता है ॥ टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् हो जाता है ॥ उदा०—हेतु में शोककरी अविद्या (शोक करनेवाली अविद्या), यशस्करी विद्या (यश देनेवाली विद्या)। ताच्छील्य में—धर्मंकरः (धर्म करने के स्वभाववाला), अर्थंकरः (धन कमाने के स्वभाववाला)। आनुलोम्य में—वचनकरः पुत्रः (वचन के अनुकूल कार्य करनेवाला पुत्र), आज्ञाकरः शिष्यः (आज्ञाकारी शिष्य)। प्रैषकरः (प्रेरणा के अनुकूल करनेवाला सेवक) ॥

यहाँ से 'कृञ्' की अनुवृत्ति ३।२।२४ तक जायेगी ॥

दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तादिबहुनान्दीकिंलिपि-
लिबिबलिभक्तिकर्त्तृचित्रक्षेत्रसङ्ख्याजङ्घा-
बाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ॥३।२।२१॥

दिवाविभा······धनुररुष्षु ७।३॥ स०—दिवाविभा० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, सुपि इति च द्वयमभिसम्बध्यतेऽत्र यथायथम्, कृञः, टः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, कार, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किम्, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, कर्त्तृ, चित्र, क्षेत्र, संख्या, जङ्घा, बाहु, अहन्, यत्, तत्, धनुस्, अरुस् इत्येतेषु सुबन्तेषु अथवा कर्मसूपपदेषु कृञ्धातोः टः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दिवा करोति=दिवाकरः। विभां करोति= विभाकरः। निशां करोति=निशाकरः। प्रभां करोति=प्रभाकरः। भासं करोति= भास्करः। कारकरः। अन्तकरः। अनन्तकरः। आदिकरः। बहुकरः। नान्दीकरः।

किङ्करः। लिपिकरः। लिबिकरः। बलिकरः। भक्तिकरः। कर्तृकरः। चित्रकरः। क्षेत्रकरः। सङ्ख्या—एककरः, द्विकरः, त्रिकरः। जङ्घाकरः। बाहुकरः। अहस्करः। यत्करः। तत्करः। धनुष्करः। अरुष्करः॥

भाषार्थः—[दिवावि······रुष्षु] दिवा, विभा, निशा इत्यादि सुबन्त अथवा कर्म उपपद रहते कृञ् धातु से ट प्रत्यय होता है॥ उदा०—दिवाकरः (सूर्य)। विभाकरः (सूर्य)। निशाकरः (चन्द्रमा)। प्रभाकरः (सूर्य)। भास्करः (सूर्य)। कारकरः (काम करनेवाला)। अन्तकरः (समाप्त करनेवाला)। अनन्तकरः (अनन्त कार्य करनेवाला)। आदिकरः (आरम्भ करनेवाला)। बहुकरः (बहुत करनेवाला)। नान्दीकरः (मङ्गलाचरण करनेवाला)। किङ्करः (नौकर)। लिपिकरः (प्रतिलिपि करनेवाला)। लिबिकरः (प्रतिलिपि करनेवाला)। बलिकरः (बलि देनेवाला)। भक्तिकरः (भक्ति करनेवाला)। कर्तृकरः (कर्त्ता को बनानेवाला)। चित्रकरः (चित्र बनानेवाला)। क्षेत्रकरः (किसान)। सङ्ख्यावाची—एककरः (एक बनानेवाला), द्विकरः, त्रिकरः। जङ्घाकरः (दौड़नेवाला)। बाहुकरः (पुरुषार्थी)। अहस्करः (सूर्य)। यत्करः (जिसको करनेवाला)। तत्करः (उसको करनेवाला)। धनुष्करः (धनुर्धारी, अथवा धनुष बनानेवाला)। अरुष्करः (घाव बनानेवाला)॥ अहस्करः में अहन् के नकार को रेफ रोऽसुपि (८।२।६९) से होकर, उस रेफ को खरवसानयोर्वि० (८।३।१५) से विसर्जनीय हो गया है। पुनः उस विसर्जनीय को अतः कृकमि० (८।३।४६) से सत्व होकर अहस्करः बना है। अरुष्करः में अरुस् के स् को षत्व नित्यं समासेऽनु० (८।३।४५) से होता है। शेष पूर्ववत् ही है॥

कर्मणि भृतौ ॥३।२।२२॥

कर्मणि ७।१॥ भृतौ ७।१॥ अनु०—कृञः, टः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्मवाचिनि कर्मशब्द उपपदे कृञ्धातोः टप्रत्ययो भवति भृतौ गम्यमानायाम्॥ उदा०—कर्म करोतीति=कर्मकरः॥

भाषार्थः—कर्मवाची [कर्मणि] कर्म शब्द उपपद रहते कृञ् धातु से ट प्रत्यय होता है, [भृतौ] भृति (=वेतन) गम्यमान हो तो॥ सूत्र में 'कर्मणि' शब्द का स्वरूप से ग्रहण है॥ उदा०—कर्मकरः (नौकर)॥

न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥३।२।२३॥

न अ०॥ शब्दश्लोक······पदेषु ७।३॥ स०—शब्दश्लोक० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—कृञः, टः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञ् धातोष्टः प्रत्ययो

न भवति ॥ कृञो हेतु० (३।२।२०) इति टप्रत्ययः प्राप्तः प्रतिषिध्यते । तत औत्सर्गिकोऽण् (३।२।१) भवति ॥ उदा०—शब्दं करोति=शब्दकारः । श्लोकं करोति=श्लोककारः । कलहकारः । गाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः । मन्त्रकारः । पदकारः ॥

भाषार्थः—[शब्द ..... पदेषु] शब्द श्लोक आदि कर्म उपपद रहते कृञ् धातु से ट प्रत्यय [न] नहीं होता है ॥ हेत्वादि अर्थों में 'ट' प्रत्यय प्राप्त था प्रतिषेध कर दिया। उसके प्रतिषेध हो जाने पर कर्मण्यण् से औत्सर्गिक 'अण्' हो जाता है ॥ उदा०—शब्दकारः (शब्द बनानेवाला=वैयाकरण)। श्लोककारः (श्लोक बनानेवाला)। कलहकारः (झगड़ालू)। गाथाकारः (आख्यायिका बनानेवाला)। वैरकारः (शत्रु)। चाटुकरः (चापलूस)। सूत्रकारः (सूत्र बनानेवाला)। मन्त्रकारः (मन्त्रद्रष्टा)। पदकारः (पदविभाग करनेवाला) ॥

स्तम्ब, शकृत् + इन् स्तम्बशकृतोरिन् ॥३।२।२४॥

स्तम्बशकृतोः ७।२॥ इन् १।१॥ स०—स्तम्बश्च शकृत् च स्तम्बशकृतौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कृञः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्तम्ब शकृत् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः कृञ् धातोरिन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्तम्बकरिः। शकृत्करिः ॥

भाषार्थः—[स्तम्बशकृतोः] स्तम्ब तथा शकृत् कर्म उपपद हों, तो कृञ् धातु से [इन्] इन् प्रत्यय होता है ॥ व्रीहिवत्सयोरिति वक्तव्यम् (वा० ३।२।२४) इस वार्त्तिक से व्रीहि और वत्स कहना हो तभी यथाक्रम से इन् प्रत्यय होगा ॥ उदा०—स्तम्बकरिः (धानविशेष)। शकृत्करिः (बछड़ा) ॥

यहाँ से 'इन्' की अनुवृत्ति ३।२।२७ तक जायेगी ॥

इन् हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ ॥३।२।२५॥

हरतेः ५।१॥ दृतिनाथयोः ७।२॥ पशौ ७।१॥ अनु०—इन्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ स०—दृति० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अर्थः—दृति नाथ इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्हृञ्धातोः पशौ कर्त्तरि इन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दृतिं हरति=दृतिहरिः पशुः। नाथहरिः पशुः ॥

भाषार्थः—[दृतिनाथयोः] दृति तथा नाथ कर्म उपपद रहते [हरतेः] हृञ् धातु से [पशौ] पशु कर्त्ता होने पर इन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—दृतिहरिः पशुः (मशक ले जानेवाला पशु)। नाथहरिः पशुः (स्वामी को ले जानेवाला पशु) ॥

फलेग्रहिरात्मम्भरिश्च ॥३।२।२६॥

फलेग्रहिः १।१॥ आत्मम्भरिः १।१॥ च अ० ॥ अनु०—इन्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—फलेग्रहिः आत्मम्भरिः इत्येतौ शब्दौ इन्प्रत्ययान्तौ निपात्येते ॥ फलशब्दस्योपपदस्यैकारान्तत्वं ग्रहधातोरिन् प्रत्ययो निपात्यते । फलानि गृह्णाति=फलेग्रहिर्वृक्षः । आत्मन्शब्दस्योपपदस्य मुमागमो डुभृञ् धातोरिन् प्रत्ययश्च निपात्यते । आत्मानं बिभर्त्ति=आत्मम्भरिः ॥

भाषार्थः—[फलेग्रहिः] फलेग्रहि [च] और [आत्मम्भरिः] आत्मम्भरि शब्द इन् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ 'फलेग्रहिः' में फल शब्द उपपद रहते फल को एकारान्तत्व,तथा ग्रह धातु से इन् प्रत्यय निपातन है । 'आत्मम्भरिः'में आत्मन् शब्द उपपद रहते आत्मन् शब्द को मुम् आगम, तथा डुभृञ् धातु से इन् प्रत्यय निपातन किया गया है ॥ उदा०—फलेग्रहिर्वृक्षः (फलों को ग्रहण करनेवाला=वृक्ष) । आत्मम्भरिः (जो अपना भरण-पोषण करता है) ॥

छन्दसि वनसनरक्षिमथाम् ॥३।२।२७॥

छन्दसि ७।१॥ वनसनरक्षिमथाम ६।३॥ स०—वनसन० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—इन्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वन षण सम्भक्तौ, रक्ष पालने, मथे विलोडने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्मण्युपपदे छन्दसि विषये इन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिम् (यजु० १।१७)। गोसनिः (यजु० ८।१२) । यौ पथिरक्षी श्वानौ (अथर्व० ८।१।९) । हविर्मथीनाम् (ऋक्० ७।१०४।२१) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में [वनसनरक्षिमथाम्] वन, षण, रक्ष, मथ इन धातुओं से कर्म उपपद रहते इन् प्रत्यय होता है ॥ धात्वादेः षः सः (६।१। ६२) से 'षण' धातु के 'ष' को 'स' हो गया है । अब अट्कुप्वा० (८।४।२) से जो ष के योग से णत्व हुआ था, वह भी ष के स हो जाने से हट गया,तो सन् धातु बन गई । शेष सिद्धि में भी कुछ भी विशेष नहीं है ॥

एजेः खश् ॥३।२।२८॥

एजेः ५।१॥ खश् १।१॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'एजृ कम्पने' इत्येतस्माद् ण्यन्ताद् धातोः कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो भवति । उदा०—अङ्गमेजयति=अङ्गमेजयः, जनान् एजयति=जनमेजयः, वृक्षमेजयः ॥

भाषार्थ:—[एजेः] 'एजृ कम्पने' ण्यन्त धातु से कर्म उपपद रहते [खश्] खश् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'खश्' की अनुवृत्ति ३।२।३७ तक जायेगी ॥

ध्मा + खश घेट्

नासिकास्तनयोर्ध्माधेटोः ॥३।२।२९॥

नासिकास्तनयोः ७।२॥ ध्माधेटोः ६।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—नासिका स्तन इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः ध्मा धेट् इत्येतयोर् धात्वोः खश प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नासिकन्धमः । नासिकन्धयः । स्तनन्धयः ॥

भाषार्थ:—[नासिकास्तनयोः] नासिका तथा स्तन कर्म उपपद रहते [ध्माधेटोः] ध्मा तथा धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय होता है ॥ यथासङ्ख्य यहाँ इष्ट नहीं है। अतः नासिका उपपद रहते ध्मा तथा धेट् दोनों धातुओं से प्रत्यय होगा । पर स्तन उपपद रहते केवल धेट् से ही होता है ॥

यहाँ से 'ध्माधेटोः' की अनुवृत्ति ३।२।३० तक जायेगी ॥

खश

नाडीमुष्टयोश्च ॥३।२।३०॥

नाडीमुष्टयोः ७।२॥ च अ० ॥ स०—नाडी च मुष्टिश्च नाडीमुष्टयौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ध्माधेटोः, खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ध्मा धेट् इत्येताभ्यां धातुभ्यां नाडीमुष्टयोः कर्मणोरुपपदयोः खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नाडिन्धमः । नाडिन्धयः । मुष्टिन्धमः । मुष्टिन्धयः ॥

भाषार्थ:—[नाडीमुष्टयोः] नाडी और मुष्टि कर्म उपपद रहते [च] भी ध्मा तथा धेट् धातुओं खश् से प्रत्यय होता है ॥ यथासङ्ख्य यहाँ भी इष्ट नहीं है ॥ उदा०—नाडिन्धमः (नाडी को बजानेवाला) । नाडिन्धयः (नाडी को पीनेवाला) । मुष्टिन्धमः (मुट्ठी को बजानेवाला) । मुष्टिन्धयः (मुट्ठी को पीनेवाला)॥ अरुर्द्वि० (६।३।६६) से मुम् का आगम, तथा ध्मा को धम आदेश सिद्धि में समझें ॥

खश

उदि कूले रुजिवहोः ॥३।२।३१॥

उदि ७।१॥ कूले ७।१॥ रुजिवहोः ६।२॥ स०—रुजि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत्पूर्वाभ्यां रुजि वह इत्येताभ्यां धातुभ्यां कूले कर्मण्युपपदे खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कूलमुद्रुजति=कूलमुद्रुजो रथः । कूलमुद्वहति=कूलमुद्वहः ॥

भाषार्थ:—[उदि] उत् पूर्वक [रुजिवहोः] रुज् तथा वह् धातुओं से [कूले]

कुल कर्म उपपद रहते खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कूलमुद्रुजो रथ: (किनारों को काटनेवाला रथ)। कूलमुद्वह: (किनारे को प्राप्त करानेवाला)॥ (६।३।६६ से) मुम् का आगम पूर्ववत् हो ही जायेगा । खश् के शित् होने से सर्वत्र शप् होकर अतो गुणे (६।१।९४) से पररूप हो जायेगा । रुज् धातु तुदादिगण की है, सो उससे शप् के स्थान में 'श' प्रत्यय होगा ॥

वहाभ्रे लिह: ॥३।२।३२॥

वहाभ्रे ७।१॥ लिह: ५।१॥ स०—वहश्च अभ्रश्च वहाभ्रम्, तस्मिन्, समाहारो द्वन्द्व: ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—वह अभ्र इत्येतयो: कर्मणोरुपपदयो: लिह्धातो: खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वहं लेढि=वहंलिहो गौ: । अभ्रंलिहो वायु: ॥

भाषार्थ:—[वहाभ्रे] वह तथा अभ्र कर्म उपपद रहते [लिह:] लिह धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—वहंलिहो गौ: (कंधे को चाटनेवाला बैल) । अभ्रंलिहो वायु: (बादल तक पहुंचनेवाला वायु) ॥ पूर्ववत् मुम् आगम होकर ही सिद्धियाँ जानें ॥

परिमाणे पच: ॥३।२।३३॥

परिमाणे ७।१॥ पच: ५।१॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—परिमाणं प्रस्थादि । परिमाणवाचिनि कर्मण्युपपदे पचधातो: खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रस्थं पचति=प्रस्थंपचा स्थाली । द्रोणम्पच: । खारिम्पच: कटाह: ॥

भाषार्थ:—[परिमाणे] परिमाणवाची कर्म उपपद हो, तो [पच:] पच धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ प्रस्थ द्रोणादि परिमाणवाची शब्द हैं । उदा०—प्रस्थंपचा स्थाली (सेरभर अन्न पका सकनेवाली बटलोई) । द्रोणम्पच: (द्रोणभर पका सकनेवाला बर्तन) । खारिम्पच: कटाह: (खारीभर पका सकनेवाली कड़ाही) ॥

यहाँ से 'पच:' की अनुवृत्ति ३।२।३४ तक जायेगी ॥

मितनखे च ॥३।२।३४॥

मितनखे ७।१॥ च अ० ॥ स०—मितं च नखं च मितनखम्, तस्मिन्, समाहारो द्वन्द्व: ॥ अनु०—पच:, खश्, कर्मणि, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—मित नख इत्येतयो: कर्मणोरुपपदयो: पचधातो: खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मितं पचति=मितम्पचा ब्राह्मणी । नखम्पचा यवागू: ॥

भाषार्थः—[मितनखे] मित और नख कर्म उपपद हों, तो[च] भी पच धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—मितम्पचा ब्राह्मणी (परिमित अन्न पकानेवाली ब्राह्मणी) । नखम्पचा यवागूः (गरम-गरम गीली लप्सी) ॥

विध्वरुषोस्तुदः ॥३।२।३५॥

विध्वरुषोः ७।२॥ तुदः ५।१॥ स०—विधुश्च अरुश्च विध्वरुषी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विधु अरुस् इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः 'तुद' धातोः खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विधुन्तुदः । अरुन्तुदः ॥

भाषार्थः—[विध्वरुषोः] विधु और अरुस् कर्म उपपद हों, तो [तुदः] तुद धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विधुन्तुदः (चांद को व्यथित करनेवाला) । अरुन्तुदः (मर्मपीडक) ॥ अरुन्तुद में पूर्ववत् मुम् आगम होकर—'अरु मुम् स् तुद् श खश् = अरु म् स् तुद् अ अ' रहा । पुनः संयोगान्तस्य लोपः (८।२।२३) से स् का लोप होकर—अरुम् तुद् अ अ रहा । मोऽनुस्वारः (८।३।२३),तथा वा पदान्तस्य (८।४।५८) लगकर अरुन्तुदः बन गया ॥

असूर्यललाटयोर्दृशितपोः ॥३।२।३६॥

असूर्यललाटयोः ७।२॥ दृशितपोः ६।२॥ स०—असूर्यश्च ललाटं च असूर्यललाटे, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । दृशिश्च तप् च दृशितपौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असूर्य ललाट इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः यथासंख्यं दृशि तप इत्येताभ्यां धातुभ्यां खश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—असूर्यम्पश्या राजदाराः । ललाटन्तप आदित्यः ॥

भाषार्थः—[असूर्यललाटयोः] असूर्य तथा ललाट कर्म उपपद हों, तो यथासङ्ख्य करके [दृशितपोः] दृशिर् तथा तप धातुओं से खश् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—असूर्यम्पश्या राजदाराः (जो सूर्य को भी नहीं देखतीं ऐसी पर्दनशीन राजाओं की स्त्रियाँ) । ललाटन्तपः आदित्यः (माथे को तपा देनेवाला सूर्य) ॥ सिद्धि में खश् के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होकर शप् प्रत्यय हुआं, जिस के परे रहते दृश् को पाघ्राध्मा० (७।३।७८) से पश्य आदेश हो जाता है, शेष पूर्ववत् ही है ॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥३।२।३७॥

उग्रम्पश्येरम्मदपाणिन्धमाः १।३॥ च अ० ॥ स०—उग्रम्प० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खश्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उग्रम्पश्य इरम्मद पाणिन्धम इत्येते

शब्दा: खश्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते ॥ उदा०—उग्रं पश्यतीति उग्रम्पश्यः । उग्रम्पश्येन सुग्रीवस्तेन भ्राता निराकृतः । इरया माद्यति=इरम्मदः । पाणयो ध्मायन्ते एष्विति पाणिन्धमाः पन्थानः ॥

भाषार्थः—[उग्र……धमाः] उग्रम्पश्य इरम्मद तथा पाणिन्धम ये शब्द [च] भी खश्प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ उदा०—उग्रम्पश्यः (घूरकर देखने-वाला) । इरम्मदः (मेघ की ज्योति, बिजली) । पाणिन्धमाः पन्थानः (अन्धकारपूर्ण ऐसे रास्ते जहाँ जीव-जन्तुओं से बचने के लिये ताली बजाकर या आवाज करके चला जाता है)॥ इरम्मदः में श्यन् अभाव निपातन से हुआ है । पाणिन्धमः में अधिकरण कारक में करणाधिक० (३।३।११७) से ल्युट प्राप्त था, अतः खश् निपातन कर दिया है । शेष (६।३।६६से) मुम् आगमादि सिद्धि में पूर्ववत् हैं ॥

खच्

प्रियवशे वदः खच् ॥३।२।३८॥

प्रियवशे ७।१॥ वदः ५।१॥ खच् १।१॥ स—प्रियश्च वशश्च प्रियवशम्, तस्मिन्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रिय वश इत्येतयोः कर्मोपपदयोर्वदधातोः खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रियं वदति= प्रियंवदः । वशंवदः ॥

भाषार्थः—[प्रियवशे] प्रिय तथा वश कर्म उपपद हों, तो [वदः] वद धातु से [खच्] खच् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।३।८ में देखें ॥

यहाँ से 'खच्' की अनुवृत्ति ३।२।४७ तक जायेगी ॥

खच्

द्विषत्परयोस्तापेः ॥३।२।३९॥

द्विषत्परयोः ७।२॥ तापेः ५।१॥ स०—द्विषंश्च परश्च द्विषत्परौ, तयोः इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः— द्विषत् पर इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः तपो ण्यन्ताद् धातोः खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्विषन्तं तापयति=द्विषन्तपः । परन्तपः ॥

भाषार्थः—[द्विषत्परयोः] द्विषत् तथा पर कर्म उपपद हों, तो ण्यन्त [तापेः] तप धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ 'तापेः' णिजन्त निर्देश है, अतः णिजन्त तप धातु से ही खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—द्विषन्तपः (शत्रुओं को तपाने=जलाने वाला)। परन्तपः (दूसरों=शत्रुओं को तपानेवाला)॥ द्विष मुम् त् तप् णिच् खच्= 'द्विष म् त् ताप् इ अ' रहा । खचि ह्रस्वः (६।४।९४) से उपधा का ह्रस्वत्व, णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप, तथा संयोगान्तस्य० (८।२।२३) से त् का लोप होकर द्विषन्तपः बन गया है ॥

वाचि यमो व्रते ॥३।२।४०॥

वाचि ७।१॥ यमः ५।१॥ व्रते ७।१॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वाक्शब्दे कर्मण्युपपदे यमधातोः व्रते गम्यमाने खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वाचंयम आस्ते ॥

भाषार्थः—[वाचि] वाच् कर्म उपपद हो, तो [यमः] यम धातु से [व्रते] व्रत गम्यमान होने पर खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—वाचंयम आस्ते (वाणी को संयम में करनेवाला व्रती बैठा है) ॥ वाचंयमपुरन्दरौ च (६।३।६८) से निपातन से पूर्व पद का अमन्तत्व यहाँ हुआ है, शेष पूर्ववत् है ॥

पूःसर्वयोर्दारिसहोः ॥३।२।४१॥

पूःसर्वयोः ६।२॥ दारिसहोः ६।२॥ स०—पूश्च सर्वश्च पूःसर्वौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । दारि० इत्यत्रापि इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पुर् सर्व इत्येतयोः कर्मोपपदयोः यथासंख्यं दारि सह इत्येताभ्यां धातुभ्यां खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुर दारयति=पुरन्दरः । सर्वंसहः ॥

भाषार्थः—[पूःसर्वयोः]पुर् सर्व ये कर्म उपपद हों, तो [दारिसहोः] 'दृ विदारणे' ण्यन्त धातु से तथा सह धातु से यथासंख्य करके खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पुरन्दरः (किले को तोड़नेवाला)। सर्वंसहः (सब सहन करनेवाला) ॥ वाचंयमपुरन्दरौ च (६।३।६८) से पुरन्दरः में पूर्वपद का अमन्तत्व निपातन किया है। सर्वंसहः में तो अरुर्द्विषद० (६।३।६६) से अजन्त मानकर मुम् आगम हो ही जायेगा ॥ खचि ह्रस्वः (६।४।९४) से उपधा का ह्रस्वत्व, तथा णेरनिटि (६।४।५१) से णिच् का लोप पुरन्दरः में पूर्ववत् हो ही जायेगा ॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥३।२।४२॥

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु ७।३॥ कषः ५।१॥ स०—सर्व० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सर्व कूल अभ्र करीष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कषधातोः खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सर्वं कषति=सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो गिरिः । करीषंकषा वात्या ॥

भाषार्थः—[सर्वकूलाभ्रकरीषेषु] सर्व, कूल, अभ्र, करीष ये कर्म उपपद रहते [कषः] कष धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सर्वंकषः खलः (सब को पीड़ा देनेवाला दुष्ट) । कूलंकषा नदी (किनारे को तोड़नेवाली नदी) । अभ्रंकषो गिरिः (गगनचुम्बी पर्वत) । करीषंकषा वात्या (सूखे गोबर को भी उड़ा ले जानेवाली आँधी) ॥

मेघर्त्तिभयेषु कृञः ॥३।२।४३॥

मेघर्त्तिभयेषु ७।३॥ कृञः ५।१॥ स०—मेघश्च ऋतिश्च भयञ्च मेघर्त्ति-भयानि, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मेघ ऋति भय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञ् धातोः खच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मेघं करोति=मेघंकरः। ऋतिंकरः। भयंकरः ॥

भाषार्थः—[मेघर्त्तिभयेषु] मेघ ऋति भय ये कर्म उपपद हों, तो [कृञः] कृञ् धातु से खच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—मेघंकरः (बादल बनानेवाला)। ऋतिंकरः (स्पर्धा करनेवाला)। भयंकरः (भीषण) ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।२।४४ तक जायेगी ॥

क्षेमप्रियमद्रेऽण् च ॥३।२।४४॥

क्षेमप्रियमद्रे ७।१॥ अण् १।१॥ च अ० ॥ स०—क्षेमश्च प्रियश्च मद्रश्च क्षेमप्रियमद्रम्, तस्मिन्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कृञः, खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्षेम प्रिय मद्र इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञ् धातोः अण् प्रत्ययो भवति चकारात् खच् च ॥ उदा०—क्षेमं करोति=क्षेमकारः, क्षेमंकरः। प्रियकारः, प्रियंकरः। मद्रकारः, मद्रंकरः ॥

भाषार्थः—[क्षेमप्रियमद्रे] क्षेम प्रिय मद्र ये कर्म उपपद रहते कृञ् धातु से [अण्] अण् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से खच् भी होता है ॥ उदा०—क्षेमकारः (कुशलता करनेवाला), क्षेमंकरः। प्रियकारः (प्रिय करनेवाला), प्रियंकरः। मद्रकारः (भला करनेवाला), मद्रंकरः ॥ अण् पक्ष में वृद्धि, तथा खच् पक्ष में मुम् आगम होकर पूर्ववत् ही सिद्धि जानें ॥

आशिते भुवः करणभावयोः ॥३।२।४५॥

आशिते ७।१॥ भुवः ५।१॥ करणभावयोः ७।२॥ स०—करण० इत्यत्रेतरेतर-योगद्वन्द्वः ॥ अनु०—खच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिते सुबन्त उपपदे भूधातोः करणे भावे चार्थे खच् प्रत्ययो भवति ॥ कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) इत्यनेन कर्त्तरि प्राप्ते करणे भावे च विधीयते ॥ उदा०—आशितः=तृप्तो भवत्यनेन=आशितंभवः ओदनः। भावे—आशितस्य भवनम्=आशितंभवं वर्त्तते ॥

भाषार्थः—[आशिते] आशित सुबन्त उपपद हो, तो [भुवः] भू धातु से [करण-भावयोः] करण और भाव में खच् प्रत्यय होता है ॥ कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में ही खच् प्रत्यय प्राप्त था, अतः करण और भाव में विधान कर दिया है ॥

उदा०—आशितंभवः ओदनः (जिसके द्वारा तृप्त हुआ जाता है ऐसा चावल)। भाव में—आशितंभवं वर्त्तते (तृप्त होना हो रहा है)॥

खच्

संज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ॥३।२।४६॥

संज्ञायाम् ७।१॥ भृतृवृजिधारिसहितपिदमः ५।१॥ स०—भृ च तृ च वृश्च जिश्च धारिश्च सहिश्च तपिश्च दम् च भृतृ,···दम्,तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—खच्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्मणि सुबन्ते वोपपदे भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः खच् प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये॥ उदा०—विश्वं बिभर्त्ति=विश्वम्भरः परमेश्वरः। रथेन तरति=रथन्तरं साम। पतिं वृणुते=पतिंवरा कन्या। शत्रुं जयति=शत्रुञ्जयः। युगं धारयति=युगन्धरः। शत्रुं सहते=शत्रुंसहः। शत्रुं तपति=शत्रुंतपः। अरिं दाम्यति=अरिंदमः॥

भाषार्थः—[संज्ञायाम्] संज्ञा गम्यमान हो, तो कर्म अथवा सुबन्त उपपद रहते [भृतृ···दमः] भृ, तृ, वृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम् इन धातुओं से खच् प्रत्यय होता है॥ उदा०-विश्वम्भरः परमेश्वरः (विश्व का भरण करनेवाला परमेश्वर)। रथन्तरं साम (सामगान विशेष]। पतिंवरा कन्या (पति का वरण करनेवाली कन्या)। शत्रुञ्जयः (हाथी)। युगन्धरः (पर्वत)। शत्रुंसहः (शत्रु को सहन करनेवाला)। शत्रुंतप (शत्रु को तपानेवाला)। अरिंदमः (शत्रु का दमन करनेवाला)॥ सिद्धियां पूर्ववत् हैं। कर्मणि तथा सुपि दोनों की अनुवृति होने से यथासम्भव कर्म वा सुबन्त उपपद होने पर प्रत्यय उत्पन्न होता है। रथन्तर सामविषेष की संज्ञा है, यहां अवयवार्थ सम्भव नहीं है।' 'रथेन तरति' यह व्युत्पत्तिमात्र दिखाई गई है। धृ धातु का ण्यन्त से निर्देश किया है, अतः ण्यन्त से ही प्रत्यय होगा। खचि ह्रस्वः (६।४।९४) से इगुपधाह्रस्वत्व, तथा णेरनिटि (६।४।५१) से णिच् का लोप हो जायेगा। दम धातु अन्तर्भावितण्यर्थ होने से सकर्मक हो गई है॥

यहाँ से 'संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति ३।२।४७ तक जायेगी॥

गम् + खच्

गमश्च ॥३।२।४७॥

गमः ५।१॥ च अ०॥ अनु०—संज्ञायाम्, खच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—संज्ञायां गम्यमानायां कर्मण्युपपदे गम धातोः खच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—सुतं गच्छति=सुतङ्गमः॥

भाषार्थः—संज्ञा गम्यमान होने पर कर्म उपपद रहते [गमः] गम धातु से [च] भी खच् प्रत्यय होता है॥ उदा०-सुतङ्गमः (यह किसी व्यक्ति विशेष का नाम है)॥

यहाँ से 'गमः' की अनुवृत्ति ३।२।४८ तक जायेगी॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥३।२।४८॥

अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु ७।३॥ डः १।१॥ स०—अन्तश्च अत्यन्तं च अध्वा च दूरं च पारश्च सर्वश्च अनन्तश्च अन्ता···ताः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—गमः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु गमधातोर्डः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अन्तं गच्छति= अन्तगः। अत्यन्तगः। अध्वगः। दूरगः। पारगः। सर्वगः। अनन्तगः॥

भाषार्थः—[अन्ता······षु] अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त कर्म उपपद रहते गम धातु से [डः] ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अन्तगः (अन्त को प्राप्त होनेवाला)। अत्यन्तगः (अत्यन्त जानेवाला)। अध्वगः (रास्ते में चलनेवाला)। दूरगः (दूर जानेवाला)। पारगः (पार जानेवाला)। सर्वगः (सब को प्राप्त होनेवाला)। अनन्तगः (अनन्त को प्राप्त होनेवाला)॥ 'ड' प्रत्यय के डित् होने से डित्यभस्याप्यनुबन्धकरणसामर्थ्यात् (वा० ६।४।१४३) इस भाष्य-वार्तिक से गम धातु के टि भाग (गम् के अम्) का लोप हो जायेगा, शेष सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है॥

यहां से 'डः' की अनुवृत्ति ३।२।५० तक जायेगी॥

आशिषि हनः ॥३।२।४९॥

आशिषि ७।१॥ हनः ५।१॥ अनु०—डः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिषि गम्यमानायां कर्मण्युपपदे हनधातोर्डः प्रत्ययो भवति॥ उदा०—शत्रून् वध्यात्=शत्रुहस्ते पुत्रो भूयात्। दुःखहस्त्वं भूयाः॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वचन गम्यमान होने पर [हनः] हन धातु से कर्म उपपद रहते ड प्रत्यय होता है॥ उदा०—शत्रून् वध्यात्=शत्रुहस्ते पुत्रो भूयात् (तेरा पुत्र शत्रु को मारनेवाला हो)। दुःखहस्त्वं भूयाः (तुम दुःख को नष्ट करनेवाले बनो)। यहां डित् होने से पूर्ववत् हन् धातु के टि भाग का लोप हो जायेगा॥

यहां से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।२।५५ तक जायेगी॥

अपे क्लेशतमसोः ॥३।२।५०॥

अपे ७।१॥ क्लेशतमसोः ७।२॥ स०—क्लेशश्च तमश्च क्लेशतमसी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—हनः, डः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—

क्लेश तमस् इत्येतयोः कर्मोपपदयोः अपपूर्वाद् हनधातोर्डः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०— क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहः सूर्यः ॥

भाषार्थः—[क्लेशतमसोः] क्लेश तथा तमस् कर्म उपपद रहते [अपे] अप पूर्वक हन धातु से ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—क्लेशापहः पुत्रः (क्लेश को दूर करनेवाला पुत्र) । तमोपहः सूर्यः ॥ यहाँ भी पूर्ववत् टि का लोप समझें । तमस् के 'स्' को ससजुषो रुः (८।२।६६) से रु होकर तमर् बना । पुनः अतो रोर० (६।१।१०९) से र् को 'उ' होकर, आद्गुणः (६।१।८४) से गुण एकादेश होकर—'तमो अपहः' बना, एङः पदान्ता० (६।१।१०५) से अपहः के अकार का पूर्वरूप एकादेश होकर तमोपहः बन गया है । शेष सिद्धि पूर्ववत् ही है ॥

णिनि

कुमारशीर्षयोर्णिनिः ॥३।२।५१॥

कुमारशीर्षयोः ७।२॥ णिनिः १।१॥ स०—कुमारश्च शीर्षं च कुमारशीर्षे, तयोः,इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः— कुमार शीर्ष इत्येतयोः कर्मोपपदयोः हन्धातोः णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०— कुमारघाती। शीर्षघाती ॥

भाषार्थः—[कुमारशीर्षयोः]कुमार तथा शीर्ष कर्म उपपद हों,तो हन् धातु से [णिनिः]णिनि प्रत्यय होता है ॥ यहाँ निपातन से शिरस् को शीर्षभाव हो गया है॥

टक्

लक्षणे जायापत्योष्टक् ॥३।२।५२॥

लक्षणे ७।१॥ जायापत्योः ७।२॥ टक् १।१॥ स०—जाया च पतिश्च जाया-पती, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ लक्षणमस्यास्तीति लक्षणः,तस्मिन् लक्षणे, अर्शआदिभ्योऽच् (५।२।१२७) इत्यनेन मतुबर्थेऽच् प्रत्ययः ॥ अर्थः—जाया पति इत्येतयोः कर्मोपपदयोः 'हन्' धातोः लक्षणवति कर्त्तरि वाच्ये टक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जायाघ्नो वृषलः । पतिघ्नी वृषली ॥

भाषार्थः—[जायापत्योः] जाया तथा पति कर्म उपपद हों, तो [लक्षणे] लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय होने पर हन् धातु से [टक्] टक् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जायाघ्नो वृषलः (स्त्री को मारने के लक्षणवाला नीच पुरुष) । पतिघ्नी वृषली (पति को मारने के लक्षणवाली नीच स्त्री) ॥ उदाहरणों में गमहनजन० (६।४।९८)से हन् धातु की उपधा का लोप होकर, 'ह्' को हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु (७।३।५४) से 'घ्' होने पर 'पति घन् अ' बना । टित् होने से स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होकर पतिघ्नी बना है ॥

यहां से 'टक्' की अनुवृत्ति ३।२।५४ तक जायेगी ॥

अमनुष्यकर्तृके च ॥३।२।५३॥

अमनुष्यकर्त्तृके ७।१॥ च अ० ॥ स०—न मनुष्योऽमनुष्यः,नञ्तत्पुरुषः । अमनुष्यः कर्त्ता यस्य सोऽमनुष्यकर्त्तृकः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—टक्, हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मनुष्यभिन्नकर्त्तृके वर्त्तमानाद् हन् धातोः कर्मण्युपपदे टक् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—श्लेष्मघ्नं मधु; पित्तघ्नं घृतम् ॥

भाषार्थः—[अमनुष्यकर्त्तृके] मनुष्य से भिन्न कर्त्ता है जिसका, उस हन् धातु से [च] भी कर्म उपपद रहते टक् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—श्लेष्मघ्नं मधु (कफ को नष्ट करनेवाला मधु); पित्तघ्नं घृतम् । (पित्त को मारनेवाला घी) ॥ पूर्ववत् ही सिद्धि समझें ॥

शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥३।२।५४॥

शक्तौ ७।१॥ हस्तिकपाटयोः ७।२॥ स०—हस्ती च कपाटं च हस्तिकपाटे, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु—टक्, हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हस्ति कपाट इत्येतयोः कर्मोपपदयोर् हन्धातोः टक् प्रत्ययो भवति शक्तौ गम्यमानायाम् ॥ उदा०—हस्तिनं हन्तुं शक्नोति=हस्तिघ्नो मनुष्यः । कपाटं हन्तुं शक्नोति= कपाटघ्नश्चौरः ॥

भाषार्थः—[हस्तिकपाटयोः] हस्ति तथा कपाट कर्म उपपद रहते [शक्तौ] शक्ति गम्यमान हो,तो हन् धातु से टक् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र में अमनुष्य कर्त्ता अभिधेय होने पर प्रत्यय विधान था, यहाँ मनुष्य कर्त्ता अभिधेय होने पर भी प्रत्यय हो जाये इसलिये यह सूत्र है ॥ उदा०—हस्तिघ्नो मनुष्यः (हाथी को मार सकनेवाला मनुष्य) । कपाटघ्नश्चोरः (किवाड़ तोड़ने में समर्थ चोर) ॥

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥३।२।५५॥

पाणिघताडघौ १।२॥ शिल्पिनि ७।१॥ स०—पाणि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—हनः, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पाणि ताड इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः हन्धातोः कः प्रत्ययः, तस्मिश्च परतो हन्धातोष्टिलोपो घत्वं च निपात्यते, शिल्पिनि कर्त्तरि वाच्ये ॥ उदा०—पाणिघः । ताडघः ॥

भाषार्थः—[पाणिघताडघौ] पाणिघ ताडघ शब्दों में पाणि तथा ताड कर्म उपपद रहते हन् धातु से क प्रत्यय, तथा हन् धातु के टि अर्थात् अन् भाग का लोप, एवं 'ह्' को 'घ्' निपातन किया जाता है, [शिल्पिनि] शिल्पि कर्त्ता वाच्य हो तो ॥ उदा०—पाणिघः(मृदङ्ग बजानेवाला) । ताडघः (शिल्पी) ॥

आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ
कृञः करणे ख्युन् ॥३।२।५६॥

आढ्यसुभग ······ प्रियेषु ७।३॥ च्व्यर्थेषु ७।३॥ अच्वौ ७।१॥ कृञः ५।१॥ करणे ७।१॥ ख्युन् १।१॥ स०—आढ्यश्च सुभगश्च स्थूलश्च पलितश्च नग्नश्च अन्धश्च प्रियश्च आढ्यसुभग······प्रियाः, तेषुः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । च्वेः अर्थः च्व्यर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः । च्व्यर्थ इव अर्थो येषां ते च्व्यर्थाः, तेषु, बहुव्रीहिः । न च्विः अच्विः, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आढ्य, सुभग, स्थूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु करणे कारके कृञ्धातोः ख्युन् प्रत्ययो भवति ॥ अभूततद्भावश्च्व्यर्थः ॥ उदा०—अनाढ्यम् आढ्यं कुर्वन्त्यनेन = आढ्यंकरणम् । सुभगंकरणम् । स्थूलंकरणम् । पलितंकरणम् । नग्नंकरणम् । अन्धंकरणम् । प्रियंकरणम् ॥

भाषार्थः—[आढ्य······ प्रियेषु] आढ्य सुभगादि [च्व्यर्थेषु] च्व्यर्थ में वर्त्तमान, किन्तु [अच्वौ] च्विप्रत्ययान्त न हों, ऐसे कर्म उपपद रहते [कृञः] कृञ् धातु से [करणे] करण कारक में [ख्युन्] ख्युन् प्रत्यय होता है ॥ च्वि का अर्थ अभूततद्भाव (जो नहीं था वह होना) है । सो यहाँ सर्वत्र अभूततद्भाव होने से कृभ्वस्तियोगे० (५।४।५०) से च्वि प्रत्यय प्राप्त था । अतः यहाँ कह दिया कि च्व्यर्थ =अभूततद्भाव अर्थ तो हो, पर च्वि प्रत्यय न आया हो, तब ख्युन् प्रत्यय हो ॥ उदा०—आढ्यंकरणम् (जो धनवान् नहीं उसको धनवान् बनाया जाता है जिसके द्वारा) । सुभगंकरणम् (जो कल्याणयुक्त नहीं उसको कल्याणयुक्त बनाया जाता है जिसके द्वारा) । स्थूलंकरणम् (जो स्थूल नहीं उसको स्थूल बनाया जाता है जिसके द्वारा) । पलितंकरणम् (जो बूढ़ा नहीं उसको बूढ़ा बनाया जाता है जिसके द्वारा) । नग्नंकरणम् (जो नग्न नहीं उसको नग्न बनाया जाता है जिसके द्वारा) । अन्धंकरणम् (जो अन्धा नहीं उसको अन्धा बनाया जाता है जिसके द्वारा) । प्रियंकरणम् (जो प्रिय नहीं उसको प्रिय बनाया जाता है जिसके द्वारा) ॥ सिद्धि में मुम् का आगम (६।३।६६) ही विशेष है ॥

यहाँ से 'आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ" की अनुवृत्ति ३।२।५७ तक जायेगी ॥

कर्त्तरि भुवः खिष्णुच्खुकञौ ॥३।२।५७॥

कर्त्तरि ७।१॥ भुवः ५।१॥ खिष्णुच्खुकञौ १।२॥ स०—खिष्णुच्० इत्येत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ, सुपि, धातोः,

प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—च्व्यर्थेष्वच्व्यन्तेषु आढ्यादिषु सुबन्तेषूपपदेषु भूधातो: कर्त्तरि कारके खिष्णुच्खुकञौ प्रत्ययौ भवत: ।। उदा०—अनाढ्य आढ्यो भवति=आढ्यंभविष्णु:, आढ्यंभावुक: । सुभगंभविष्णु:, सुभगंभावुक: । स्थूलंभविष्णु:,स्थूलंभावुक: । पलितंभविष्णु:, पलितंभावुक: । नग्नंभविष्णु:, नग्नंभावुक: । अन्धंभविष्णु:, अन्धंभावुक: । प्रियंभविष्णु:, प्रियंभावुक: ।।

भाषार्थ:—च्व्यर्थ में वर्त्तमान अच्व्यन्त आढ्यादि सुबन्त उपपद हों, तो [कर्त्तरि] कर्त्ता कारक में [भुव:] भू धातु से [खिष्णुच्खुकञौ] खिष्णुच् तथा खुकञ् प्रत्यय होते हैं ।। कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से सभी कृत् कर्त्ता में ही होते हैं । पुन: यहाँ 'कर्त्तरि' ग्रहण पूर्व सूत्र में जो 'करणे' कहा है, उसकी अनुवृत्ति आकर यहाँ भी करण में न होने लग जाये, इसलिए विस्पष्टार्थ है ।। खित् होने से सर्वत्र मुम् आगम, तथा खुकञ् के ञित् होने से भू धातु को वृद्धि हो जाती है । खिष्णुच् परे रहते गुण ही होता है । 'आढ्यंभविष्णु:' का अर्थ "जो आढ्य नहीं वह आढ्य होता है" ऐसा है । इसी प्रकार औरों में भी जानें ।।

स्पृशोऽनुदके क्विन् ।।३।२।५८।

स्पृश: ५।१।। अनुदके ७।१।। क्विन् १।१।। स०—अनुदक इत्यत्र नञ्तत्पुरुष: ।। अनु०—सुपि, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—अनुदके सुबन्त उपपदे स्पृश धातो: क्विन् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—मन्त्रेण स्पृशति=मन्त्रस्पृक् । जलेन स्पृशति=जलस्पृक् । घृतं स्पृशति=घृतस्पृक् ।।

भाषार्थ:—[अनुदके] उदक-भिन्न सुबन्त उपपद हो, तो [स्पृश:] स्पृश् धातु से [क्विन्] क्विन् प्रत्यय होता है ।। क्विन् में इकार उच्चारणार्थ है ।। उदा०-मन्त्रस्पृक् (मन्त्र बोलकर स्पर्श करनेवाला)। जलस्पृक् (जल के द्वारा स्पर्श करनेवाला)। घृतस्पृक् (घी को छूनेवाला)।। अनुबन्ध हटाकर क्विन् का 'व्' रहता है । उस वकार का भी वेरपृक्तस्य (६।१।६५) से लोप हो जाता है । हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सु का लोप हो ही जायेगा । क्विन्प्रत्ययस्य कु: (८।२।६२) से स्पृश् के श् को कुत्व होकर आन्तरतम्य से खकार होता है । झलां जशो० (८।२।३९) से गकार, तथा वावसाने (८।४।५५) से ककार होता है ।।

यहाँ से 'क्विन्' की अनुवृत्ति ३।२।६० तक जायेगी ।।

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च ।।३।२।५९।।

ऋत्विग्...क्रुञ्चाम् ६।३।। च अ० ।। स०—ऋत्विग्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व: ।।

अनु०—क्विन्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् इत्येते पञ्चशब्दाः क्विन्प्रत्ययान्ताः निपात्यन्ते। अञ्चु युजि क्रुञ्च धातुभ्यश्च क्विन् प्रत्ययो भवति ।। ऋतुशब्द उपपदे यजतेः क्विन् निपात्यते, ऋतौ यजति, ऋतु वा यजति, ऋतुप्रयुक्तो वा यजति=ऋत्विक् । धृषेः क्विन् प्रत्ययः, द्विर्वचनमन्तोदात्तत्वं च निपात्यते=दधृक् । सृज धातोः कर्मणि कारके क्विन् प्रत्ययोऽमागमश्च निपात्यते । 'सृ अम् ज् क्विन्' यणादेशं कृत्वा, सृजन्ति यां सा=स्रक् । दिशेः कर्मणि क्विन् निपात्यते । दिशन्ति यां सा=दिक् । उत्पूर्वात् स्निह्धातोः क्विन्, उपसर्गान्त्यलोपः षत्वञ्च निपात्यते । अत्र णत्वं तु रषाभ्यां० (८।४।१) इत्यनेन भवति=उष्णिक् । अञ्चु युजि क्रुञ्च इत्येतेभ्यः क्विन् भवति=प्राङ्, प्रत्यङ्, उदङ् । युनक्तीति=युङ् युञ्जौ, युञ्जः । क्रुङ्, क्रुञ्चौ, क्रुञ्चः ।।

भाषार्थः—[ऋत्विग्द ... क्रुञ्चाम्] ऋत्विक्, दधृक्, स्रक्, दिक्, उष्णिक् ये पाँच शब्द क्विन् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं, [च] तथा अञ्चु युजि क्रुञ्च धातुओं से भी क्विन् प्रत्यय होता है ।। ऋत्विक् शब्द में—ऋतु शब्द उपपद रहते यज धातु से क्विन् प्रत्यय निपातन से हुआ है । पीछे वचिस्वपियजादीनां किति(६।१। १५) से 'य' को सम्प्रसारण होकर 'ऋतु इज्' बना, और यणादेश होकर ऋत्विज् बना । पुनः सु विभक्ति परे रहते 'क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८।२।६२) से 'ज्' को 'ग्', और वाऽवसाने (८।४।५५) से ग् को क् होकर ऋत्विक् बना है । दधृक् (शत्रु को परास्त करनेवाला)—यहाँ धृष् धातु से क्विन्, तथा धृष् को द्वित्व और अन्तोदात्तत्व निपातन से किया है । द्वित्व करके अभ्यासकार्य उरत् (७।४।६६) आदि हो जायेगा । स्रक् (माला)—यहाँ सृज् धातु से कर्म कारक में क्विन् प्रत्यय, तथा अम् आगम निपातन किया है । मिदचोन्त्या०(१।१।४६) से अम् आगम अन्त्य अच् से परे होकर 'सृ अम् ज् क्विन्' बना । यणादेश तथा क्विन् का सर्वापहारी लोप होकर 'स्रज्' बना । पूर्ववत् क्विन्प्रत्ययस्य कुः और वाऽवसाने लगकर स्रक् बना है । दिक् (दिशा)—यहाँ दिश् धातु से कर्म कारक में क्विन् प्रत्यय निपातन है । पूर्ववत् ही कुत्वादि यहाँ भी जानें । उष्णिक् (छन्दविशेष)—यहाँ उत् पूर्वक स्निह धातु से क्विन् प्रत्यय उपसर्ग के अन्तिम वर्ण का लोप, तथा षत्व निपातन किया जाता है । षत्व किये पीछे रषाभ्यां० (८।४।१) से णत्व भी हो जायेगा । यहाँ भी क्विन्प्र० (८।२।६२) से हकार के स्थान में अन्तरतम घकार हुआ, तथा पूर्ववत् जश्त्व एवं चर्त्व होकर ककार हुआ । अञ्चु युज् क्रुञ्च् धातुओं से भी क्विन् प्रत्यय इस सूत्र से कहा है, सो उनकी सिद्धियाँ परिशिष्ट में ही देखें ।।

त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च ।।३।२।६०।।

त्यदादिषु ७।३।। दृशः ५।१।। अनालोचने ७।१।। कञ् १।१।। च अ० ।। स०-

त्यद् आदिर्येषां ते त्यदादयः, तेषु, बहुव्रीहिः । न आलोचनम् अनालोचनं, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—क्विन्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—त्यदादिषु सुबन्तेषूपपदेष्वनालोचनेऽर्थे वर्त्तमानाद् दृशधातोः कञ् प्रत्ययो भवति, चकारात् क्विन् च ॥ उदा०—त्यादृक, त्यादृशः । तादृक्, तादृशः । यादृक्, यादृशः ॥

भाषार्थः—[त्यदादिषु] त्यदादि शब्द उपपद रहते [अनालोचने] अनालोचन =न देखना अर्थ में वर्त्तमान [दृशः] दृश् धातु से [कञ्] कञ् प्रत्यय होता है, [च] तथा चकार से क्विन् भी होता है ॥ उदा०—त्यादृक् (उस जैसा), त्यादृशः । तादृक् (वैसा), तादृशः । यादृक् (जैसा), यादृशः ॥ आ सर्वनाम्नः (६।३।८९) से दृश् परे रहते त्यद् इत्यादि सर्वनाम शब्दों के अन्त्य (१।१।५१) अल् को आत्व हो गया है । क्विन् पक्ष में क्विन्प्रत्ययस्य कुः (८।२।६२) से कुत्वादि होकर त्यादृक् बना । कञ् पक्ष में त्यादृश् कञ् =त्यादृश् अ =त्यादृशः बन गया है ॥

सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप् ॥३।२।६१॥

सत्सूद्विष···राजाम् ६।३॥ उपसर्गे ७।१॥ अपि अ० ॥ क्विप् १।१॥ स०—सत्सू० इत्येत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सद्, सू, द्विष, द्रुह, दुह, युज, विद, भिद, छिद, जि, णीञ्, राज् इत्येतेभ्यः सोपसर्गेभ्यो निरुपसर्गेभ्योऽपि धातुभ्यः सुबन्त उपपदे क्विप् प्रत्ययो भवति ॥ 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' इति अदादिकस्यात्र ग्रहणं, न तु सुवतेस्तौदादिकस्य । 'युजिर् योगे, युज समाधौ' द्वयोरपि ग्रहणम्, एवं 'विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद विचारणे' त्रयाणां ग्रहणम्, न तु विद्लृ लाभे इत्यस्य ॥ उदा०—सद् वेद्यां सीदति=वेदिषत्, शुचिषत्, अन्तरिक्षे सीदति=अन्तरिक्षसत् । प्रसत् । सू—वत्सं सूते=वत्ससूः गौः, अण्डसूः, शतसूः । प्रसूः । द्विष—मित्रं द्वेष्टि =मित्रद्विट् । प्रद्विट् । द्रुह—मित्रध्रुक् । प्रध्रुक् । दुह—गोधुक् । प्रधुक् । युज—अश्वयुक् । प्रयुक् । विद—वेदान् वेत्ति=वेदवित्, ब्रह्मवित् । प्रवित् । भिद्—काष्ठं भिनत्ति=काष्ठभित् । प्रभित् । छिद्—रज्जुच्छिद् । प्रच्छिद् । जि—शत्रून् जयति=शत्रुजित् । प्रजित् । णी—सेनां नयति= सेनानीः, अग्रणीः, ग्रामणीः । प्रणीः । राज्—विश्वं राजयति=विश्वराट् । विराट्, सम्राट् ॥

भाषार्थः—[सत्सू···राजाम्] सद्, सू, द्विष इत्यादि धातुओं से [उपसर्गे] सोपसर्ग हों तो [अपि] भी तथा निरुपसर्ग हों तो भी सुबन्त उपपद रहते [क्विप्] क्विप् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'उपसर्गेऽपि' की अनुवृत्ति ३।२।७७ तक जायेगी ॥

भजो ण्विः ॥३।२।६२॥

भजः ५।१॥ ण्विः १।१॥ अनु०——उपसर्गेऽपि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः——भज्धातोः सुबन्त उपपदे उपसर्गेप्यनुपसर्गेऽप्युपपदे ण्विः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०——अर्धं भजते=अर्धभाक् । प्रभाक् ॥

भाषार्थः—[भजः]भज धातु से सुबन्त उपपद रहते सोपसर्ग हो या निरुपसर्ग, तो भी [ण्विः] ण्वि प्रत्यय होता है ॥ अर्धभाक् की सिद्धि परि० १।२।४१ में देखें ॥

यहाँ से 'ण्विः' की अनुवृत्ति ३।२।६४ तक जायेगी ॥

छन्दसि सहः ॥३।२।६३॥

छन्दसि ७।१॥ सहः ५।१॥ अनु०——ण्विः, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः——छन्दसि विषये सुबन्त उपपदे सह धातोर्ण्विः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—तुराषाट् (ऋक्० ३।४८।४) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में सुबन्त उपपद रहते [सहः] सह धातु से ण्वि प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि में अन्येषामपि० (६।३।१३५) से तुर को दीर्घ होकर तुरा बना । सहेः साडः सः (८।३।५६) से सह के 'स' को षत्व होता है । हो ढः (८।२।३१) से 'ह' को 'ढ', झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से ढ् को ड्, तथा वावसाने (८।४।५५) से चर्त्व होकर, तुराषाट् बना है, शेष पूर्ववत् है ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।६७ तक जायेगी ॥

वहश्च ॥३।२।६४॥

वहः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०——छन्दसि, ण्विः, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वेदविषये सुबन्त उपपदे वह धातोर्ण्विः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रष्ठं वहति= प्रष्ठवाट् । दित्यवाट् (यजु० १४।१०) ॥

भाषार्थः—[वहः] वह धातु से [च] भी वेदविषय में सुबन्त उपपद रहते ण्वि प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'वहः' की अनुवृत्ति ३।२।६६ तक जायेगी ॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् ॥३।२।६५॥

कव्यपुरीषपुरीष्येषु ७।३॥ ञ्युट् १।१॥ स०—कव्य० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—वहः, छन्दसि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कव्य, पुरीष, पुरीष्य इत्येतेषु सुबन्तेषूपपदेषु छन्दसि विषये वहधातोर्ञ्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कव्यवाहनः (यजुः १९।६५) । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥

भाषार्थः—[कव्यपुरीषपुरीष्येषु]कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये सुबन्त उपपद हों, तो वेदविषय में वह धातु से [ञ्युट्] ञ्युट् प्रत्यय होता है ॥ ञकार अनुबन्ध वृद्धि के लिये है। युवोरनाकौ (७।१।१) से यु को 'अन' हो गया है ॥

यहाँ से 'ञ्युट्' की अनुवृत्ति ३।२।६६ तक जायेगी ॥

हव्येऽनन्तःपादम् ॥३।२।६६॥

हव्ये ७।१॥ अनन्तःपादम् १।१॥ स०—अन्तः मध्ये पादस्येति अन्तःपादम्, अव्ययं विभक्ति०(२।१।६) इत्यनेन अव्ययीभावसमासः। न अन्तःपादम् अनन्तःपादम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—वहः, छन्दसि, ञ्युट्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हव्यसुबन्त उपपदे छन्दसि विषयेऽनन्तःपादं वर्त्तमानात् वहधातोर्ञ्युट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दूतश्च हव्यवाहनः (ऋक्० ६।१६।२३) ॥

भाषार्थः—[हव्ये] हव्य सुबन्त उपपद रहते वेदविषय में वह धातु से ञ्युट् प्रत्यय होता है, यदि 'वह' धातु [अनन्तःपादम्] पाद के अन्तर अर्थात् मध्य में वर्तमान न हो तो ॥ यहाँ पाद शब्द से ऋचा का पाद अभिप्रेत है। उदाहरण में वह धातु ऋचा के पाद के अन्त में है, मध्य में नहीं। सो ञ्युट् प्रत्यय हो गया है। पाद के मध्य में 'वह' धातु होती है, तो वहश्च (६।२।६४) से ण्वि प्रत्यय ही होता है ॥

जनसनखनक्रमगमो विट् ॥३।२।६७॥

जनसनखनक्रमगमः ५।१॥ विट् १।१॥ स०—जनश्च सनश्च खनश्च क्रमश्च गम् च जन…गम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जन, सन, खन, क्रम, गम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः सुबन्त उपपदे छन्दसि विषये विट्प्रत्ययो भवति ॥ जन जनने, जनी प्रादुर्भावे द्वयोरपि ग्रहणम्, एवं षणु दाने षण सम्भक्तौ द्वयोरपि ग्रहणम् ॥ उदा०—अप्सु जायते=अब्जाः; उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश(यजु० ३२।११); गोषु जायते=गोजाः। सन—गा (इन्द्रियाणि)सनोति=गोषाः; इन्द्रो नृषा असि; नॄन् सनोतीति नृषाः। खन—बिसखाः, कूपखाः। क्रमः—दधिक्राः (ऋक्० ४।३८।६)। गम—अग्रेगाः (यजु० २७।३१) ॥

भाषार्थः—[जनसनखनक्रमगमः]जन, सन, खन, क्रम, गम इन धातुओं से सुबन्त उपपद रहते वेदविषय में [विट्] विट् प्रत्यय होता है ॥ विड्वनोरनु० (६।४।४१)से अनुनासिक नकार मकार को आत्व सर्वत्र हो जाता है। विट् प्रत्यय के व्

का भी वेरपृक्तस्य (६।१।६५) लगकर सर्वापहारी लोप हो जाता है। 'अप् ज आ सु' यहाँ झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से 'प्' को 'ब्' होकर, तथा सवर्ण दीर्घ होकर पूर्ववत अब्जाः बना है। प्रथमजाम् द्वितीयान्त पद है। सनोतेरनः (८।३।१०८) से गोषाः में सन धातु को षत्व हो गया है, शेष सब पूर्ववत् ही समझें॥

यहाँ से 'विट्' की अनुवृत्ति ३।२।६९ तक जायेगी॥

अदोऽनन्ने ॥३।२।६८॥

अदः ५।१॥ अनन्ने ७।१॥ स०—न अन्नम् अनन्नम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः॥ अनु०—विट्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अद धातोरनन्ने सुबन्त उपपदे विट् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—आमम् अत्ति=आमात्। सस्यम् अत्ति=सस्यात्॥

भाषार्थः—[अनन्ने] अनन्न सुबन्त उपपद रहते [अदः] अद धातु से विट् प्रत्यय होता है॥ उदा०—आमात् (कच्चा खानेवाला)। सस्यात् (पौधे को खानेवाला)॥

यहाँ से 'अदः' की अनुवृत्ति ३।२।६९ तक जायेगी॥

क्रव्ये च ॥३।२।६९॥

क्रव्ये ७।१॥ च अ०॥ अनु०—अदः, विट्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—क्रव्ये सुबन्त उपपदे अदधातोर्विट् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—क्रव्यम् अत्ति= क्रव्यात्॥

भाषार्थः—[क्रव्ये] क्रव्य सुबन्त उपपद रहते [च] भी अद धातु से विट् प्रत्यय होता है॥ उदा०—क्रव्यात् (मांस खानेवाला, राक्षस)॥

दुहः कब् घश्च ॥३।२।७०॥

दुहः ५।१॥ कप् १।१॥ घः १।१॥ च अ०॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—दुहेर्धातोः सुबन्त उपपदे कप् प्रत्ययो भवति घकारश्चान्तादेशो भवति॥ उदा०—कामदुघा धेनुः। घर्मदुघा॥

भाषार्थः—[दुहः] दुह धातु से सुबन्त उपपद रहते [कप्] कप् प्रत्यय होता है, [च] तथा अन्त्य हकार को (१।१।५१) [घः] घकारादेश होता है॥ उदा०—कामदुघा धेनुः (इच्छा पूर्ण करनेवाली गौ)। घर्मदुघा (घर्म को ग्रहण करनेवाली)॥ स्त्रीलिङ्ग में टाप् (४।१।४) हो गया है॥

मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन् ॥३।२।७१॥

मन्त्रे ७।१॥ श्वेतवहो डाशः ५।१॥ ण्विन् १।१॥ स०—श्वेतवाश्च उक्थ-

शाश्च पुरोडाश्च श्वेत ··डाश्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—श्वेतवह्, उक्थशस्, पुरोडाश् इत्येते शब्दाः ण्विनप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मन्त्रे = वैदिके प्रयोगे ॥ श्वेतशब्दे कर्तृवाचिन्युपपदे वहेर्धातोः कर्मणि कारके ण्विन् प्रत्ययो भवति । श्वेता एनं वहन्ति = श्वेतवा इन्द्रः । उक्थशस् —इत्यत्र उक्थशब्दे कर्मणि करणे वा कारके उपपदे शंसुधातोर्ण्विन् प्रत्ययो भवति नलोपश्च निपात्यते । उक्थानि शंसति, उक्तथैर्वा शंसति = उक्थशाः । पुरोडाश्—इत्यत्र पुरः पूर्वस्य 'दाश् दाने' धातोः कर्मणि ण्विन् प्रत्ययो धातोरादेः दकारस्य च डत्वं निपात्यते । पुरो दाशन्त एनम् = पुरोडाः ॥

भाषार्थः—[मन्त्रे] वैदिक प्रयोग विषय में [श्वेत···शः] श्वेतवह् उक्थशस् पुरोडाश् ये शब्द [ण्विन्] ण्विनप्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं ॥ कर्त्तृवाची श्वेत शब्द उपपद रहते वह धातु से कर्मकारक में ण्विन् प्रत्यय श्वेतवह् शब्द में हुआ है । पीछे श्वेतवहादीनां डस् पदस्य च (भा० वा० ३।२।७१) इस महाभाष्य वार्तिक से ण्विन् के स्थान में डस् आदेश होकर श्वेतवह् डस् रहा । डित्यभस्यापि टेर्लोपः इस वार्त्तिक से टि भाग का लोप होकर 'श्वेतव् अस् = श्वेतवस् सु' रहा । अत्वसन्तस्य चाधातोः (६।४।१४) से दीर्घ होकर श्वेतवास् स् रहा । हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सु का लोप, एवं रुत्व विसर्जनीय होकर श्वेतवाः बना । उक्थशस् शब्द में कर्म या करण-वाची उक्थ शब्द उपपद हो, तो शंसु धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है, तथा शंसु के नकार का लोप भी यहाँ निपातन से ही होता है । शेष सिद्धि डस् आदेश होकर पूर्ववत् हो जानें । पुरोडाश् शब्द में भी पुरस् उपपद रहते दाशृ धातु से कर्मकारक में ण्विन प्रत्यय, तथा धातु के आदि दकार को डत्व निपातन है । शेष सिद्धि डस् आदेश होकर पूर्ववत् ही है ॥

यहाँ से 'मन्त्रे ण्विन्' की अनुवृत्ति ३।२।७२ तक जायेगी ॥

ण्विन्

अवे यजः ॥३।२।७२॥

अवे ७।१॥ यजः ५।१॥ अनु०—मन्त्रे, ण्विन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अव उपपदे यजधातोर्मन्त्रविषये ण्विन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—त्वं यज्ञे वरुणस्यावया असि ॥

भाषार्थः—[अवे] अव उपपद रहते [यजः] यज धातु से ण्विन् प्रत्यय होता है मन्त्रविषय में ॥ ण्विन् को डस् आदेश होकर पूर्ववत् ही सूत्र लगकर सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'यजः' की अनुवृत्ति ३।२।७३ तक जायेगी ॥

विजुपे छन्दसि ॥३।२।७३॥

विच् १।१॥ उपे ७।१॥ छन्दसि ७।१॥ **अनु०**—यजः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—उप उपपदे यजधातोः छन्दसि विषये विच् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—उपयड्भीरूर्ध्वं वहन्ति । उपयड्भ्यः (श० ३।८।३।१८) ॥

भाषार्थः—[उपे] उप उपपद रहते यज धातु से [छन्दसि] वेदविषय में [विच्] विच् प्रत्यय होता है ॥ विच् का सर्वापहारी लोप हो जाता है । व्रश्चभ्रस्ज०(८।२।३६) से यज् के ज् को ष्, तथा झलां जशोऽन्ते (८।२।३९) से ष् को ड् हो गया है ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।७४ तक, तथा 'विच्' की अनुवृत्ति ३।२।७५ तक जायेगी ॥

आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च ॥३।२।७४॥

आतः ५।१॥ मनिन्क्वनिब्वनिपः १।३॥ च अ० ॥ स०—मनिन्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—छन्दसि, विच्, सुपि, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ **अर्थः**—आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः सुबन्त उपपदे छन्दसि विषये मनिन् क्वनिप् वनिप् चकारात् विच् च प्रत्यया भवन्ति ॥ **उदा०**—शोभनं ददातीति=सुदामा, सुधामा । क्वनिप्—सुधीवा, सुपीवा । वनिप्—भूरिदावा, घृतपावा । विच्—कीलालं पिबति=कीलालपाः, शुभंयाः ॥

भाषार्थः—[आतः] आकारान्त धातुओं से सुबन्त उपपद रहते वेदविषय में [मनि ... पः] मनिन् क्वनिप् वनिप्, [च] तथा विच् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—सुदामा (अच्छा देनेवाला), सुधामा (अच्छा धारण करनेवाला) । क्वनिप्—सुधीवा, सुपीवा (अच्छा पान करनेवाला) । वनिप्—भूरिदावा (बहुत देनेवाला), घृतपावा (घृत पीनेवाला) । विच्—कीलालपाः (खून पीनेवाला=राक्षस) । शुभंयाः (कल्याण को प्राप्त होनेवाला) ॥ सुदामन् सु बनकर सर्वनामस्थाने०(६।४।८) से दीर्घ, तथा नलोपः० (८।२।७) से नकारलोप, हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सु लोपादि सब होकर सुदामा बनेगा । इसी प्रकार सब में समझें । सुधीवा सुपीवा में क्वनिप् के कित् होने से घुमास्थागा० (६।४।६६) से ईत्व हो गया है । कीलालपाः आदि में विच् का पूर्ववत् सर्वापहारी लोप होकर 'सु' को रुत्व विसर्जनीय हो गया है ॥

यहाँ से 'मनिन्क्वनिब्वनिपः' की अनुवृत्ति ३।२।७५ तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥३।२।७५॥

अन्येभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यन्ते क्रियापदम् ॥ **अनु०**—मनिन्क्वनिब्वनिपः, विच्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यो मनिन् क्वनिप्

वनिप् विच् इत्येते प्रत्ययाः दृश्यन्ते ।। उदा०—सुशर्मा । क्वनिप्—प्रातरित्वा । वनिप् —विजावा, प्रजावा, अग्रेगावा । विच्—रेडसि पर्णं नयेः ।।

भाषार्थः—[अन्येभ्यः] आकारान्त धातुओं से जो अन्य धातुएँ उनसे [अपि] भी मनिन्, क्वनिप्, वनिप् तथा विच् ये प्रत्यय [दृश्यन्ते] देखे जाते हैं ।। पूर्व सूत्र से आकारान्त धातुओं से ही ये प्रत्यय प्राप्त थे, यहाँ अन्यों से भी देखे जाते हैं, ऐसा कह दिया । 'दृश्यन्ते' इस क्रियापद से यहाँ यह जाना जाता है कि प्राचीन शिष्ट ऋषि मुनिकृत ग्रन्थों में यदि उक्त प्रत्ययान्त शब्द दीखें, तो उन्हें साधु अर्थात् शुद्ध समझना ।।

क्विप् च ।।३।२।७६।।

क्विप् १।१।। च अ० ।। **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—सर्वेभ्यो धातुभ्यः सोपपदेभ्यो निरुपपदेभ्यश्च क्विप् प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—उखायाः स्रंसते=उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहाद् भ्रश्यति=वाहाभ्रट्, अन्येषामपि०(६।३।१३६) इति दीर्घः ।।

भाषार्थः—सब धातुओं से सोपपद हों चाहे निरुपपद [क्विप्] क्विप् प्रत्यय [च] भी होता है ।।

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।७७ तक जायेगी ।।

स्थः क च ।।३।२।७७।।

स्थः ५।१।। क लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ।। च अ० ।। **अनु०**—क्विप्, सुपि, उपसर्गेऽपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—सुपि उपपदे स्थाधातोः सोपसर्गात् निरुपसर्गाच्च कः प्रत्ययो भवति, चकारात् क्विप् च ।। **उदा०**—शंस्थः, शंस्थाः ।।

भाषार्थः—सुबन्त उपपद रहते सोपसर्ग या निरुपसर्ग [स्थः] स्था धातु से [क] क [च] तथा क्विप् प्रत्यय होता है ।। शम् अव्यय उपपद रहते स्था धातु से क प्रत्यय करने पर आतो लोप० (६।४।६४) से आकार का लोप होकर शंस्थः (कल्याणवाला) बना । क्विप् पक्ष में—शंस्था। बनेगा।।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ।।३।२।७८।।

सुपि ७।१।। अजातौ ७:१।। णिनिः १।१।। ताच्छील्ये ७।१।। **स०**—न जातिरजातिः, तस्याम्, नञ्तत्पुरुषः । तत् शीलं यस्य तत् तच्छीलं, बहुव्रीहिः । तच्छीलस्य भावः ताच्छील्यं, तस्मिन् ।। **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**–अजातिवाचिनि सुबन्त उपपदे ताच्छील्ये गम्यमाने धातुमात्रात् णिनिः प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—उष्णं भोक्तुं शीलमस्य=उष्णभोजी । शीतभोजी । प्रियवादी । धर्मोपदेशी ।।

भाषार्थः—[अजातौ] अजातिवाची [सुपि] सुबन्त उपपद हो, तो [ताच्छील्ये] ताच्छील्य=ऐसा उसका स्वभाव है, गम्यमान होने पर सब धातुओं से णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा० — उष्णभोजी (गरम-गरम खाने के स्वभाववाला)। शीतभोजी। प्रियवादी (जिसका स्वभाव ही प्रिय बोलने का हो)। धर्मोपदेशी (धर्म का उपदेश करने का जिसका स्वभाव हो) ॥ णिनि में णित्करण वृद्धि के लिये है। उष्ण भुज् णिनि=उष्ण भुज् इन् सु, ऐसी अवस्था में गुण, तथा सौ च (६।४।१३) से दीर्घ होकर 'उष्णभोजीन् सु' बन गया। शेष नकारलोप, तथा हल्ङ्यादि लोप पूर्व के समान ही होकर उष्णभोजी बन गया। इसी प्रकार सब में समझें ॥

यहाँ से 'णिनिः' की अनुवृत्ति ३।२।८६ तक जायेगी ॥

कर्त्तर्युपमाने ॥३।२।७६॥

कर्त्तरि ७।१॥ उपमाने ७।१॥ अनु०—णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपमानवाचिनि कर्त्तर्युपपदे धातुमात्रात् णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उष्ट्र इव क्रोशति=उष्ट्रक्रोशी, ध्वाङ्क्ष इव रौति=ध्वाङ्क्षरावी ॥

भाषार्थः—[उपमाने] उपमानवाची [कर्त्तरि] कर्त्ता उपपद हो, तो धातुमात्र से णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उष्ट्रक्रोशी (ऊंट के समान आवाज करनेवाला), ध्वाङ्क्षरावी (कौवे के समान आवाज करनेवाला) ॥ उदाहरणों में उष्ट्र इत्यादि उपमानवाची कर्त्ता उपपद हैं। सो क्रुश आदि धातुओं से णिनि प्रत्यय हो गया है ॥

व्रते ॥३।२।८०॥

व्रते ७।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—व्रते गम्यमाने सुबन्त उपपदे धातुमात्रात् णिनि प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्थण्डिले शयितुं व्रतमस्य=स्थण्डिलशायी, अश्राद्धभोजी ॥

भाषार्थः—[व्रते] व्रत गम्यमान हो, तो सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—स्थण्डिलशायी (चबूतरे पर सोने का व्रत जिसका है); अश्राद्धभोजी (श्राद्ध को न खाने का व्रत जिसका है) ॥ अचो ञ्णिति (७।२।११५) से शीङ् धातु को वृद्धि तथा आयादेश हुआ है, शेष सिद्धि पूर्ववत् है ॥

बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥३।२।८१॥

बहुलम् १।१॥ आभीक्ष्ण्ये ७।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आभीक्ष्ण्यं=पौनःपुन्यं, तस्मिन् गम्यमाने धातोर्बहुलं णिनि प्रत्ययो

भवति ॥ उदा०—कषायपायिणो गान्धाराः । क्षीरपायिण उशीनराः । सौवीरपायिणो बाह्लीकाः । बहुलग्रहणात् 'कुल्माषखादः' अत्र णिनिर्न भवति ॥

भाषार्थः—[आभीक्ष्ण्ये] आभीक्ष्ण्य अर्थात् पौनःपुन्य गम्यमान हो, तो धातु से [बहुलम्] बहुल करके णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कषायपायिणो गान्धाराः (बार-बार एक विशेष रस को पीनेवाले गान्धार) । क्षीरपायिण उशीनराः (बार-बार दूध पीनेवाले उशीनर लोग) । सौवीरपायिणो बाह्लीकाः (काँजी विशेष के पीनेवाले बाह्लीक लोग) । बहुल ग्रहण करने से—कुल्माषखादः (उबले हुये अन्न को खानेवाला) यहाँ णिनि नहीं होता ॥

मनः ॥३।२।८२॥

मनः ५।१॥ अनु०—सुपि, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सुबन्त उपपदे मन्धातोः णिनि प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दर्शनीयं मन्यते=दर्शनीयमानी, शोभनमानी, सुरूपमानी ॥

भाषार्थः—सुबन्त उपपद रहते [मनः] मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है ॥ मन धातु यहाँ दिवादिगण की ली गई है, तनादि की 'मनु' नहीं ॥ उदा०—दर्शनीयमानी (देखने योग्य माननेवाला), शोभनमानी (शोभन माननेवाला), सुरूपमानी (सुरूप माननेवाला) ॥

यहाँ से 'मनः' की अनुवृत्ति ३.२.८३ तक जायेगी ॥

आत्ममाने खश्च ॥३।२।८३॥

आत्ममाने ७।१॥ खश् १।१॥ च अ० ॥ स०—आत्मनः=स्वस्य मानः आत्ममानः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—मनः, णिनिः, सुपि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आत्ममानेऽर्थे वर्त्तमानात् मन्यतेर्धातोः सुबन्त उपपदे खश् प्रत्ययो भवति, चकारात् णिनिश्च ॥ उदा०—आत्मानं पण्डितं मन्यते=पण्डितंमन्यः पण्डितमानी । दर्शनीयंमन्यः, दर्शनीयमानी ॥

भाषार्थः—[आत्ममाने] 'अपने आप को मानना' इस अर्थ में वर्तमान मन धातु से [खश्] खश् प्रत्यय होता है, [च] चकार से णिनि भी होता है ॥ उदा०—पण्डितंमन्यः (अपने आप को पण्डित माननेवाला), पण्डितमानी । दर्शनीयंमन्यः (अपने आपको दर्शनीय माननेवाला), दर्शनीयमानी ॥ खश् पक्ष में शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा को मानकर दिवादिभ्यः श्यन् (३।१।६९) से श्यन् विकरण भी होगा, तथा मुम् आगम भी खित् होने से अरुर्द्विष० (६।३।६६) से होगा । सो 'पण्डित

मम् मन् श्यन् खश्' बना, अनुबन्ध लोप होकर 'पण्डितंमन्य अ सु, रहा। पूर्ववत् सब होकर पण्डितंमन्यः बना ॥

भूते ॥३।२।८४॥

भूते ७।१॥ अर्थः—वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३) इत्यतः पूर्वं एवं ये प्रत्ययाः विधीयन्ते ते भूते काले भवन्ति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ अग्रे उदाहरिष्यामः ॥

भावार्थः—यहाँ से आगे ३।२।१२३ तक [भूते] भूते का अधिकार जाता है। अर्थात् वहाँ तक जितने प्रत्यय विधान करेंगे, वे सब भूतकाल में होंगे, ऐसा जानना चाहिये ॥

करणे यजः ॥३।२।८५॥

करणे ७।१॥ यजः ५।१॥ अनु०—भूते, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—करणे कारके उपपदे यजधातोर्णिनि प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—अग्निष्टोमेन इष्टवान्=अग्निष्टोमयाजी ॥

भाषार्थः—[करणे] करण कारक उपपद होने पर [यजः] यज धातु से णिनि प्रत्यय भूतकाल में होता है ॥ उदा०—अग्निष्टोमयाजी (अग्निष्टोम के द्वारा यज्ञ किया) ॥ सिद्धि पूर्ववत् ही है ॥

कर्मणि हनः ॥३।२।८६॥

कर्मणि ७।१॥ हनः ५।१॥ अनु०—भूते, णिनिः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मणि कारक उपपदे हन्धातोर्णिनि प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—पितृव्यं हतवान्=पितृव्यघाती, मातुलघाती ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [हनः] हन् धातु से णिनि प्रत्यय भूतकाल में होता है ॥ उदा०—पितृव्यघाती (जिसने चाचा को मारा); मातुलघाती (जिसने मामा को मारा) ॥ सिद्धि के लिये परि० ३।२।५१ देखें ॥

यहाँ से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।२।८८ तक, तथा 'कर्मणि' की अनुवृत्ति ३।२।९५ तक जायेगी ॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप् ॥३।२।८७॥

ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु ७।३॥ क्विप् १।१॥ स०—ब्रह्म० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, हनः, भूते, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र इत्येतेष्वेव कर्मसूपपदेषु हन्धातोः भूतेकाले क्विबेव प्रत्ययो भवति। नियमार्थोऽयमारम्भः ॥ उदा०—ब्रह्महा। भ्रूणहा। वृत्रहा ॥

भाषार्थः—[ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु] ब्रह्म, भ्रूण, वृत्र ये ही कर्म उपपद रहते हन् धातु से भूतकाल में [क्विप्] क्विप् प्रत्यय होता है। यह सूत्र नियमार्थ है। इससे दो प्रकार का नियम निकलता है—धातु नियम और काल नियम, जो कि अर्थ में प्रदर्शित कर ही दिया है॥ उदा०—ब्रह्महा (ब्राह्मण को मारनेवाला)। भ्रूणहा (गर्भ को गिरानेवाला)। वृत्रहा (वृत्र को मारनेवाला)॥ सिद्धि में 'ब्रह्मन् हन् क्विप्' =ब्रह्म हन् सु, पूर्ववत् ही होकर, सौ च (६।४।१३) से दीर्घ, तथा नलोपः० (८।२।७) से न लोप,एवं अन्य कार्य पूर्ववत् ही जानें॥

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।६२ तक जायेगी॥

बहुलं छन्दसि ॥३।२।८८॥

बहुलम् १।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, हनः, भूते, धातोः, प्रत्ययः,परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये कर्मण्युपपदे हन्धातोः भूते काले क्विप् प्रत्ययो बहुलं भवति ॥ उदा०—मातृहा सप्तमं नरकं प्रविशेत्, पितृहा। न च भवति—मातृघातः, पितृघातः॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में कर्म उपपद रहते भूतकाल में हन् धातु से[बहुलम्]बहुल करके क्विप् प्रत्यय होता है॥ पितृघातः में कर्मण्यण्(३।२।१)से अण् प्रत्यय होता है। सिद्धि में परि० ३।२।५१ के समान ही हन् के 'ह्' को 'घ्', तथा 'न्' को 'त्' इत्यादि जानें। पितृघात् अण्=पितृघातः बना॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥३।२।८९॥

सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु ७।३॥ कृञः ५।१॥ स०—सुश्च कर्म च पापञ्च मन्त्रश्च पुण्यञ्च सु···पुण्यानि, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु कृञ् धातोः भूतेकाले क्विप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सुष्ठु कृतवान्=सुकृत्। कर्मकृत्। पापकृत्। मन्त्रकृत्। पुण्यकृत्॥

भाषार्थः—[सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु] सु, कर्म, पाप, मन्त्र, पुण्य ये कर्म उपपद हों, तो [कृञः] कृञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय होता है॥ यहाँ काल-उपपद-प्रत्यय नियम समझने चाहियें॥ सर्वत्र ह्रस्वस्य पिति० (६।१।६९) से तुक् आगम हुआ है॥ उदा०—सुकृत् (अच्छा करनेवाला)। कर्मकृत् (कर्म करनेवाला)। पाप-

कृत् (पाप करनेवाला)। मन्त्रकृत् (मन्त्रद्रष्टा)। पुण्यकृत् (पुण्य करनेवाला)॥ परि० १।१।६१ की तरह सिद्धि समझें॥

सोमे सुञः ॥३।२।९०॥

सोमे ७।१॥ सुञः ५।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सोमे कर्मण्युपपदे 'षुञ् अभिषवे' इत्यस्माद् धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—सोमसुत्, सोमसुतौ॥

भाषार्थः—[सोमे] सोम कर्म उपपद रहते [सुञः] षुञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय होता है॥ यहां धातु काल-उपपद-प्रत्यय नियम है॥ सिद्धि परि० १।१।६१ में देखें॥

अग्नौ चेः ॥३।२।९१॥

अग्नौ ७।१॥ चेः ५।१॥ अनु०—क्विप्, कर्मणि, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अग्नौ कर्मण्युपपदे चिञ्धातोः क्विप् प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—अग्निम् अचैषीत्=अग्निचित्, अग्निचितौ॥

भाषार्थः—[अग्नौ] अग्नि कर्म उपपद रहते [चेः] चिञ् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय होता है॥ यहाँ भी पूर्वसूत्र के समान चारों नियम हैं॥ सिद्धि परि० १।१।६१ में देखें॥

यहाँ से 'चेः' की अनुवृत्ति ३।२।९२ तक जायेगी॥

कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥३।२।९२॥

कर्मणि ७।१॥ अग्न्याख्यायाम् ७।१॥ स०—अग्नेराख्या अग्न्याख्या, तस्याम्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—चेः, क्विप्, कर्मणि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे चिञ्धातोः कर्मणि कारके क्विप् प्रत्ययो भवति अग्न्याख्यायाम्॥ उदा०—श्येन इव चीयतेऽग्निः=श्येनचित्, कङ्कचित्॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते चिञ् धातु से कर्म कारक में क्विप् प्रत्यय होता है [अग्न्याख्यायाम्] अग्नि की आख्या अभिधेय हो तो॥ उदा० श्येनचित् (श्येन के आकार की तरह जो अग्नि की वेदी ईंटों से चुनी गई), कङ्कचित् (कंक पक्षी के आकार की तरह जो अग्नि की वेदी चुनी गई)॥ इस सूत्र में 'भूते' की अनुवृत्ति का सम्बन्ध नहीं लगता है। इसमें "श्येनचितं चिन्वीत" आदि श्रौत ग्रन्थों के वचन प्रमाण हैं। अतः सामान्य करके तीनों कालों में प्रत्यय होगा॥

कर्मणीनि विक्रियः ॥३।२।९३॥

कर्मणि ७।१॥ इनि लुप्तप्रथमान्तनिर्देश: ॥ विक्रय: ५।१॥ स०—वे: क्री विक्री, तस्मात्, पञ्चमीतत्पुरुष: ॥ अनु०—भूते, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे विपूर्वात् क्रीञ्धातोः इनि प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—सोमं विक्रीतवान्=सोमविक्रयी[1], रसविक्रयी, मद्यविक्रयी ॥

भाषार्थ:—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [विक्रियः] वि पूर्वक क्रीञ् धातु से भूत काल में [इनि] इनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सोमविक्रयी (सोम को बेचनेवाला), रसविक्रयी (रस को बेचनेवाला), मद्यविक्रयी (शराब बेचनेवाला)॥ सिद्धि में क्री धातु को इनि प्रत्यय परे रहते गुण(७।३।८४),तथा अयादेश जानें। शेष दीर्घत्व नलोपादि पूर्ववत् ही णिनिप्रत्ययान्त की सिद्धि के समान हैं॥

दृशेः क्वनिप् ॥३।२।९४॥

दृशे: ५।१॥ क्वनिप् १।१॥ अनु०—कर्मणि, भूते, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—कर्मण्युपपदे दृशधातो: भूते काले क्वनिप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परलोकं दृष्टवान्=परलोकदृश्वा, पाटलिपुत्रदृश्वा, वाराणसीं दृष्टवान्=वाराणसीदृश्वा ॥

भाषार्थ:—कर्म उपपद रहते भूतकाल में [दृशेः] दृश धातु से [क्वनिप्] क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—परलोकदृश्वा (जिसने परलोक देखा); पाटलिपुत्रदृश्वा (जिसने पाटलिपुत्र को देखा); वाराणसीदृश्वा (जिसने वाराणसी को देखा)॥ क्वनिप् का 'वन्' शेष रहेगा, पुनः दीर्घादि (६।४।८) पूर्ववत् होंगे ॥

यहाँ से 'क्वनिप्' की अनुवृत्ति ३।२।९६ तक जायेगी ॥

राजनि युधिकृञः ॥३।२।९५॥

राजनि ७।१॥ युधिकृञ: ५।१॥ स०—युधिश्च कृञ् च युधिकृञ्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्व: ॥ अनु०—क्वनिप्, कर्मणि, भूते, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—राजन्कर्मोपपदे युध् कृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां भूते काले क्वनिप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—राजानं योधितवान्=राजयुध्वा । राजकृत्वा ॥

भाषार्थ:—[राजनि] राजन् कर्म उपपद रहते [युधिकृञः] युध् तथा कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—राजयुध्वा (राजा को

---

१. सोम, रस(=लवण)तथा मद्य बेचना बुरा समझा जाता है। अत: ये सब उदाहरण कुत्सा=निन्दा में हैं ॥

जिसने लड़वाया)। राजकृत्वा (राजा को जिसने बनाया)॥ युध् धातु यहाँ अन्तर्भावितण्यर्थ होने से सकर्मक है॥ सिद्धि ३।२।७४ सूत्र के समान ही दीर्घत्व नलोपादि होकर जानें॥

यहाँ से 'युधिकृञः' की अनुवृत्ति ३।२।९६ तक जायेगी॥

सहे च ॥३।२।९६॥

सहे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—युधिकृञः, क्वनिप्, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सहशब्द उपपदे युधि कृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां क्वनिप् प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—सहयुध्वा। सहकृत्वा॥

भाषार्थः—[सहे] सह शब्द उपपद रहते [च] भी युध् तथा कृञ् धातुओं से भूत काल में क्वनिप् प्रत्यय होता है॥ उदा०—सहयुध्वा (साथ-साथ जिसने युद्ध किया)। सहकृत्वा (साथ-साथ जिसने कार्य किया)॥

सप्तम्यां जनेर्डः ॥३।२।९७॥

सप्तम्याम् ७।१॥ जनेः ५।१॥ डः १।१॥ अनु०—भूते, धातोः प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सप्तम्यन्त उपपदे जनेर्धातोर्डः प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—उपसरे जातः=उपसरजः। मन्दुरायां जातः=मन्दुरजः। कटजः। वारिणि जातः=वारिजः॥

भाषार्थः—[सप्तम्याम्] सप्तम्यन्त उपपद हो, तो [जनेः] जन धातु से [डः] ड प्रत्यय होता है॥ उदा०—उपसरजः (प्रथम बार में गर्भ धारण से उत्पन्न हुआ)। मन्दुरजः (घोड़ों की शाला में पैदा होनेवाला)। कटजः (चटाई में पैदा होनेवाला)। वारिजः (कमल)॥ प्रत्यय के डित् होने से डित्यभस्यापि टेर्लोपः इस वार्त्तिक से जन धातु के टि भाग (=अन्) का लोप हो जायेगा। मन्दुरा को ह्रस्व ङ्यापोः संज्ञा० (६।३।६१) से होता है॥ सिद्धि में यही विशेष है॥

यहाँ से 'जनेर्डः' की अनुवृत्ति ३।२।१०१ तक जायेगी॥

पञ्चम्यामजातौ ॥३।२।९८॥

पञ्चम्याम् ७।१॥ अजातौ ७।१॥ स०—न जातिः अजातिः, तस्याम्, नञ्-तत्पुरुषः॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अजातिवाचिनि पञ्चम्यन्त उपपदे जनेर्धातोर्डः प्रत्ययो भवति भूते काले॥ उदा०—शोकात् जातः=शोकजो रोगः। संस्कारजः। दुःखजः। बुद्धेः जातः=बुद्धिजः॥

भाषार्थः—[अजातौ] अजातिवाची [पञ्चम्याम्] पञ्चम्यन्त उपपद हो, तो

जन धातु से ड प्रत्यय होता है भूतकाल में ॥ उदा०—शोकजो रोगः (शोक से उत्पन्न होनेवाला रोग)। संस्कारजः (संस्कार से उत्पन्न होनेवाला)। दुःखजः (दुःख से उत्पन्न होनेवाला)। बुद्धिजः (बुद्धि से उत्पन्न होनेवाला) ॥ पूर्ववत् सिद्धि में टि भाग का लोप होगा ॥

उपसर्गे च संज्ञायाम् ॥३।२।९९॥

उपसर्गे ७।१॥ च अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गे चोपपदे जनेर्धातोः भूते काले डः प्रत्ययो भवति संज्ञायां विषये ॥ उदा०—अथेमा मानवीः प्रजाः। वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम। प्रजाता इति प्रजाः ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [च] भी [संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अथेमा मानवीः प्रजाः (यह मानवी प्रजा है)। वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम (हम प्रजापति की प्रजा होवें) ॥

अनौ कर्मणि ॥३।२।१००॥

अनौ ७।१॥ कर्मणि ७।१॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे अनुपूर्वात् जनेर्डः प्रत्ययो भवति भूते काले ॥ उदा०—पुमांसमनुजातः=पुमनुजः। स्त्र्यनुजः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [अनौ] अनुपूर्वक जन धातु से ड प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पुमनुजः (भाई के पश्चात् पैदा हुआ भाई)। स्त्र्यनुजः (बहन के पश्चात् पैदा हुआ भाई) ॥

अन्येष्वपि दृश्यते ॥३।२।१०१॥

अन्येषु ७।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ अनु०—जनेर्डः, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्येषु कारकेषूपपदेष्वपि जनेर्डः प्रत्ययो दृश्यते ॥ उदा०—सप्तम्यामुपपदे उक्तम्, असप्तम्यामपि भवति—न जायते इति अजः। द्विर्जाता द्विजाः। पञ्चम्यामजातौ इत्युक्तं, जातावपि दृश्यते—ब्राह्मणजो धर्मः। क्षत्रियजं युद्धम्। उपसर्गे च संज्ञायाम् इत्युक्तम्, असंज्ञायामपि दृश्यते—अभिजाः। परिजाः। अनौ कर्मणि इत्युक्तम्, अकर्मण्यपि दृश्यते=अनुजातः=अनुजः। अपि ग्रहणादन्येभ्यो धातुभ्योऽपि भवति—परितः खाता=परिखा ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्रों में जिनके उपपद रहते जन धातु से ड विधान किया है, उनसे [अन्येषु] अन्य कोई उपपद हों तो [अपि] भी जन धातु से ड प्रत्यय

[दृश्यते] देखा जाता है ।। यहाँ सूत्र में 'अपि' कहा है, अतः जन धातु से अन्य धातुओं से भी ड प्रत्यय होता है, यह बात निकलती है ।। उदा०—सप्तमी उपपद रहते कहा है, पर सप्तमी से भिन्न में भी देखा जाता है - अजः (परमेश्वर) । द्विजाः (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) । पञ्चम्यामजातौ में अजाति कहा है, पर जाति में भी देखा जाता है —ब्राह्मणजो धर्मः (ब्राह्मण से पैदा हुआ धर्म) । क्षत्रियजं युद्धम् (क्षत्रिय से उत्पन्न होनेवाला युद्ध) । उपसर्गे च संज्ञायाम् से संज्ञा में कहा है पर असंज्ञा में भी देखा जाता है—अभिजाः (पैदा होनेवाला) । परिजाः (केश) । अनौ कर्मणि में कर्म उपपद रहते कहा है, पर अकर्म में भी देखा जाता है—अनुजः (छोटा भाई) । 'अपि' ग्रहण करने से अन्य धातुओं से भी देखा जाता है—परिखा (खाई) ।।

निष्ठा ।।३।२।१०२।।

निष्ठा १।१।। अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—धातोः भूते काले निष्ठाप्रत्ययः परश्च भवति ।। क्तक्तवतू निष्ठा (१।१।२५) इत्यनेन निष्ठा संज्ञा कृता तौ निष्ठासंज्ञकौ प्रत्ययौ भूते काले भवतः ।। उदा०—भिन्नः, भिन्नवान् । भुक्तः, भुक्तवान् । कृतः, कृतवान् ।।

भाषार्थः—धातुमात्र से भूतकाल में [निष्ठा] निष्ठासंज्ञक प्रत्यय (=क्त क्तवतु) होते हैं, और वे परे होते हैं ।। सिद्धियाँ परि० १।१।५ में देखें ।। भुज धातु के ज् को क् चोः कुः (८।२।३०), तथा खरि च (८।४।५४) से हो गया है ।।

सुयजोर्ङ्वनिप् ।।३।२।१०३।।

सुयजोः ६।२।। ङ्वनिप् १।१।। स०—सुयजोः इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—षुञ् यज् इत्येताभ्यां धातुभ्यां ङ्वनिप् प्रत्ययो भवति भूते काले ।। उदा०—सुतवान् इति=सुत्वा । इष्टवान् इति=यज्वा ।।

भाषार्थः—[सुयजोः] षुञ् तथा यज् धातु से भूतकाल में [ङ्वनिप्] ङ्वनिप् प्रत्यय होता है ।। ङ्वनिप् का अनुबन्ध हटने पर 'वन्' रह जाता है । सु वन्, सु, पूर्ववत् ह्रस्वस्य० (६।१।६६) से तुक् आगम, तथा दीर्घत्व और नलोपादि होकर सुत्वा (जिसने सोमरस निचोड़ा) । यज्वा (जिसने यज्ञ किया) बना है ।।

जीर्यतेरतृन् ।।३।२।१०४।।

जीर्यतेः ५।१।। अतृन् १।१।। अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—'जृष् वयोहानौ' इत्यस्माद् धातोः भूते काले अतृन् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—जरन्, जरन्तौ ।।

भाषार्थः—[जीर्यतेः] 'जृष् वयोहानौ' धातु से भूतकाल में [अतृन्] अतृन्

प्रत्यय होता है ॥ अतृन् का अनुबन्ध हटकर अत् रह जाता है। उगिदचां० (७।१।७०) से नुम् आगम १।१।४६ से अन्त्य अच् से परे होकर जर् अ नुम् त्=जरन्त् बना, संयोगान्त लोप होकर जरन् (वृद्ध) बन गया ॥

छन्दसि लिट् ॥३।२।१०५॥

छन्दसि ७।१।। लिट् १।१।। अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये धातोः भूते काले लिट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अहं सूर्यमुभयतो ददर्श (यजु० ८।९)। यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान (ऋक्० १०।८८।३) ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में भूतकाल सामान्य में धातुमात्र से [लिट्] लिट् प्रत्यय होता है ॥ आङ्पूर्वक 'तनु विस्तारे' धातु से आततान बना, तथा दृश् धातु से ददर्श बना है। लिट् लकार में सिद्धियाँ हम बहुत बार दिखा आये हैं। उसी प्रकार यहाँ भी समझें। पुनरपि परि० १।१।५७ देखें ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१०७ तक जायेगी ॥

लिटः कानज् वा ३।२।१०६॥

लिटः ६।१।। कानच् १।१।। वा अ० ॥ अनु०—भूते, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये लिटः स्थाने कानच् आदेशो वा भवति ॥ उदा०—अग्निं चिक्यानः (तै० सं० ५।२।३।६)। सुषुवाणः (मै० सं० ३।४।३)। न च भवति—अहं सूर्यमुभयतो ददर्श (यजु० ८।९)॥

भाषार्थः—वेदविषय में भूतकाल में विहित जो [लिटः] लिट्, उसके स्थान में [कानच] कानच् आदेश [वा] विकल्प से होता है ॥

यहाँ से 'लिटः, वा' की अनुवृत्ति ३।१।१०९ तक जायेगी ॥

क्वसुश्च ॥३।२।१०७॥

क्वसुः १।१।। च अ० ॥ अनु०—भूते, लिटः, वा, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये लिटः स्थाने क्वसुरादेशो वा भवति ॥ उदा०—जक्षिवान्, पपिवान् (ऋक्० १।६१।७)। पक्षे न च भवति—अहं सूर्यमुभयतो ददर्श ॥

भाषार्थः—वेदविषय में लिट् के स्थान में [क्वसुः] क्वसु आदेश [च] भी विकल्प से होता है ॥ लिट् के स्थान में क्वसु आदि आदेश होते हैं। अतः यहां क्वसु को स्थानिवत् (१।१।५५ से) मानकर द्वित्वादि कार्य होते ही हैं। जक्षिवान् अद् धातु से बना है। अतः परि० १।१।५७ के जक्षतुः की सिद्धि के समान जक्ष् बना। इडागम वस्वेकाजाद्घसाम् (७।२।६७) से करके जक्षिवस् बना। शेष क्तवतु प्रत्ययान्त

की सिद्धि के समान जानें, जो कि परि० १।१।५ में दर्शाई है। पपिवान् पा धातु से बना है। यहाँ भी पूर्ववत् इडागम होकर आतो लोप इटि च (६।४।६४) से आकारलोप होगा। पश्चात् द्विर्वचनेऽचि (१।१।५८) से रूपातिदेश होकर 'पा प इ वस्' बना, ह्रस्वः (७।४।५६) आदि होकर पपिवान् बना ॥

यहाँ से 'क्वसुः' की अनुवृत्ति ३।२।१०८ तक जायेगी ॥

भाषायां सदवसश्रुवः ॥३।२।१०८॥

भाषायाम् ७।१।। सदवसश्रुवः ५।१।। स०—सदश्च वसश्च श्रुश्च सदवसश्रु, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—लिटः, वा, क्वसुः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भाषायां=लौकिके प्रयोगे सद वस श्रु इत्येतेभ्यो धातुभ्यः परो विकल्पेन लिट प्रत्ययो भवति, लिटश्च स्थाने नित्यं क्वसुरादेशो भवति भूते काले ॥ लिट आदेशविधानादेव लिडपि भूतकालसामान्ये भाषायां विषये भवतीत्यनुमीयते। पक्षे यथायथं भूते विहिताः लुङ् लङ् लिट इत्यादयो लकारा भवन्ति ॥ उदा०—उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपासदत् (लुङ्), उपासीदत् (लङ्), उपससाद (लिट्)। अनूषिवान् कौत्सः पाणिनिम्। अन्ववात्सीत् (लुङ्), अन्ववसत् (लङ्), अनूवास (लिट्)। उपशुश्रुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपाश्रौषीत् (लुङ्), उपाशृणोत् (लङ्), उपशुश्राव (लिट्) ॥

भाषार्थः—[भाषायाम्] लौकिकप्रयोग विषय में [सदवसश्रुवः] सद, वस, श्रु इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प से लिट् प्रत्यय होता है, और लिट् के स्थान में नित्य क्वसु आदेश हो जाता है ॥ भूतकालमात्र (सामान्यभूत लुङ्, तथा विशेषभूत लङ् लिट्) में यहाँ लिट् विधान किया है। अतः पक्ष में अपने-अपने विषय में लुङ्, लङ्, लिट् तीनों होंगे।

उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥३।२।१०९॥

उपेयिवान् १।१।। अनाश्वान् १।१।। अनूचानः १।१।। च अ० ॥ अनु०—लिटः, वा, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपेयिवान्, अनाश्वान् अनूचान इत्येते शब्दा विकल्पेन सामान्यभूतकाले निपात्यन्ते ॥ उपेयिवानित्यत्र उपपूर्वाद् इण्-धातोः क्वसुप्रत्यये परतो द्विर्वचनमभ्यासदीर्घत्वमभ्यासस्य हलादौ परतो यणादेशो निपात्यते। ततश्चैकाच्त्वात् वस्वेकाजा० (७।२।६७) इत्यनेन 'इट्' भविष्यति। पक्षे पूर्ववल्लुङादयोऽपि भवन्ति—उपागात्, उपैत्, उपेयाय। अनाश्वान्—नञ्पूर्वाद् 'अश भोजने' इत्येतस्माद् धातोः क्वसुप्रत्ययः इडभावश्च निपात्यते। पक्षे—नाशीत्, नाश्नात्, नाश। अनूचानः—अनुपूर्वाद् वच धातोः (ब्रूञस्थानिकस्य) कर्त्तरि कानच् निपात्यते, सम्प्रसारणं तु भवत्येव। पक्षे यथाप्राप्तम्—अन्ववोचत्, अन्वब्रवीत्, अनूवाच ॥

भाषार्थः—[उपेयि.....चानः] उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये शब्द [च] भी निपातन किये जाते हैं। भूतसामान्य में इन सब निपातनों में विकल्प से लिट् होकर, नित्य ही क्वसु आदि आदेश होते हैं। अतः पक्ष में यथाप्राप्त भूतकाल के प्रत्यय लुङ् (सामान्य भूत), लङ्, लिट् (विशेषभूत) हो जाते हैं ॥ उपेयिवान् (वह वहाँ पहुंचा)—यहाँ 'इण् गतौ' धातु से क्वसु प्रत्यय के परे रहते द्विर्वचन, दीर्घ इणः० (७।४।६९) से अभ्यास को दीर्घ होकर 'उप ई इ वस्' रहा। अब यहाँ व्यञ्जन के परे रहते यणादेश प्राप्त नहीं था, सो वह निपातन से हुआ है। तत्पश्चात् 'उप ईय् वस्' होकर वस्वेकाजाद्घसाम् (७।२।६७) से इट् आगम, तथा आद्गुणः (६।१।८४) लगकर 'उपेय इ वस् सु' रहा। उगिदचां० (७।१।७०) से नुम् आगम तथा पूर्ववत् दीर्घत्व एवं संयोगान्त लोप (८।२।२३) होकर उपेयिवान् बन गया। पक्ष में भूतकाल-विहित लुङ्, लङ्, लिट् लकार होकर उपागात् (लुङ्), उपैत् (लङ्), उपेयाय (लिट्) बन गया॥ अनाश्वान्—में नञ् पूर्वक अश धातु से क्वसु प्रत्यय, तथा इट् अभाव निपातन है। 'नञ् अश् अश् वस्'=अनुबन्धलोप, हलादि-शेष, तथा एकादेश होकर 'न आश् वस्' इस अवस्था में एकाच् होने से पूर्ववत् इट आगम प्राप्त था, निपातन से निषेध हो गया। नलोपो० (६।३।७२) से न का लोप, तथा तस्मान्नुडचि (६।३।७३) से नुट् आगम होकर 'अ नुट् आश् व नुम् स् सु'=अन् आश् व न् स् सु। शेष सब पूर्ववत् होकर अनाश्वान् बन गया। पक्ष में लुङ् लङ् लिट् लकार हो ही जायेंगे॥ अनूचानः—में अनु पूर्वक वच् धातु से कर्त्ता में कानच् प्रत्यय निपातन है। सम्प्रसारण तो वचिस्वपि० (६।१।१५) से हो ही जायेगा। अनु उ उच कानच्=अनूच् आन सु=अनूचानः बन गया। पक्ष में यथा-प्राप्त भूतकाल के प्रत्यय हुए हैं, सो अन्ववोचत्, अन्वब्रवीत्, अनूवाच रूप बनेंगे। इनकी सिद्धियाँ परिशिष्ट में देखें॥

लुङ् ॥३।२।११०॥

लुङ् १।१॥ अनु०—भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—भूतेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोः लुङ्प्रत्ययः परश्च भवति॥ उदा०—अकार्षीत्। अहार्षीत्॥

भाषार्थः—सामान्य भूतकाल में वर्त्तमान धातु से [लुङ्] लुङ् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है॥ सिद्धि परि० १।१।१ में देखें॥

अनद्यतने लङ् ॥३।२।१११॥

अनद्यतने ७।१॥ लङ् १।१॥ स०—न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सोऽनद्यतनः,

तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च, भूते ॥ अर्थः--अनद्यतने भूतेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोः लङ्प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—अकरोत् । अहरत् ॥

भाषार्थः—[अनद्यतने] अनद्यतन (=जो आज का नहीं) भूतकाल में वर्त्तमान धातु से [लङ्] लङ् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥ 'अकुरुताम्' की सिद्धि परि० १।१।५५ में की है। यहाँ भी उसी प्रकार 'अट् कृ उ तिप्' आकर कृ को 'उ' परे मानकर गुण, तथा उरण्रपरः (१।१।५०) से रपर हुआ। एवं तिप् को मानकर 'उ' को 'ओ' गुण होकर अकरोत् (उसने किया) बना है ॥

यहाँ से 'अनद्यतने' की अनुवृत्ति ३।२।११९ तक जायेगी ॥

अभिज्ञावचने लृट् ॥३।२।११२॥

अभिज्ञावचने ७।१॥ लृट् १।१॥ स०—अभिज्ञायाः वचनम् अभिज्ञावचनम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अनद्यतने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अभिज्ञा=स्मृतिः, अभिज्ञावचन उपपदे सति धातोरनद्यतने भूते काले लृट् प्रत्ययो भवति ॥ लङि प्राप्ते लृट् विधीयते ॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः । स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः ॥

भाषार्थः—[अभिज्ञावचने] अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृति को कहनेवाला कोई शब्द उपपद हो, तो धातु से अनद्यतन भूतकाल में [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है ॥ लङ् का अपवाद यह सूत्र है ॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः (याद है देवदत्त कि पहले कश्मीर में रहे थे) । स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः ॥ परि० १।४।१३ के करिष्यामः के समान वस् धातु से 'स्य' इत्यादि सब आकर 'वस् स्य मस्' बना। सः स्यार्धधातुके (७।४।४९) से धातु के सकार को त् होकर 'वत् स्य मस्' बना। अतो दीर्घो० (७।३।१०१) से दीर्घ, तथा रुत्व विसर्जनीय होकर वत्स्यामः बन गया ॥

यहाँ से 'अभिज्ञावचने लृट्' की अनुवृत्ति ३।२।११४ तक जायेगी ॥

न यदि ॥३।२।११३॥

न अ० ॥ यदि ७।१॥ अनु०—अभिज्ञावचने लृट्, अनद्यतने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यत्शब्दसहिते अभिज्ञावचने उपपदे अनद्यतने भूते काले धातोर्लृट् प्रत्ययो न भवति ॥ पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते ॥ उदा०—अभिजानासि देवदत्त यत् कश्मीरेषु अवसाम । स्मरसि देवदत्त यत् कश्मीरेषु अगच्छाम ॥

भाषार्थः—[यदि] यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद हो, तो अनद्यतन भूत-

काल में धातु से लृट् प्रत्यय [न] नहीं होता ।। पूर्व सूत्र से लृट् प्रत्यय प्राप्त था, इस सूत्र ने प्रतिषेध कर दिया, तो यथाप्राप्त अनद्यतने लङ् (३।२।१११) से लङ् हो गया ।। अट् वस् शप् मस्, ऐसी स्थिति में पूर्ववत् दीर्घादि होकर, नित्यं ङित: (३।४।९९) से मस् के सकार का लोप होकर अवसाम बन गया । अगच्छाम में इषुगमियमां छ: (७।३।७७) से गम् के अन्त्य अल् को छ, तथा छे च (६।१।७१) से तुक् आगम, और श्चुत्व हुआ है, शेष पूर्ववत् है ।।

विभाषा साकाङ्क्षे ।।३।२।११४।।

विभाषा १।१।। साकाङ्क्षे ७।१।। स०—आकाङ्क्षया सह वर्त्तत इति साकाङ्क्ष:, बहुव्रीहि: ।। अनु०—अभिज्ञावचने लृट्, अनद्यतने, भूते, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—अभिज्ञावचन उपपदे यद्योगे अयद्योगे च भूतानद्यतने काले धातोर्विकल्पेन लृट् प्रत्ययो भवति, साकाङ्क्षश्चेत् प्रयोक्ता भवेत्, पक्षे लङ् भवति ।। उदा०—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वत्स्यामस्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे । स्मरसि देवदत्त मगधेषु वत्स्यामस्तत्र सक्तून् पास्याम: ।। यत्प्रयोगेऽपि—अभिजानासि देवदत्त यत् कश्मीरेषु वत्स्यामस्तत्रौदनं भोक्ष्यामहे । स्मरसि देवदत्त यत् मगधेषु वत्स्यामस्तत्र सक्तून् पास्याम: । पक्षे लङ्—अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम तत्रौदनमभुञ्ज्महि । अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम तत्र सक्तून् अपिबाम । यत् प्रयोगेऽपि—अभिजानासि देवदत्त यत् कश्मीरेष्ववसाम तत्रौदनमभुञ्ज्महि ।।

भाषार्थ:—अभिज्ञावचन शब्द उपपद हो, तो यत् का प्रयोग हो या न हो तो भी अनद्यतन भूत काल में धातु से लृट् प्रत्यय [विभाषा] विकल्प से होता है, यदि प्रयोक्ता [साकाङ्क्षे] साकाङ्क्ष हो ।। कश्मीर में रहते थे, और क्या करते थे, यहाँ यह बतलाने की आकाङ्क्षा प्रयोक्ता को हैं, अत: ये सब उदाहरणवाक्य साकाङ्क्ष हैं । सो लृट् तथा पक्ष में लङ् भी हो गया है । यत् शब्द का प्रयोग हो या न हो, दोनों में ही विकल्प से लृट् होगा, सो यहाँ उभयत्र विभाषा है ।। वहाँ रहते थे (वत्स्याम:), तथा ओदन खाते थे (भोक्ष्यामहे) वाक्य की इन दोनों क्रियाओं में लृट् और लङ् हुआ करेगा ।।

परोक्षे लिट् ।।३।२।११५।।

परोक्षे ७।१।। लिट् १।१।। अनु०—धातो:, प्रत्यय:, परश्च, भूते, अनद्यतने ।। अर्थ:—अनद्यतने परोक्षे भूतेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातो: लिट् प्रत्यय: परश्च भवति ।। उदा०—चकार कटं देवदत्त: । जहार सीतां रावण: ।।

भाषार्थ:— अनद्यतन = जो आज का नहीं ऐसे [परोक्षे] परोक्ष (= जो अपनी

इन्द्रियों से न देखा गया हो, ऐसे भूतकाल में वर्त्तमान धातु से [लिट्] लिट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ।। उदा०—चकार कटं देवदत्तः (देवदत्त ने चटाई बनाई)। जहार सीतां रावणः (रावण ने सीता का हरण किया)। चक्रतुः चक्रुः की सिद्धियाँ परि० १।१।५८ में दिखा चुके हैं। उसी प्रकार यहाँ णल् के परे रहते 'कृ' 'हृ' को वृद्धि होकर 'चकार जहार' समझें ।।

अक्षि=इन्द्रिय को कहते हैं, पर अर्थात् परे। सो परोक्ष का अभिप्राय है—जो इन्द्रियों द्वारा जाना न गया हो ।।

यहाँ से 'परोक्षे' की अनुवृत्ति ३।२।११८ तक, तथा 'लिट्' की अनुवृत्ति ३।२।११७ तक जायेगी ।।

हशश्वतोर्लङ् च ।।३।२।११६।।

हशश्वतोः ७।२।। लङ् १।१।। च अ० ।। स०—हश० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—परोक्षे, अनद्यतने, भूते, लिट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—ह शश्वत् इत्येतयोरुपपदयोर्धातोः परोक्षे अनद्यतने भूते काले लङ् प्रत्ययो भवति, चकारात् लिट् च ।। नित्यं लिटि प्राप्ते लङपि विधीयते ।। उदा०—इति हाकरोत्। इति ह चकार। शश्वदकरोत्। शश्वत् चकार ।।

भाषार्थः—[हशश्वतोः] ह शश्वत् ये शब्द उपपद हों, तो धातु से अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में [लङ्] लङ् प्रत्यय होता है, [च] और चकार से लिट् भी होता है ।। उदा०—इति हाकरोत् (उसने ऐसा निश्चय से किया)। इति ह चकार। शश्वदकरोत् (उसने यह सदा किया)। शश्वत् चकार ।।

यहाँ से 'लङ्' की अनुवृत्ति ३।२।११७ तक जायेगी ।।

प्रश्ने चासन्नकाले ।।३।२।११७।।

प्रश्ने ७।१।। च अ० ।। आसन्नकाले ७।१।। स०—आसन्नः कालो यस्य स आसन्नकालः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ।। अनु०—परोक्षे, अनद्यतने, भूते, लङ्, लिट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—आसन्नकाले प्रश्ने (=प्रष्टव्ये) अनद्यतने परोक्षे भूतेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लङ्लिटौ प्रत्ययौ भवतः ।। उदा०—देवदत्तोऽगच्छत् किम्? देवदत्तो जगाम किम् ? ।।

भाषार्थः—[आसन्नकाले] समीपकालिक [प्रश्ने] प्रष्टव्य अनद्यतन परोक्ष भूतकाल में वर्त्तमान धातु से [च] भी लङ् तथा लिट् प्रत्यय होते हैं ।। उदा०—देवदत्तोऽगच्छत् किम् ? देवदत्तो जगाम किम्? (देवदत्त अभी गया क्या) ।। यहाँ प्रश्न शब्द

में कर्म में नङ् प्रत्यय हुआ है, अतः प्रश्न का अर्थ है प्रष्टव्य। पांच वर्ष के अभ्यन्तर काल को आसन्न काल माना जाता है ॥

लट् स्मे ॥३।२।११८॥

लट् १।१॥ स्मे ७।१॥ अनु०—परोक्षे, अनद्यतने, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परोक्षेऽनद्यतने भूते काले वर्त्तमानाद् धातोः स्मशब्द उपपदे लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—युधिष्ठिरो यजते स्म। धर्मेण कुरवो युध्यन्ते स्म ॥

भाषार्थः—परोक्ष अनद्यतन भूतकाल में वर्त्तमान धातु से [स्मे] स्म शब्द उपपद रहते [लट्] लट् प्रत्यय होता है ॥ लिट् लकार प्राप्त था, लट् विधान कर दिया है ॥ उदा०—युधिष्ठिरो यजते स्म (युधिष्ठिर यज्ञ करते थे)। धर्मेण कुरवो युध्यन्ते स्म (कौरव धर्म से युद्ध करते थे)। युध धातु दिवादिगण की है, सो श्यन् विकरण हो जायेगा ॥

यहाँ से 'लट्' की अनुवृत्ति ३।२।१२२ तक, तथा 'स्मे' की ३।२।११९ तक जायेगी ॥

अपरोक्षे च ॥३।२।११९॥

अपरोक्षे ७।१॥ च अ० ॥ स०—न परोक्षः अपरोक्षः, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अनद्यतने, भूते, लट् स्मे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अपरोक्षेऽनद्यतने भूते च काले वर्त्तमानाद् धातोः स्मशब्द उपपदे सति लट् प्रत्ययो भवति ॥ पूर्वेण परोक्षेऽनद्यतने भूते लट् प्राप्तोऽत्रापरोक्षेऽनद्यतनेऽपि विधीयते ॥ उदा०—अध्यापयति स्म गुरुर्माम्। पिता मे ब्रवीति स्म। मया सह पुत्रो गच्छति स्म ॥

भाषार्थः—[अपरोक्षे] अपरोक्ष अनद्यतन भूतकाल में [च] भी वर्त्तमान धातु से स्म उपपद रहते लट् प्रत्यय होता है। पूर्व सूत्र से परोक्ष भूतकाल में लट् प्राप्त था, यहाँ अपरोक्ष में भी विधान कर दिया है ॥ उदा०—अध्यापयति स्म गुरुर्माम् (मुझको गुरु जी पढ़ाया करते थे)। पिता मे ब्रवीति स्म (मेरे पिता कहा करते थे)। मया सह पुत्रो गच्छति स्म (मेरे साथ पुत्र जाता था) ॥ परि० २।४।५१ के अध्यापिपत् के समान 'अध्यापि' धातु बनाकर 'अध्यापयति' की सिद्धि जानें। 'ब्रवीति' में ब्रुव ईट् (७।३।९३) से 'ईट्' आगम होता है ॥

ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥३।२।१२०॥

ननौ ७।१॥ पृष्टप्रतिवचने ७।१॥ स०—पृष्टस्य प्रतिवचन पृष्टप्रतिवचनम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—लट्, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ननु-

शब्दोपपदे पृष्टप्रतिवचनेऽर्थे भूते काले लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देवदत्त ? ननु करोमि भोः ॥

भाषार्थः—सामान्य भूतकाल में लुङ् प्राप्त था, लट् विधान कर दिया है। [पृष्टप्रतिवचने] पृष्टप्रतिवचन अर्थात् पूछे जाने पर जो उत्तर दिया जाये, इस अर्थ में धातु से [ननौ] ननु शब्द उपपद रहते सामान्य भूतकाल में लट् प्रत्यय होता है ॥ देवदत्त तूने चटाई बना ली ? यह पूछे जाने पर 'ननु करोमि भोः' (हाँ जी, बनाई है), यह पृष्टप्रतिवचन हुआ। ननु उपपद में है ही, अतः करोमि में लट् लकार हो गया है ॥

यहाँ से 'पृष्टप्रतिवचने' की अनुवृत्ति ३।२।१२१ तक जायेगी ॥

नन्वोर्विभाषा ॥३।२।१२१॥

नन्वोः ७।२॥ विभाषा १।१॥ स०—नश्च नुश्च ननू, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पृष्टप्रतिवचने, लट्, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—न नु इत्येतयोरुपपदयोः पृष्टप्रतिवचनेऽर्थे धातोर्भूते काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति ॥ लुङि प्राप्ते लट् विधीयते, तेन पक्षे लुङ् अपि भवति ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देवदत्त ? न करोमि भोः, नाकार्षम्। अकार्षीः कटं देवदत्त ? अहं नु करोमि, अहं न्वकार्षम् ॥

भाषार्थः—पृष्टप्रतिवचन अर्थ में धातु से [नन्वोः] न तथा नु उपपद रहते सामान्य भूतकाल में [विभाषा] विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ सामान्य भूत में लुङ् लकार की प्राप्ति थी, लट् विकल्प से विधान कर दिया है। सो पक्ष में लुङ् भी होगा ॥ उदा०—अकार्षीः कटं देवदत्त? न करोमि भोः, नाकार्षम् (देवदत्त तूने चटाई बनाई क्या ? नहीं बनाई) अकार्षीः कटं देवदत्त ? अहं नु करोमि, अहं न्वकार्षम् (हां मैंने बनाई)॥ अकार्षीत् की सिद्धि परि० १।१।१ में की है, उसी प्रकार जानें। केवल यहाँ मिप् आकर उसको तस्थस्थमिपां० (३।४।१०१) से अम् हो जायेगा ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।२।१२२ तक जायेगी ॥

पुरि लुङ् चास्मे ॥३।२।१२२॥

पुरि ७।१॥ लुङ् १।१॥ च अ० ॥ अस्मे ७।१॥ स०—न स्मः अस्मः, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ मण्डूकप्लुतगत्या 'अनद्यतने' अप्यनुवर्त्तते ॥ अर्थः—स्मशब्दरहिते पुराशब्द उपपदे अनद्यतने भूते काले धातोर्लुङ् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, चकारात् लट् च, पक्षे लङ्लिटौ भवतः ॥ उदा०—रथेनायं पुराऽयासीत् (लुङ्)। रथेनायं पुरा याति। पक्षे—रथेनायं पुराऽयात् (लङ्)। रथेनायं पुरा ययौ (लिट्) ॥

भाषार्थः—[अस्मे] स्म शब्द रहित [पुरि] पुरा शब्द उपपद हो, तो अनद्यतन भूतकाल में धातु से [लुङ्] लुङ् प्रत्यय विकल्प से होता है, [च] चकार से लट् भी होता है ॥ उदा०—रथेनायं पुराऽयासीत् । रथेनायं पुरा याति (यह पहले रथ से गया था)। पक्ष में—रथेनायं पुराऽयात । रथेनायं पुरा ययौ ॥ लुङ् का विकल्प होने से पक्ष में भूतकाल के प्रत्यय लङ् और लिट् भी होंगे ॥ अयासीत् की सिद्धि २।४।७८ सूत्र में देखें । ययौ की सिद्धि परि० १।१।५८ के पपौ की तरह समझें । लङ् लकार में लुङ् लङ् लृङ्० (६।४।७१) से अट् आगम, एवं सब कार्य होकर 'अट् या शप् तिप'=अयात् बना है ॥

वर्त्तमाने लट् ॥३।२।१२३॥

वर्त्तमाने ७।१॥ लट् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वर्त्तमानेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोः लट् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—पचति, भवति, पठति ॥

भाषार्थः—[वर्त्तमाने] वर्त्तमान काल में विद्यमान धातु से [लट्] लट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥

विशेषः—क्रिया के आरम्भ से लेकर समाप्त न होने तक उस क्रिया का वर्त्त-काल माना जाता है ॥

यहाँ से 'वर्त्तमाने' की अनुवृत्ति ३।३।१ तक जायेगी ॥

लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ॥३।२।१२४॥

लटः ६।१॥ शतृशानचौ १।२॥ अप्रथमासमानाधिकरणे ७।१॥ स०—शतृ च शानच् च शतृशानचौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । न प्रथमा अप्रथमा, नञ्तत्पुरुषः । समानम् अधिकरणम् यस्य तत् समानाधिकरणम्, बहुव्रीहिः । अप्रथमया समानाधिकरणम्, अप्रथमासमानाधिकरणम्, तस्मिन्, तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः ॥ अर्थः—धातोर्लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः, अप्रथमान्तेन चेत् तस्य सामानाधिकरण्यं स्यात् ॥ उदा०—पचन्तं देवदत्तं पश्य । पचमानं देवदत्तं पश्य । पठता कृतम् । आसीनाय देहि ॥

भाषार्थः—[लटः] धातु से लट् के स्थान में [शतृशानचौ] शतृ तथा शानच् आदेश होते हैं, यदि [अप्रथमासमानाधिकरणे] अप्रथमान्त के साथ उस लट् का सामानाधिकरण्य हो ॥ तङानावात्मनेपदम् (१।४।९९) से आन=शानच् की आत्मनेपद संज्ञा होती है । अतः शानच् आत्मनेपदी धातुओं से ही होगा । तथा शतृ परस्मैपदी धातुओं से ही होगा ॥ उदा०—पचन्तं देवदत्तं पश्य (पकाते हुए देवदत्त को

देखो)। पचमानं देवदत्तं पश्य। पठता कृतम् (पढ़ते हुए ने किया)। आसीनाय देहि (बैठे हुए के लिए दो)॥

यहां से 'लटः शतृशानचौ' की अनुवृत्ति ३।२।१२६ तक जायेगी॥

सम्बोधने च ॥३।२।१२५॥

सम्बोधने ७।१॥ च अ०॥ अनु०—लटः, शतृशानचौ, वर्त्तमाने, धातोः॥ अर्थः—सम्बोधने च विषये धातोर्लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः॥ उदा०—हे पचन्। हे पचमान॥

भाषार्थः—[सम्बोधने] सम्बोधन विषय में [च] भी धातु से लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश होते हैं॥ सम्बोधने च (२।३।४७) से सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। अतः प्रथमासमानाधिकरण होने से शतृ शानच् प्राप्त नहीं थे, विधान कर दिया है॥ उदा०—हे पचन् (हे पकाते हुए)। हे पचमान॥

लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥३।२।१२६॥

लक्षणहेत्वोः ७।२॥ क्रियायाः ६।१॥ स०—लक्षणञ्च हेतुश्च लक्षणहेतू, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—लटः, शतृशानचौ, धातोः, वर्त्तमाने॥ लक्ष्यते चिह्न्यते येन तल्लक्षणम्। हेतुः कारणम्॥ अर्थः—क्रियायाः लक्षणहेत्वोरर्थयोर्वर्त्तमानाद् धातोर्लटः स्थाने शतृशानचावादेशौ भवतः॥ उदा०—लक्षणे—शयानो भुङ्क्ते बालः। तिष्ठन् मूत्रयति पाश्चात्यः। हेतौ—अधीयानो वसति। उपदिशन् भ्रमति॥

भाषार्थः—[क्रियायाः] क्रिया के [लक्षणहेत्वोः] लक्षण तथा हेतु अर्थों में वर्त्तमान धातु से लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश होते हैं॥ उदा०—लक्षण में—शयानो भुङ्क्ते बालः (लेटा हुआ बालक खा रहा है)। तिष्ठन् मूत्रयति पाश्चात्यः (खड़ा हुआ पाश्चात्य लघुशङ्का करता है)। हेतु में—अधीयानो वसति (पढ़ने के कारण से रहता है)। उपदिशन् भ्रमति (उपदेश करने के हेतु से घूमता है)॥ उदाहरण में शयानः क्रिया भुङ्क्ते क्रिया को लक्षित कर रही है। इसी प्रकार तिष्ठन् से मूत्रयति क्रिया लक्षित हो रही है। अतः यहां क्रिया के लक्षण में वर्त्तमान शीङ् इत्यादि धातुएं हैं। सो लट् के स्थान में शतृ शानच् आदेश हुए हैं। इसी प्रकार वास करने का हेतु पठन क्रिया है, घूमने का हेतु उपदेश करना है। अतः अधीयानः तथा उपदिशन् हेतु अर्थ में वर्त्तमान हैं, सो शतृ शानच् हो गये हैं॥

तौ सत् ॥३।२।१२७॥

तौ १।२॥ सत् १।१॥ तौ इत्यनेन शतृशानचौ निर्दिश्येते॥ अर्थः—तौ शतृ-

शानचौ सत्संज्ञकौ भवतः ॥ उदा०—ब्राह्मणस्य कुर्वन् । ब्राह्मणस्य कुर्वाणः । ब्राह्मणस्य करिष्यन् । ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः ॥

भाषार्थः—[तौ] वे शतृ तथा शानच् [सत्] सत्संज्ञक होते हैं ॥ सत् संज्ञा होने से पूरणगुणसुहितार्थसद० (२।२।११) से षष्ठी-समास 'ब्राह्मणस्य कुर्वाणः' आदि में नहीं हुआ है । सारी सिद्धि यहाँ परि० ३।२।१२४ के समान होगी, केवल करिष्यन् करिष्यमाणः यहाँ लृटः सद्वा (३।३।१४) से लृट् लकार के स्थान में शतृ शानच् हुए हैं, अतः लृट् लकार का प्रत्यय स्य (विकरण) भी आयेगा । शेष सार्व-धातुका० (७।३।८४) से गुण इत्यादि पूर्ववत् ही होगा । कुर्वन् कुर्वाणः, यहाँ 'उ' तथा विकरण अत उत्० (६।४।११०) से उत्व हो जायेगा । कुरु आन, णत्व यणादेश होकर कुर्वाणः बन गया ॥

पूङ्यजोः शानन् ॥३।२।१२८॥

पूङ्यजोः ६।२॥ शानन् १।१॥ स०—पूङ्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूङ् यज इत्येताभ्यां धातुभ्यां वर्त्तमाने काले शानन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पवमानः । यजमानः ॥

भाषार्थः—[पूङ्यजोः] पूङ् तथा यज धातुओं से वर्त्तमान काल में [शानन्] शानन् प्रत्यय होता है ॥ शानन् आदि लट् के स्थान में नहीं होते, अतः लादेश नहीं हैं ॥ उदा०—पवमानः (पवित्र करता हुआ) । यजमानः (यज्ञ करता हुआ) ॥ सिद्धि परि० ३।२।१२४ की तरह जानें । केवल यहाँ पूङ् धातु को गुण होकर अवादेश भी होगा, यही विशेष है ॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥३।२।१२९॥

ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु ७।३॥ चानश् १।१॥ स०—ताच्छील्यञ्च वयो-वचनञ्च शक्तिश्च ताच्छील्यवयोवचनशक्तयः, तासु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ताच्छील्यं=तत्स्वभावता, वयः=शरीरावस्था यौवनादिः, शक्तिः=सामर्थ्यम् । ताच्छील्यादिष्वर्थेषु द्योत्येषु धातोर्वर्त्तमाने काले चानश् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कतीह मुण्डयमानाः । कतीह भूषयमाणाः । वयोवचने—कतीह कवचं पर्यस्यमानाः । कतीह शिखण्डं वहमानाः । शक्तौ—कतीह निघ्नानाः । कतीह पचमानाः ॥

भाषार्थः—[ताच्छी···षु] ताच्छील्य, वयोवचन, शक्ति इन अर्थों के द्योतित

होने पर धातु से वर्त्तमान काल में [चानश्] चानश् प्रत्यय होता है ।। उदा०—ताच्छील्य में—कतीह मुण्डयमानाः (कितने यहाँ मुण्डन किये हुए हैं) । कतीह भूषयमाणाः (कितने यहाँ सजे हुए हैं) । वयोवचन में—कतीह कवचं पर्यस्यमानाः (कितने यहाँ कवच धारण कर सकते हैं ? कवच धारण करने से शरीर की अवस्था यौवन का पता चलता है, क्योंकि बच्चे या बुड्ढे कवच नहीं धारण कर सकते) । कतीह शिखण्डं वहमानाः (कितने यहाँ शिखा धारण करनेवाले हैं) । शक्ति में—कतीह निघ्नानाः (कितने यहाँ मारनेवाले हैं) । कतीह पचमानाः (कितने यहाँ पकानेवाले हैं) ।।

इङ्धार्य्योः शत्रकृच्छ्रिणि ।।३।२।१३०।।

इङ्धार्य्योः ६।२।। शतृ, लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ।। अकृच्छ्रिणि ७।१।। स०—इङ् च धारिश्च इङ्धारी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । न कृच्छ्रः अकृच्छ्रः, नञ्तत्पुरुषः । अकृच्छ्रः (धात्वर्थः) अस्यास्तीति अकृच्छ्री (कर्त्ता), तस्मिन् । अत इनि० (५।१।११५) इति इनिः प्रत्ययः ।। अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—इङ् धारि इत्येताभ्यां धातुभ्यां वर्त्तमाने काले शतृ प्रत्ययो भवति अकृच्छ्रिणि कर्त्तरि वाच्ये ।। उदा०—अधीयन् पारायणम् । धारयन् उपनिषदम् ।।

भाषार्थः—[इङ्धार्य्योः] इङ् तथा धारि धातु से वर्त्तमानकाल में [शतृ] शतृ प्रत्यय होता है, यदि [अकृच्छ्रिणि] जिसके लिए क्रिया कष्टसाध्य न हो, ऐसा कर्त्ता वाच्य हो तो ।। उदा०—अधीयन् पारायणम् (पारायण ग्रंथ को सरलता से पढ़नेवाला)। धारयन् उपनिषदम् (उपनिषद् को सरलता से धारण करनेवाला)।। अधि इङ् अ नुम् त्, यहाँ इयङ् (६।४।७७ से), तथा सवर्णदीर्घ होकर, अधीय् अन् त् रहा । संयोगान्तलोप होकर अधीयन् बन गया । इसी प्रकार 'धृङ् अवस्थाने' (तुदा० आ०) धातु से धारयन् भी बनेगा । हेतुमति च (३।१।२६) से यहां णिच हो ही जायेगा ।।

यहाँ से 'शतृ' की अनुवृत्ति ३।२।१३३ तक जायेगी ।।

द्विषोऽमित्रे ।।३।२।१३१।।

द्विषः ५।१।। अमित्रे ७।१।। स०—न मित्रम् अमित्रं, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अमित्रे कर्त्तरि वाच्ये द्विष-धातोः शतृप्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ।। उदा०—द्विषन्, द्विषन्तौ ।।

भाषार्थः—[द्विषः] द्विष धातु से [अमित्रे] अमित्र=शत्रु कर्त्ता वाच्य हो, तो शतृ प्रत्यय वर्त्तमानकाल में होता है ।। उदा०—द्विषन् (शत्रु), द्विषन्तौ ।।

सुञो यज्ञसंयोगे ॥३।२।१३२॥

सुञः ५।१॥ यज्ञसंयोगे ७।१॥ स०—यज्ञेन संयोगः यज्ञसंयोगः, तस्मिन्, तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः,परश्च ॥ अर्थः-यज्ञसंयुक्तेऽभिषवे वर्त्तमानात् 'षुञः' धातोः शतृप्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—यजमानाः सुन्वन्तः ॥

भाषार्थः—[यज्ञसंयोगे] यज्ञ से संयुक्त अभिषव में वर्त्तमान [सुञः] षुञ् धातु से वर्त्तमानकाल में शतृ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यजमानाः सुन्वन्तः (सोमरस निचोड़ते हुए यजमान) ॥ सिद्धि परि० १।१।५ के चिनुतः चिन्वन्ति की तरह जानें। शतृ के सार्वधातुक होने से श्नु विकरण होगा, भेद केवल इतना ही है कि यहाँ शतृ प्रत्यय है, अतः पूर्व प्रदर्शित की हुई सिद्धियों के समान नुम् आगम होकर 'सुन्वन्त्' बन गया। अब 'जस्' विभक्ति आकर रुत्व विसर्जनीयादि होकर सुन्वन्तः बन गया ॥

अर्हः प्रशंसायाम् ॥३।२।१३३॥

अर्हः ५।१॥ प्रशंसायाम् ७।१॥ अनु०—शतृ, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः-अर्हधातोः प्रशंसायां गम्यमानायां वर्त्तमाने काले शतृप्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अर्हन् इह भवान् विद्याम्। अर्हन् इह भवान् पूजाम् ॥

भाषार्थः—[अर्ह धातु से [प्रशंसायाम्] प्रशंसा गम्यमान हो, तो वर्त्तमानकाल में शतृ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अर्हन् इह भवान् विद्याम् (आप विद्या पढ़ने के योग्य हैं)। अर्हन् इह भवान् पूजाम् (आप सत्कार के योग्य हैं)। सिद्धि पूर्ववत् है॥

आ क्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥३।२।१३४॥

आ अ० ॥ क्वेः ५।१॥ तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ७।३॥ स०—स धात्वर्थः शीलं यस्य स तच्छीलः, बहुव्रीहिः। स धात्वर्थो धर्मो यस्य स तद्धर्मा, बहुव्रीहिः। साधु करोतीति साधुकारी, तस्य धात्वर्थस्य साधुकर्ता तत्साधुकारी, तत्पुरुषः। तच्छीलश्च तद्धर्मा च तत्साधुकारी च तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिणः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। अर्थः-अधिकारसूत्रमिदम्। आ एतस्मात् क्विप्संशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः, तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ते वेदितव्याः ॥ तच्छीलः=यः स्वभावतः फलनिरपेक्षस्तत्र प्रवर्त्तते। तद्धर्मा=यो विनाऽपि स्वभावेन ममायं धर्म इति प्रवर्त्तते। तत्साधुकारी=तत्कार्यकरणे कुशलः। उत्तरत्रैवोदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—यह अधिकारसूत्र है। भ्राजभास० (३।२।१७७) इस सूत्र से विहित [आ क्वेः] क्विप्पर्यन्त जितने प्रत्यय कहे हैं, वे सब [तच्छी······रिषु]

तच्छीलादि कर्त्ता अर्थों में जानने चाहिएं ॥ यहाँ अभिविधि में आङ् है, सो भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जि० ... अन्येभ्योऽपि० (३।२।१७८) तक यह अधिकार जायेगा ॥ तच्छील=फल की आकांक्षा बिना किये स्वभाव से ही उस क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला । तद्धर्मा=स्वभाव के बिना भी, अपना धर्म समझकर उस क्रिया में प्रवृत्त होनेवाला । तत्साधुकारी=उस क्रिया को कुशलता से करनेवाला ॥

तृन् ॥३।२।१३५॥

तृन् १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले धातुमात्रात् तृन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परुषं वदिता । मृदु वक्ता । तद्धर्मणि—वेदान् उपदेष्टा । धर्मम् उपदेष्टा । तत्साधुकारिणि—ओदनं पक्ता । कटं कर्त्ता ॥

भाषार्थः—तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में धातुमात्र से [तृन्] तृन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—परुषं वदिता (कठोर बोलने के स्वभाववाला), मृदु वक्ता (नरम बोलने के स्वभाववाला) । तद्धर्म—वेदान् उपदेष्टा (वेदों का उपदेश करनेवाला) । धर्मम् उपदेष्टा । तत्साधुकारी—ओदनं पक्ता (चावल अच्छी तरह पकानेवाला) । कटं कर्त्ता ॥ तृजन्त की सिद्धि हमने परि० १।१।२ में दिखाई है, उसी प्रकार वदिता आदि में जानें ॥ वक्ता में च् को क् चोः कुः (८।२।३०) से होता है । एकाच् उपदेशे० (७।२।१०) से इट आगम का निषेध होता है । उपपूर्वक दिश धातु से पूर्ववत् सब होकर, तथा व्रश्चभ्रस्ज० (८।२।३६) से श को ष्, एवं ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से त् को ट् होकर उपदेष्टा भी इसी प्रकार बनेगा । कृदतिङ् (३।१।९३) से इन सब प्रत्ययों की कृत् संज्ञा है । अतः कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से सब कर्त्ता में होंगे । इसीलिए 'तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो ऐसा सर्वत्र अर्थ किया जायेगा ॥

अलंकृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतु-वृधुसहचर इष्णुच् ॥३।२।१३६॥

अलंकृञ्......चरः ५।१॥ इष्णुच् १।१॥ स०—अलंकृ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अलंपूर्वक कृञ्, निर् आङ्पूर्वक कृञ्, प्रपूर्वक जन, उत्पूर्वक पच, उत्पूर्वक मद, रुचि, अपपूर्वक त्रप, वृतु, वृधु, सह, चर इत्येतेभ्यो धातुभ्य इष्णुच् प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले तच्छीलादिषु कर्त्तृषु ॥ उदा०—अलंकरिष्णुः । निराकरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । उत्पचिष्णुः । उन्मदिष्णुः । रोचिष्णुः । अपत्रपिष्णुः । वर्त्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । सहिष्णुः । चरिष्णुः ॥

भाषार्थः—[अलंकृ···चरः] अलंपूर्वक कृञ्, निर् आङ् पूर्वक कृञ्, प्र पूर्वक जन, उत् पूर्वक पच, उत् पूर्वक पत, उत् पूर्वक मद, रुचि, अप पूर्वक त्रप, वृतु, वृधु, सह, चर इन धातुओं से वर्त्तमान काल में तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो [इष्णुच्] इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अलंकरिष्णुः (सजाने के स्वभाववाला)। निराकरिष्णुः (हटानेवाला)। प्रजनिष्णुः (पैदा करने के स्वभाववाला)। उत्पचिष्णुः (अच्छा पकानेवाला)। उत्पतिष्णुः (ऊपर जाने के स्वभाववाला)। उन्मदिष्णुः (उन्माद-शील)। रोचिष्णुः (चमकने वाला)। अपत्रपिष्णुः (लज्जा-रहित)। वर्त्तिष्णुः (रहनेवाला)। वर्धिष्णुः (बढ़ने के स्वभाववाला)। सहिष्णुः (साहसी)। चरिष्णुः (घूमने के स्वभाववाला)॥ इष्णुच् का अनुबन्ध हटा देने पर 'इष्णु' रहेगा। जहाँ गुण सम्भव है, वहाँ गुण होकर सारी सिद्धियाँ होंगी। अलंकृइष्णु=अलंकर्इष्णु=अलंकरिष्णुः बना ॥

यहाँ से 'इष्णुच्' की अनुवृत्ति ३।२।१३८ तक जायेगी ॥

णेश्छन्दसि ॥३।२।१३७॥

णेः ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—इष्णुच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ण्यन्ताद् धातोर्वेदविषये तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काल इष्णुच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दृषदं धारयिष्णवः। वीरुधः पारयिष्णवः (ऋक् १०।६७।३) ॥

भाषार्थः—[णेः] ण्यन्त धातुओं से [छन्दसि] वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१३८ तक जायेगी ॥

भुवश्च ॥३।२।१३८॥

भुवः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—छन्दसि, इष्णुच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भूधातोः छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले इष्णुच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भविष्णुः ॥

भाषार्थः—[भुवः] भू धातु से [च] भी वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१३९ तक जायेगी ॥

ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः ॥३।२।१३९॥

ग्लाजिस्थः ५।१॥ च अ० ॥ ग्स्नुः १।१॥ स०—ग्लाश्च जिश्च स्थाश्च

ग्लाजिस्थाः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—भुवः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्ला जि स्था इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्चकारात् भुवश्च ग्स्नुप्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—ग्लास्नुः। जिष्णुः। स्थास्नुः। भूष्णुः॥

भाषार्थः—[ग्लाजिस्थः] ग्ला, जि, स्था, तथा [च] चकार से भू धातु से भी [ग्स्नुः] ग्स्नु प्रत्यय वर्त्तमानकाल में होता है, तच्छीलादि कर्त्ता हों तो॥ उदा०—ग्लास्नुः (ग्लानि करनेवाला)। जिष्णुः। स्थास्नुः (ठहरनेवाला)। भूष्णुः॥ सिद्धियाँ परि० १।१।५ में देखें॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः ॥३।२।१४०॥

त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः ५।१॥ क्नुः १।१॥ स०—त्रसिश्च गृधिश्च धृषिश्च क्षिपिश्च त्रसि……क्षिपिः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः,प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—त्रसी उद्वेगे, गृधु अभिकाङ्क्षायाम्, ञिधृषा प्रागल्भ्ये, क्षिप प्रेरणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु क्नुः प्रत्ययो भवति वर्तमाने काले॥ उदा०—त्रस्नुः। गृध्नुः। धृष्णुः। क्षिप्नुः॥

भाषार्थः—[त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः] त्रसि, गृधि, धृषि, तथा क्षिप धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [क्नुः] क्नु प्रत्यय होता है॥ उदा०—त्रस्नुः, (डरनेवाला)। गृध्नुः (लालची)। धृष्णुः (ढीठ)। क्षिप्नुः (प्रेरक)॥ अनुबन्ध हटने पर क्नु का 'नु' रह जायेगा। सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है। कित् होने से गुण का क्ङिति च (१।१।५) से निषेध हो जायेगा॥

शमित्यष्टाभ्यो घिनुण् ॥३।२।१४१॥

शमिति लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः॥ अष्टाभ्यः ५।३॥ घिनुण् १।१॥ स०—शम् इति=आदिः येषाम्, बहुव्रीहिः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—शमादिभ्योऽष्टाभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु घिनुण् प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले॥ 'शमु उपशमे' इत्यारभ्य'मदी हर्षे' इति यावत् शमादयो दिवादिषु वर्त्तन्ते॥ उदा०—शमी। तमी। दमी। श्रमी। भ्रमी। क्षमी। क्लमी। प्रमादी, उन्मादी॥

भाषार्थः—[शमिति] शमादि [अष्टाभ्यः] आठ धातुओं से [घिनुण्] घिनुण् प्रत्यय तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में होता है॥

यहाँ से 'घिनुण्' की अनुवृत्ति ३।२।१४५ तक जायेगी।

सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्यसपरिसृसंसृजपरिदेविसंज्वरपरिक्षिप-परिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीड-विविचत्यजरजभजातिचरापचरामुषाभ्याह-नश्च ॥३।२।१४२॥

सम्पृचा······हनः ५।१॥ च अ० ॥ स०—सम्पृचा० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थ—सम्+पृच, अनु+रुध, आङ्+यम्, आङ्+यस, परि+सृ, सम्+सृज, परि+देवि, सम्+ज्वर, परि+क्षिप, परि+रट, परि+वद, परि+दह, परि+मुह, दुष, द्विष, द्रुह, दुह, युज, आङ्+क्रीड, वि+विच, त्यज, रज, भज, अति+चर, अप+चर, आङ्+मुष, अभि आङ्+हन इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सम्पर्की। अनुरोधी। आयामी। आयासी। परिसारी। संसर्गी। परिदेवी। संज्वारी। परिक्षेपी। परिराटी। परिवादी। परिदाही। परिमोही। दोषी। द्वेषी। द्रोही। दोही। योगी। आक्रीडी। विवेकी। त्यागी। रागी। भागी। अतिचारी। अपचारी। आमोषी। अभ्याघाती॥

भाषार्थः—[सम्पृचा···हनः] सम् पूर्वक पृची सम्पर्के (रुधा० प०), अनु पूर्वक रुधिर् आवरणे (रुधा० उ०), आङ् पूर्वक यम उपरमे (भ्वा० प०), आङ् पूर्वक यसु प्रयत्ने (दिवा० प०), परि पूर्वक सृ गतौ (भ्वा० प०), सम् पूर्वक सृज विसर्गे (दिवा० आ०), परि पूर्वक देवृ देवने (भ्वा० आ०), सम् पूर्वक ज्वर रोगे (भ्वा० प०), परि पूर्वक क्षिप प्रेरणे (तुदा० उ०, दिवा० प०), परि पूर्वक रट परिभाषणे (भ्वा० प०), परि पूर्वक वद (भ्वा० प०), परि पूर्वक दह भस्मीकरणे (भ्वा० प०), परि पूर्वक मुह वैचित्ये (दिवा० प०), दुष वैकृत्ये (दिवा० प०), द्विष अप्रीतौ (अदा० उ०), द्रुह जिघांसायाम् (दिवा० प०), दुह प्रपूरणे (अदा० उ०), युजिर् योगे अथवा युज समाधौ (रुधा० उ०, दिवा० आ०), आङ् पूर्वक क्रीडृ विहारे (भ्वा० प०), वि पूर्वक विचिर् पृथग्भावे (रुधा० उ०), त्यज हानौ (भ्वा० प०), रञ्ज रागे (दिवा० उ०), भज सेवायाम् (भ्वा० उ०), अति पूर्वक चर गतौ (भ्वा० प०), तथा अप पूर्वक चर मुष स्तेये (क्र्या० प०), अभि आङ् पूर्वक हन (अदा० प०) इन धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में घिनुण् प्रत्यय होता है॥ उदा०—सम्पर्की (सम्पर्क करनेवाला)। अनुरोधी (अनुरोध करनेवाला)। आयामी (विस्तार करनेवाला)। आयासी (प्रयत्न करनेवाला)। परिसारी (सब जगह जानेवाला)। संसर्गी (संसर्ग करनेवाला)। परिदेवी (शोक करनेवाला)।

संज्वारी (रोगी)। परिक्षेपी (चारों ओर फेंकनेवाला)। परिराटी (खूब रटनेवाला)। परिवादी (खूब बोलनेवाला)। परिदाही (जलानेवाला)। परिमोही (खूब मोह करनेवाला)। दोषी (दोषयुक्त)। द्वेषी (द्वेष करनेवाला)। द्रोही (द्रोह करनेवाला)। दोही (दुहनेवाला)। योगी (योग करनेवाला)। आक्रीडी (खूब खेलनेवाला)। विवेकी (विवेकशील)। त्यागी (त्याग करनेवाला)। रागी (राग करनेवाला)। भागी (सेवन करनेवाला)। अतिचारी (खूब घूमनेवाला)। अपचारी (व्यभिचारी)। आमोषी (चोर)। अभ्याघाती (हिंसक)॥ रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप निपातन से होकर रागी बनता है। सम्पर्की, रागी, त्यागी आदि में पूर्ववत् चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व हो जायेगा। अत उपधायाः (७।२।११६) से आयासी आदि में घिनुण् के णित् होने से वृद्धि भी हो जायेगी। सब सिद्धियाँ पूर्वसूत्र के समान ही जानें॥

वौ कषलसकत्थस्रम्भः ॥३।२।१४३॥

वौ ७।१॥ कषलसकत्थस्रम्भः ५।१॥ स०—कष० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कष हिंसार्थः (भ्वा० प०), लस श्लेषणक्रीडनयोः (भ्वा० प०), कत्थ श्लाघायाम् (भ्वा० आ०) स्रम्भु विश्वासे (भ्वा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यो विशब्द उपपदे तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—विकाषी। विलासी। विकत्थी। विस्रम्भी॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक [कषलसकत्थस्रम्भः] कष, लस, कत्थ, स्रम्भ इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में घिनुण् प्रत्यय होता है॥ उदा०—विकाषी (मारनेवाला)। विलासी (विलास करनेवाला)। विकत्थी (आत्मश्लाघा करनेवाला)। विस्रम्भी (विश्वास करनेवाला)॥

यहाँ से 'वौ' की अनुवृत्ति ३।२।१४४ तक जायेगी॥

अपे च लषः ॥३।२।१४४॥

अपे ७।१॥ च अ०॥ लषः ५।१॥ अनु०—वौ, घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अपपूर्वात्, चकारात् विपूर्वाच्च लष कान्तौ इत्येतस्माद् धातोः वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु॥ उदा०—अपलाषी। विलाषी॥

भाषार्थः—[अपे] अप पूर्वक [च] तथा चकार से वि पूर्वक [लषः] लष धातु से भी घिनुण् प्रत्यय होता है॥ उदा०—अपलाषी (लालची)। विलाषी (लालची)॥

प्रे लपसृद्रुमथवदवसः ॥३।२।१४५॥

प्रे ७।१॥ लपसृद्रुमथवदवसः ५।१॥ स०—लप० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ **अनु०**—घिनुण्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—प्र उपपदे लप व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०), सृ, द्रु गतौ (भ्वा० प०), मथे विलोडने (भ्वा० प०), वद व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०), वस आच्छादने (अदा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले घिनुण् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—प्रलापी । प्रसारी । प्रद्रावी । प्रमाथी । प्रवादी । प्रवासी ॥

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [लपसृद्रुमथवदवसः] लप, सृ, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में घिनुण् प्रत्यय होता है ॥ **उदा०—प्रलापी (प्रलाप करनेवाला)। प्रसारी (घूमनेवाला)। प्रद्रावी (दौड़नेवाला)। प्रमाथी (मथनेवाला)। प्रवादी (खूब बोलनेवाला)। प्रवासी (विदेश में रहनेवाला)॥**

**निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादि-
व्याभाषासूयो वुञ् ॥३।२।१४६॥**

निन्द······सूयः १।१, पञ्चम्यर्थे प्रथमा ॥ वुञ् १।१॥ स०—निन्द० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ **अनु०**—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ **अर्थः**-णिदि कुत्सायाम् (भ्वा० प०), हिसि हिंसायाम् (रुधा० प०), क्लिशू विबाधने (क्र्या० प०), खादृ भक्षणे (भ्वा० प०), वि+णश अदर्शने ण्यन्त (दिवा० प०), परि+क्षिप, परि+रट, परि+वादि, वि+आ+भाष व्यक्तायां वाचि, असूय (कण्ड्वा०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—निन्दकः । हिंसकः । क्लेशकः । खादकः । विनाशकः । परिक्षेपकः । परिराटकः । परिवादकः । व्याभाषकः । असूयकः ॥

भाषार्थः—[निन्द······सूयः] **निन्द, हिंस इत्यादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [वुञ्] वुञ् प्रत्यय होता है ॥ वुञ् में ञित्करण वृद्धि के लिये है ॥ उदा०—निन्दकः (निन्दा करनेवाला)। हिंसकः (हिंसा करनेवाला)। क्लेशकः (कष्ट देनेवाला)। खादकः (खानेवाला)। विनाशकः (नाश करनेवाला)। परिक्षेपकः (चारों ओर फेंकनेवाला)। परिराटकः (अच्छी तरह रटनेवाला)। परिवादकः (चारों ओर से बजानेवाला)। व्याभाषकः (विविध बोलनेवाला)। असूयकः (निन्दक) ॥ णश तथा वद ण्यन्त धातुओं से वुञ् होता है, उस णि का**

णेरनिटि (६।४।५१) से लोप हो जायेगा। निदि हिसि धातुओं को इदितो नुम्० (७।१।५८) से नुम् आगम होकर निन्द हिंस बनता है। असूयकः में अतो लोपः (६।४।४८) से अकार का लोप होता है॥

यहाँ से 'वुञ्' की अनुवृत्ति ३।२।१४८ तक जायेगी॥

देविक्रुशोश्चोपसर्गे ॥३।२।१४७॥

देविक्रुशोः ६।२॥ च अ०॥ उपसर्गे ७।१॥ स०—देवि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—वुञ्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः,प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—दिवु कूजने (चुरा० उ०), अथवा दिवु क्रीडाद्यर्थकः (दिवा० प०), क्रुश आह्वाने इत्येताभ्यां सोपसर्गाभ्यां धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वुञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—आदेवकः, परिदेवकः। आक्रोशकः, परिक्रोशकः॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] सोपसर्ग [देविक्रुशोः] दिव तथा क्रुश धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में वुञ् प्रत्यय होता है। दिव धातु चुरादि अथवा दिवादिगण की ली गई है। चुरादिवाली से तो चुरादिभ्यो णिच् (३।१।२५) से णिच् हो ही जायेगा, तथा दिवादिवाली से हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् लाकर णिजन्त से प्रत्यय लावेंगे। पुनः णिच् का पूर्ववत् लोप हो जायेगा॥ उदा०—आदेवकः (जुआ खेलनेवाला), परिदेवकः (खेलनेवाला)। आक्रोशकः (क्रुद्ध होकर चिल्लानेवाला), परिक्रोशकः (सब ओर से चिल्लानेवाला)॥

चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥३।२।१४८॥

चलनशब्दार्थात् ५।१॥ अकर्मकात् ५।१॥ युच् १।१॥ स०—चलनं च शब्दश्च चलनशब्दौ, तौ अर्थौ यस्य (जातौ एकवचनम्) स चलनशब्दार्थः (धातुः), तस्मात्, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः। न विद्यते कर्म यस्य सोऽकर्मकः, तस्मात्, बहुव्रीहिः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अकर्मकेभ्यश्चलनार्थेभ्यश्च धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—चलनः। चोपनः। शब्दार्थेभ्यः—शब्दनः। रवणः॥

भाषार्थः—[अकर्मकात्] अकर्मक जो [चलनशब्दार्थात्] चलनार्थक और शब्दार्थक धातुएं उनसे तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [युच्] युच् प्रत्यय होता है॥ उदा०—चलनः (चलनेवाला)। चोपनः (मन्द गति करनेवाला) शब्दार्थकों से—शब्दनः (शब्द करनेवाला)। रवणः (शब्द करनेवाला)॥ यु को अन युवोरनाकौ (७।१।१) से हो ही जायेगा। रु को गुण तथा अवादेश होकर रवणः बनेगा॥

यहां से 'अकर्मकात्' की अनुवृत्ति ३।२।१४९ तक, तथा 'युच्' की अनुवृत्ति ३।२।१५३ तक जायेगी ॥

अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥३।२।१४९॥

अनुदात्तेतः ५।१॥ च अ० ॥ हलादेः ५।१॥ स०—अनुदात्त इत् यस्य स अनुदात्तेत्, तस्मात्, बहुव्रीहिः । हल् आदिः यस्य स हलादिः, तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्मकात्, युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुदात्तेत् यो हलादिरकर्मको धातुस्तस्माद् युच् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—वर्त्तनः । वर्द्धनः । स्पर्द्धनः ॥

भाषार्थः—[अनुदात्तेतः] अनुदात्तेत् जो [हलादेः] हल् आदिवाली अकर्मक धातुएं उनसे [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में युच् प्रत्यय होता है ॥ वृतु वृधु तथा स्पर्ध धातुएं, अनुदात्तेत् हलादि तथा अकर्मक हैं, अतः इनसे युच् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—वर्त्तनः (बरतनेवाला) । वर्द्धनः (बढ़नेवाला) । स्पर्द्धनः (स्पर्द्धा करनेवाला) ॥

जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः ॥३।२।१५०॥

जुच···पदः ५।१॥ स०—जुच० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'जु' इति सौत्रो धातुः । चङ्क्रम्य दन्द्रम्य इति द्वौ यङन्तौ । जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, सृ, गृधु अभिकाङ्क्षायां, ज्वल दीप्तौ, शुच शोके, लष कान्तौ, पत्लृ गतौ, पद गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यतच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जवनः । चङ्क्रमणः । दन्द्रमणः । सरणः । गर्द्धनः । ज्वलनः । शोचनः । लषणः । पतनः । पदनः ॥

भाषार्थः—'जु' यह सौत्र धातु है । चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, ये यङन्त धातुयें हैं । [जुच···पदः] जु, चङ्क्रम्य, दन्द्रम्य, सृ, गृधु, ज्वल, शुच, लष, पत, पद इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में युच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जवनः (गति करनेवाला) । चङ्क्रमणः (टेढ़े-मेढ़े गति करनेवाला) । दन्द्रमणः (टेढ़ी गति करनेवाला) । सरणः (गति करनेवाला) । गर्द्धनः (लालची) । ज्वलनः (जलनेवाला) । शोचनः (शोक करनेवाला) । लषणः (लालची) । पतनः (गिरनेवाला) । पदनः (गति करनेवाला) ॥ क्रम तथा द्रम धातुओं से 'यङ्' होकर चङ्क्रम्य दन्द्रम्य नई धातुयें बनेंगी, जिनकी सिद्धि परि० ३।१।२३ पर देखें । आगे

चङ् क्रम्य और दन्द्रम्य से युच् होकर यु को 'अन' हो जाता है। यस्य हल:(६।४।४९) से 'य' का लोप भी यहाँ हो जायेगा ॥

क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च ॥३।२।१५१॥

क्रुधमण्डार्थेभ्य: ५।३॥ च अ० ॥ स०—क्रुधश्च मण्डश्च क्रुधमण्डौ, तौ अर्थौ येषां ते क्रुधमण्डार्था:,तेभ्य:, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहि: ॥ अनु०—युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—क्रुधार्थेभ्यो मण्डार्थेभ्यश्च धातुभ्य: तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—क्रोधन: । रोषण: । मण्डार्थेभ्य:—मण्डन: । भूषण: ॥

भाषार्थ:—[क्रुधमण्डार्थेभ्य:] क्रुधार्थक तथा मण्डार्थक धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में युच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—क्रोधन: (क्रोध करनेवाला) । रोषण: (रोष करनेवाला) । मण्डार्थकों से—मण्डन: (सजानेवाला) । भूषण: (सजानेवाला) ॥

न य: ॥३।२।१५२॥

न अ० ॥ य: ५।१॥ अनु०—युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—यकारान्ताद् धातोर्युच् प्रत्ययो न भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—क्नूयिता । क्ष्मायिता ॥

भाषार्थ:—[य:] यकारान्त धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में युच् प्रत्यय [न] नहीं होता है ॥ सामान्य करके अनुदात्ते० (३।२।१४९) इत्यादि से युच् की प्राप्ति में यह निषेध है ॥ उदा०—क्नूयिता (शब्द करनेवाला)। क्ष्मायिता (कम्पित होनेवाला) । उदाहरण में अनुदात्ते० (३।२।१४९) से क्नूयी क्ष्मायी से युच् प्राप्त था, वह नहीं हुआ, तो औत्सर्गिक तृन् (३।२।१३५) से तृन् प्रत्यय हो गया । सेट् होने से इट् आगम हो ही जायेगा । परि० १।१।२ की तरह सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'न' की अनुवृत्ति ३।२।१५३ तक जायेगी ॥

सूददीपदीक्षश्च ॥३।२।१५३॥

सूददीपदीक्ष: ५।१॥ च अ० ॥ स०—सूद० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्व: ॥ अनु०—न, युच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु,वर्त्तमाने, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—षूद क्षरणे (भ्वा० आ०), दीपी दीप्तौ (दिवा० आ०), दीक्ष मौण्ड्ये (भ्वा० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले युच् प्रत्ययो न भवति ॥ उदा०—सूदिता । दीपिता । दीक्षिता ॥

भाषार्थः—[सूददीपदीक्षः] षूद, दीपी, दीक्ष इन धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में युच् प्रत्यय नहीं होता ।। यह भी अनुदात्तेतश्च हलादेः (३।२।१४९) का अपवादसूत्र है। युच् का प्रतिषेध हो जाने पर पूर्ववत् औत्सर्गिक तृन् हो जाता है ।। उदा०—सूदिता (क्षरित होनेवाला)। दीपिता (प्रदीप्त होनेवाला)। दीक्षिता (दीक्षित होनेवाला) ।।

लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्य उकञ् ।।३।२।१५४।।

लषपत···शृभ्यः ५।३।। उकञ् १।१।। स०–लष० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः।। अनु०–तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—लष, पत, पद, स्था, भू, वृषु सेचने (भ्वा० प०), हन, कमु कान्तौ (भ्वा० आ०), गम, शृ हिंसायाम् (क्र्या० प०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले उकञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—अपलाषुकं वृषलसङ्गतम् । प्रपातुका गर्भा भवन्ति । उपपादुकं सत्त्वम् । उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति । प्रभावुकमन्नं भवति । प्रवर्षुकाः पर्जन्याः । आघातुकः । कामुकः । आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः । किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः ।।

भाषार्थः—[लष ·····शृभ्यः] लष, पत इत्यादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [उकञ्] उकञ् प्रत्यय होता है ।। उदा०—अपलाषुकं वृषलसङ्गतम् (वृषल की सङ्गति अनुचित होती है)। प्रपातुका गर्भा भवन्ति (गर्भ पतनशील होते हैं)। उपपादुकं सत्त्वम् (उपपादन करनेवाला पदार्थ)। उपस्थायुका एनं पशवो भवन्ति (इसके प्रति पशु उपस्थित होते हैं)। प्रभावुकमन्नं भवति (प्रभाव करनेवाला अन्न होता है)। प्रवर्षुकाः पर्जन्याः (बरसनेवाले बादल)। आघातुकः (हिंसक)। कामुकः (काम से पीडित)। आगामुकं वाराणसीं रक्ष आहुः। किंशारुकं तीक्ष्णमाहुः (तीर को तीक्ष्ण कहते हैं) ।। उकञ् के ञित् होने से वृद्धि हो जाती है। उपस्थायुकः में आतो युक्० (७।३।३३) से युक् का आगम भी हुआ है ।।

जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन् ।।३।२।१५५।।

जल्प···वृङः ५।१।। षाकन् १।१।। स०—जल्प० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—जल्प व्यक्तायां वाचि (भ्वा० प०), भिक्ष भिक्षायाम् (भ्वा० आ०), कुट्ट छेदनभर्त्सनयोः (चुरा० प०)। लुण्ठ स्तेये (चुरा० प०), वृङ् सम्भक्तौ (क्र्या० आ०) इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु षाकन् प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ।। उदा०—जल्पाकः । भिक्षाकः । कुट्टाकः । लुण्ठाकः, लुण्टाक इत्येके । वराकः, वराकी ।।

भाषार्थः—[जल्प······वृङः] जल्पादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [षाकन्] षाकन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जल्पाकः (व्यर्थ बोलनेवाला)। भिक्षाकः (भिक्षा मांगनेवाला) । कुट्टाकः (छेद करनेवाला)। लुण्ठाकः (लूटनेवाला) । वराकः (बेचारा, दीन) ॥ षाकन् का अनुबन्ध हट जाने पर 'आक' रह जाता है। षाकन् में षित् होने से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में षिद्-गौरादिभ्यश्च (४।१।४१)से ङीष होगा। वृ आक=वर् आक=वराक ङीष्=वराकी बना है ॥

प्रजोरिनिः ॥३।२।१५६॥

प्रजोः ५।१॥ इनिः १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रपूर्वाद् 'जु' धातोः तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काल इनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रजवी, प्रजविनौ ॥

भाषार्थः—[प्रजोः] प्र पूर्वक जु धातु से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमान काल में [इनिः] इनि प्रत्यय होता है ॥ प्र जु इन्=प्र जो इन्=प्रजव् इन् सु, पूर्ववत होकर सौ च (६।४।१३)से दीर्घ, तथा नकारलोप आदि पूर्ववत् होकर प्रजवी (भागनेवाला) बना है ॥

यहां से 'इनिः' की अनुवृत्ति ३।२।१५७ तक जायेगी ॥

जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥३।२।१५७॥

जिदृ···सूभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—जिदृ० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—इनिः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जि जये, दृङ् आदरे, क्षि क्षये, अथवा क्षि निवासगत्योः, वि+श्रिञ् सेवायाम्, इण् गतौ, टुवम उद्गिरणे, नञ्पूर्वक व्यथ भयसञ्चलनयोः, अभिपूर्वक अम रोगे, परिपूर्वक भू, प्रपूर्वक षू प्रेरणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमानेऽर्थे इनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जयी । दरी । क्षयी । विश्रयी । अत्ययी । वमी । अव्यथी । अभ्यमी । परिभवी । प्रसवी ॥

भाषार्थः—[जिदृ···—प्रसूभ्यः] जि, दृ, क्षि आदि धातुओं से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में इनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जयी (जीतनेवाला) । दरी (आदर करनेवाला) । क्षयी (राजयक्ष्मा का रोगी)। विश्रयी (सेवा करनेवाला)। अत्ययी (उल्लङ्घन करनेवाला)। वमी (वमन करनेवाला)। अव्यथी (अभय)। अभ्यमी (रोगी)। परिभवी (पैदा होनेवाला)। प्रसवी (प्रेरणा देनेवाला) ॥ जयी क्षयी आदि में गुण होकर अयादेश हो जायेगा,

शेष पूर्ववत् हैं। अति पूर्वक इण् धातु को गुण अयादेश करके 'अति अयी', यणादेश होकर अत्ययी बन गया है। अभि अम इनि,यहाँ यणादेशादि होकर अभ्यमी बना है।।

स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच् ।।३।२।१५८।।

स्पृहि······श्रद्धाभ्यः ५।३।। आलुच् १।१।। स०—स्पृहि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—स्पृह ईप्सायाम्, गृह ग्रहणे, पत गतौ, दय दानगतिरक्षणेषु, निपूर्वः तत्पूर्वश्च द्रा कुत्सायां गतौ, श्रत्पूर्वः डुधाञ् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काल आलुच् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—स्पृहयालुः। गृहयालुः। पतयालुः। दयालुः। निद्रालुः। तन्द्रालुः। श्रद्धालुः ।।

भाषार्थः—[स्पृहि······श्रद्धाभ्यः] स्पृह गृह आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [आलुच्] आलुच् प्रत्यय होता है ।। उदा० —स्पृहयालुः (इच्छा करनेवाला)। गृहयालुः (ग्रहण करनेवाला)। पतयालुः (पतनशील)। दयालुः (दयाशील)। निद्रालुः(अधिक सोनेवाला)। तन्द्रालुः (आलसी)। श्रद्धालुः (श्रद्धावान्)।। स्पृह गृह पत ये तीन धातुयें चुरादिगण में अदन्त पढ़ी हैं, सो णिच् होकर सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से नयी धातु बनकर आलुच् होगा। स्पृह आदि में णिच् परे रहते अतो लोपः (६।४।४८) से इन तीनों के अकार का लोप होगा। अतः स्पृह गृह में पुगन्तलघू० (७।३।८६) से जब उपधा को गुण, तथा पत में अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होने लगेगी, तब यह अकार स्थानिवत् हो जायेगा। तो लघु एवं अकार उपधा न मिलने से गुण वृद्धि भी नहीं होंगी। आलुच् परे रहते 'स्पृह' आदि धातुओं को अयादेश होकर स्पृहयालुः आदि बनेगा। तन्द्रालु में तत् के अन्तिम तकार का नकार निपातन से हुआ है ।।

दाधेट्सिशदसदो रुः ।।३।२।१५९।।

दाधेट्······सदः ५।१।। रुः १।१।। स०—दाश्च धेट् च सिश्च शदश्च सद् च दाधेट्सिशदसद्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—दा, धेट्, षिञ् बन्धने, शद्लृ शातने, षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले रुः प्रत्ययो भवति ।। उदा०—दारुः। धारुः। सेरुः। शद्रुः। सद्रुः ।।

भाषार्थः—[दाधेट्सिशदसदः] दा, धेट्, सि, शद्, सद् इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [रुः] रु प्रत्यय हो जाता है ।। षिञ् तथा षद्लृ के ष को धात्वादेः० (६।१।६२) से स् हो जायेगा ।। उदा०—दारुः (दानी)। धारुः (पान करनेवाला)। सेरुः (बांधनेवाला)। शद्रुः (तेज करनेवाला)। सद्रुः (दुःख माननेवाला) ।।

सृघस्यदः क्मरच् ॥३।२।१६०॥

सृघस्यदः ५।१॥ क्मरच् १।१॥ स०—सृ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सृ, घसि, अद् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्मरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सृमरः । घस्मरः । अद्मरः ॥

भाषार्थः—[सृघस्यदः] सृ, घसि, अद धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [क्मरच्] क्मरच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—सृमरः (मृगविशेष) । घस्मरः (खाने के स्वभाववाला, खाऊ) । अद्मरः (खाने के स्वभाववाला) ॥ क्मरच् का अनुबन्ध हटने पर 'मर' रूप रह जाता है । कित् होने से गुण निषेध (१।१५ से) होता है ॥

भञ्जभासमिदो घुरच् ॥३।२।१६१॥

भञ्जभासमिदः ५।१॥ घुरच् १।१॥ स०—भञ्जश्च भासश्च मिद् च भञ्जभासमिद्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भञ्ज, भास, मिद् इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले घुरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भङ्गुरं काष्ठम् । भासुरं ज्योतिः । मेदुरः पशुः ॥

भाषार्थः—[भञ्जभासमिदः] भञ्ज, भास, मिद इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [घुरच्] प्रत्यय होता है ॥ उदा०—भङ्गुरं काष्ठम् (टूटनेवाली लकड़ी) । भासुरं ज्योतिः (दीप्तिशील ज्योति) । मेदुरः पशुः (चर्बीवाला = मोटा पशु) ॥ भङ्गुरम् की सिद्धि परि० १।३।८ में देखें । शेष सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है ॥

विदिभिदिच्छिदेः कुरच् ॥३।२।१६२॥

विदिभिदिच्छिदेः ५।१॥ कुरच् १।१॥ स०—विदि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विद्, भिद्, छिद इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले कुरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विदुरः । भिदुरं काष्ठम् । छिदुरा रज्जुः ॥

भाषार्थः—[विदिभिदिच्छिदेः] विद्, भिदिर्, छिदिर् इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [कुरच्] कुरच् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ विद से ज्ञानार्थक विद का ग्रहण है, न कि विद्लृ लाभे का । उदा०—विदुरः (पण्डित) । भिदुरं काष्ठम् (फटनेवाली लकड़ी) । छिदुरा रज्जुः (टूटनेवाली रस्सी) ॥ कुरच् का अनुबन्ध लोप होकर 'उर' रह जाता है ॥

इण्नशजिसर्त्तिभ्यः क्वरप् ॥३।२।१६३॥

इण्···सर्त्तिभ्यः ५।३॥ क्वरप् १।१॥ स०—इण्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इण् णश, जि, सृ इत्येतेभ्यो धातुभ्यतच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्वरप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—इत्वरः, इत्वरी । नश्वरः, नश्वरी । जित्वरः, जित्वरी । सृत्वरः, सृत्वरी ॥

भाषार्थः- [इण्नशजिसर्त्तिभ्यः] इण्, णश, जि, सृ इन धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [क्वरप्] क्वरप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—इत्वरः (गमनशील), इत्वरी । नश्वरः (नाशवान्), नश्वरी । जित्वरः (जयशील), जित्वरी । सृत्वरः (गमनशील), सृत्वरी ॥ क्वरप् का अनुबन्ध हटकर 'वर' शेष रहता है । इत्वरः,जित्वरः,सृत्वरः में क्वरप् के पित् होने से ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६।१।६६) से तुक् आगम होता है । कित् होने से उदाहरणों में गुण निषेध हो जायेगा । स्त्रीलिङ्ग में टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होकर इत्वरी आदि रूप भी जानें ॥

यहाँ से 'क्वरप्' की अनुवृत्ति ३।२।१६४ तक जायेगी ॥

गत्वरश्च ॥३।२।१६४॥

गत्वरः १।१॥ च अ०॥ अनु०—क्वरप्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गत्वर इति निपात्यते । गमधातोः क्वरप् प्रत्ययः अनुनासिकलोपश्च निपात्यते तच्छीलादिष्वर्थेषु वर्त्तमाने काले ॥

भाषार्थः—[गत्वरः] गत्वर यह शब्द [च] भी क्वरप्प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है । गम्लृ धातु से क्वरप् प्रत्यय तथा अनुनासिक का लोप तच्छीलादि अर्थों में वर्त्तमानकाल में निपातन किया है ॥ झल् परे रहते अनुनासिक का लोप(६।४।३७ से) कहा है । सो क्वरप् परे रहते प्राप्त नहीं था, अतः निपातन कर दिया । अनुनासिक का लोप हो जाने पर पूर्ववत् तुक् आगम हो ही जायेगा । ग तुक् क्वरप् =गत्वरः (गमनशील) बना ॥

जागुरूकः ॥३।२।१६५॥

जागुः ५।१॥ ऊकः १।१॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले जागर्त्तेर्धातोः 'ऊकः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जागरूकः ॥

भाषार्थः—[जागुः] जागृ धातु से [ऊकः] ऊक प्रत्यय होता है, तच्छीलादि कर्त्ता हों तो वर्त्तमानकाल में ॥ ऊक परे रहते जागृ को जागर् गुण होकर जागरूकः (जागरणशील) बना है ॥ इस सूत्र का 'जागरूकः' पाठ प्रायः उपलब्ध होता है ॥

यहां से 'ऊकः' की अनुवृत्ति ३।२।१६६ तक जायेगी ॥

यजजपदशां यङः ॥३।२।१६६॥

यजजपदशां ६।३॥ यङः ५।१॥ स०—यज० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ऊकः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज, जप, दश इत्येतेभ्यो यङन्तेभ्यो धातुभ्य ऊकः प्रत्ययो भवति, तच्छीलादिषु कर्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—यायजूकः । जञ्जपूकः । दन्दशूकः ॥

भाषार्थः—[यजजपदशाम्] यज, जप, दश इन [यङः] यङन्त धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में ऊक प्रत्यय होता है ॥

यायज्य जञ्जप्य दन्दश्य यङन्त धातु बनकर आगे इनसे 'ऊक' प्रत्यय होगा। जञ्जप्य दन्दश्य की सिद्धि परि० ३।१।२४ में देखें । आगे ऊक प्रत्यय के परे रहते यस्य हलः (६।४।४९) से यङ् के य का लोप होकर यायजूकः (खूब यज्ञ करनेवाला) । जञ्जपूकः (खूब जप करनेवाला) । दन्दशूकः (खूब काटनेवाला) बना है । 'यायज्य' की सिद्धि परि० ३।१।२२ के पापठ्यते की तरह जानें ॥

नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः ॥३।२।१६७॥

नमि······दीपः ५।१॥ रः १।१॥ स०—नमिश्च कम्पिश्च स्मिश्च अजसश्च कमश्च हिंसश्च दीप् च इति नमि···दीप, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्तमाने धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—णम प्रह्वत्वे शब्दे च, कपि चलने, ष्मिङ् ईषद्धसने नञ्पूर्वं जसु, मोक्षणे कमु कान्तौ, हिसि हिंसायाम् (दिवा० प०), दीपी दीप्त इत्येतेभ्यो धातोभ्यो वर्त्तमाने काले तच्छीलादिषु कर्त्तृषु 'रः' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नम्रं काष्ठम् कम्प्रा शाखा स्मेरं मुखम् । अजस्रं जुहोति । कम्रा युवतिः । हिंस्री दस्यु दीप्रं काष्ठम् ।

भाषार्थः—[नमि······दीपः] नमि कम्पि इत्यादि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [रः] र प्रत्यय होता है ॥ कपि हिसि धातुयें इदित् हैं। सो इदितो नुम्धातोः (७।१।५८) से नुम् आगम होकर कम्प् हिंस् बनता है ॥ उदा०—नम्रं काष्ठम् (नरम काष्ठ) । कम्प्रा शाखा (हिलनेवाली शाखा) । स्मेरं मुखम् (हंसनेवाला मुख) । अजस्रं जुहोति (निरन्तर याग करता है)। कम्रा युवतिः (सुन्दर युवती)। हिंस्रो दस्युः (हिंसक दस्यु)। दीप्रं काष्ठम् (जलती हुई लकड़ी) ॥

सनाशंसभिक्ष उः ॥३।२।१६८॥

सनाशंसभिक्षः ५।१॥ उः १।१॥ स०—सन च आशंसश्च भिक्ष च सनाशंस-भिक्ष, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च: ॥ अर्थः—सन् इति सन्नन्तस्य ग्रहणं, न तु सन् धातोः । सन्नन्तेभ्यो धातुभ्य आङः शसि इच्छायाम् (भ्वा० आ०), भिक्ष भिक्षायां लाभे अलाभे च (भ्वा० आ०) इत्येताभ्यां च धातुभ्याम् उः प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—चिकीर्षुः कटम् । वेदं जिज्ञासुः । व्याकरणं पिपठिषुः । आशंसुः । भिक्षुः ॥

भाषार्थः—[सनाशंसभिक्षः] सन्नन्त धातुओं से, तथा आङ् पूर्वक शसि, एवं भिक्ष धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [उः] उ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चिकीर्षुः कटम् (चटाई बनाने की इच्छावाला) । वेदं जिज्ञासुः (वेद को जानने की इच्छावाला) । व्याकरणं पिपठिषुः (व्याकरण पढ़ने की इच्छावाला) । आशंसुः (इच्छा करने के स्वभाववाला) । भिक्षुः (भिक्षा करने के स्वभाववाला) ॥ परि० १।१।५७ की तरह 'चिकीर्ष' की सिद्धि होकर उ प्रत्यय होगा । इसी प्रकार ज्ञा धातु से सन्नन्त जिज्ञास धातु परि० १।३।५७ की तरह बनेगी । पठ धातु से सन्नत में पिपठिष धातु बनकर पिपठिषुः बन जायेगा । सर्वत्र सन् के स के 'अ' का लोप 'उ' प्रत्यय के परे रहते अतो लोपः (६।४।४८) से होगा ॥ आङ् पूर्वक शसि धातु के इदित् होने से इदितो नुम्धातोः (७।१।५८) से नुम् होकर 'आशंस्' बना । आशंस् उ सु=आशंसुः । भिक्ष् उ सु=भिक्षुः बन गया ॥

यहाँ से 'उः' की अनुवृत्ति ३।२।१७० तक जायेगी ॥

विन्दुरिच्छुः ॥३।२।१६९॥

विन्दुः १।१॥ इच्छुः १।१॥ अनु०—उः, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विन्दुरित्यत्र 'विद ज्ञाने' इत्यस्माद् धातोरुः प्रत्ययः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले निपात्यते नुमागमश्च । एवम् इच्छुः, इत्यत्र 'इषु इच्छायाम्' (तुदा० प०) इत्येतस्माद् धातोः उकारप्रत्ययः छत्वं च निपात्यते, छत्वे कृते छे च (६।१।७१) इति तुगागमः श्चुत्वं च भवत्येव ॥

भाषार्थः—[विन्दुः] विन्दुः, यहाँ विद् धातु से तच्छीलादि अर्थों में वर्त्तमानकाल में उ प्रत्यय, तथा विद को नुम् का आगम निपातन से किया जाता है । इसी प्रकार [इच्छुः] इच्छु, यहाँ भी इषु धातु से 'उ' प्रत्यय, तथा इष् के 'ष्' को 'छ्' निपातन से हुआ है । छत्व करने के पश्चात् 'छे च' से तुक् आगम, तथा श्चुत्व ८।४।३९ से हो ही जायेगा ॥ उदा०—वेदनशीलो विन्दुः (ज्ञानशील) । एषणशीलो इच्छुः (इच्छुक) ॥

क्याच्छन्दसि ॥३।२।१७०॥

क्यात् ५।१॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—उ:,तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्य: इत्यनेन क्यच् (३।१।८), क्यङ् (३।१।११), क्यष् (३।१।१३) इत्येतेषां सामान्येन ग्रहणम् । क्यप्रत्ययान्ताद् धातोः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले छन्दसि विषये उ: प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवयुः (ऋ० ४।१।७) । सुम्नयुः (ऋ० १।७६।१०; २।३०।११; ६।२।३) । अघायवः (य० ४।३४, ११।७६) ॥

भाषार्थ:—[क्यात्] क्यप्रत्ययान्त धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [छन्दसि] वेदविषय में उ प्रत्यय होता है ॥ क्य से यहां क्यच् क्यङ् क्यष् इन तीनों का ग्रहण है । देव सुम्न तथा अघ शब्द से सुप आत्मनः क्यच् (३।१।८) से क्यच् प्रत्यय होकर 'देवय' 'सुम्नय' 'अघाय' सनाद्यन्ता धातवः (३।१।३२) से धातुयें बन गई । पुन: प्रकृत सूत्र से देवयुः सुम्नयुः, तथा बहुवचन में अघायवः बना । देवय सुम्नय, यहाँ क्यचि च (७।४।३३) से ईत्व प्राप्त था, पर न च्छन्दस्यपुत्रस्य (७।४।३५) से निषेध हो गया । 'अघाय', यहाँ क्यच् परे रहते अश्वाघस्यात् (७।४।३७) से 'अघ' के 'घ' को आत्व हो जाता है ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।२।१७१ तक जायेगी ॥

आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥३।२।१७१॥

आदृगमहनजनः ५।१॥ किकिनौ १।२॥ लिट् १।१॥ च अ० ॥ स०—आदृ० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः । किकिनौ इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये आत्=आकारान्तेभ्यः, ऋ=ऋकारान्तेभ्यः, गम, हन, जन इत्येतेभ्यश्च धातुभ्यः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले किकिनौ प्रत्ययौ भवतः, लिड्वत् च तौ प्रत्ययौ भवतः ॥ लिड्वदिति कार्यातिदेशः ॥ उदा०—पपिः सोमं ददिर्गाः (ऋ० ६।२३।४) । मित्रावरुणौ ततुरिः । दूरे ह्यध्वा जगुरिः (ऋ० १०।१०८।१) । जग्मिर्युवा (ऋ० ७।२०।१)। जघ्निर्वृत्रम् (ऋ० ६।६१।२०)। जज्ञिर्बीजम् ॥

भाषार्थ:—[आदृगमहनजनः] आत्=आकारान्त, ऋ=ऋकारान्त, तथा गम, हन जन धातुओं से तच्छीलादि कर्ता हों, तो वेदविषय में वर्त्तमानकाल में [किकिनौ] कि तथा किन् प्रत्यय होते हैं, [च] और उन कि किन् प्रत्ययों को [लिट्] लिट्वत् कार्य होता है । कि तथा किन् प्रत्ययों में स्वर में ही विशेष है, रूप तो इनका एक जैसा ही बनेगा । अतः उदाहरण पृथक्-पृथक् नहीं दिखाये हैं ॥

स्वपितृषोर्नजिङ् ॥३।२।१७२॥

स्वपितृषोः ६।२॥ नजिङ् १।१॥ स०—स्वपि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ञिष्वप् शये, ञितृषा पिपासायाम् इत्येताभ्यां धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले नजिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वप्नक् । तृष्णक् ॥

भाषार्थः—[स्वपितृषोः] स्वप् तथा तृष् धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [नजिङ्] नजिङ् प्रत्यय होता है ॥ 'स्वप्+नज्', 'तृष+नज्', यहाँ चोः कुः (८।२।३०) से ज् को ग्, तथा वाऽवसाने (८।४।५५) से क्, एवं रषाभ्यां नो० (८।४।१) से णत्व होकर स्वप्नक् (सोने के स्वभाववाला), तृष्णक् (पिपासु) बना है ॥

शॄवन्द्योरारुः ॥३।२।१७३॥

शॄवन्द्योः ६।२॥ आरुः १।१॥ स०—शॄ च वन्दिश्च शॄवन्दी, तयाः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शॄ हिंसायाम्, वदि अभिवादनस्तुत्योः इत्येताभ्यां धातुभ्यां तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले आरुः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शरारुः । वन्दारुः ॥

भाषार्थः—[शॄवन्द्योः] शॄ तथा वदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [आरुः] आरु प्रत्यय होता है ॥ वदि से इदितो नुम्० (७।१।५८) से नुम् होकर वन्द् बनेगा । शॄ को अर् गुण होकर शर् आरु=शरारुः (हिंसा करनेवाला) । वन्द् आरु=वन्दारुः (वन्दना करनेवाला) बनेगा ॥

भियः क्रुक्लुकनौ ॥३।२।१७४॥

भियः ५।१॥ क्रुक्लुकनौ १।२॥ स०—क्रुश्च क्लुकन् च क्रुक्लुकनौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ञिभी भये इत्येतस्माद् धातोः तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्तमाने काले क्रु क्लुकन् इत्येतौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—भीरुः । भीलुकः ॥

भाषार्थः—[भियः] भी धातु से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [क्रुक्लुकनौ] क्रु तथा क्लुकन् प्रत्यय हो जाते हैं ॥ उदा०—भीरुः (डरपोक) । भीलुकः (डरपोक) ॥ अनुबन्ध हटने पर क्रु का 'रु', तथा क्लुकन् का 'लुक' रूप शेष रहता है ॥ उभयत्र कित् होने से गुण-निषेध हो जाता है ॥

स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥३।२।१७५॥

स्थे…कसः ५।१॥ वरच् १।१॥ स०—स्थाश्च ईशश्च भासश्च पिसश्च कस् च स्थेशभासपिसकस्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ष्ठा गतिनिवृत्तौ, ईश ऐश्वर्ये, भासृ दीप्तौ, पिसृ गतौ, कस गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्थावरः। ईश्वरः। भास्वरः। पेस्वरः। कस्वरः ॥

भाषार्थः—[स्थेशभासपिसकसः] स्था, ईश आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [वरच्] वरच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—स्थावरः (जड़)। ईश्वरः (स्वामी)। भास्वरः (सूर्य)। पेस्वरः (गतिशील)। कस्वरः (गतिशील) ॥ वरच् का 'वर' रूप शेष रहेगा। स्थावरः, यहाँ एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषेध होता है। तथा ईश्वरः इत्यादि शेष शब्दों में नेड् वशि कृति (७।२।८) से निषेध होता है ॥

यहाँ से 'वरच्' की अनुवृत्ति ३।२।१७६ तक जायेगी ॥

यश्च यङः ॥३।२।१७६॥

यः ५।१॥ च अ० ॥ यङः ५।१॥ अनु०—वरच्, तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—या प्रापणे, अस्मात् यङन्ताद् धातोस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले वरच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यायावरः ॥

भाषार्थः—[यङः] यङन्त [यः] या प्रापणे धातु से [च] भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में वरच् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।१।५७ में देखें ॥

भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप् ॥३।२।१७७॥

भ्राज—स्तुवः ५।१॥ क्विप् १।१॥ स०—भ्राज० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भ्राजृ दीप्तौ, भासृ दीप्तौ, धुर्वी हिंसार्थः, द्युत दीप्तौ, ऊर्ज बलप्राणनयोः, पॄ पालनपूरणयोः, जु सौत्रो धातुः, ग्रावपूर्व ष्टुञ् स्तुतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्विप् प्रत्ययो भवति तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—विभ्राट्, विभ्राजौ। भाः, भासौ। धूः, धुरौ। विद्युत्। ऊर्क्, ऊर्जौ। पूः, पुरौ। जूः, जुवौ। ग्रावस्तुत्, ग्रावस्तुतौ ॥

भाषार्थः—[भ्राजभा…स्तुवः] भ्राज भास आदि धातुओं से तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में [क्विप्] क्विप् प्रत्यय होता है ॥)

यहाँ से 'क्विप्' की अनुवृत्ति ३।२।१७९ तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥३।२।१७८॥

अन्येभ्यः ५।३।। अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ **अनु०**—क्विप्, तच्छील-तद्धर्मतत्साधुकारिषु, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अन्येभ्योऽपि धातुभ्यस्तच्छीलादिषु कर्त्तृषु वर्त्तमाने काले क्विप् प्रत्ययो दृश्यते ॥ यतो विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ **उदा०**—पचतीति पक् । भिनत्तीति भित् । छित् । युक् ॥

भाषार्थः—[अन्येभ्यः] **अन्य धातुओं से** [अपि] **भी तच्छीलादि कर्त्ता हों, तो वर्त्तमानकाल में क्विप् प्रत्यय** [दृश्यते] **देखा जाता है । अर्थात् पूर्वसूत्र में जिन धातुओं से क्विप् विधान किया है, उनसे अन्य धातुओं से भी देखा जाता है ॥** उदा०—**पक् (पकानेवाला)** । भित् **(तोड़नेवाला)** । **छित् (छेदनेवाला)** । **युक जोड़नेवाला) ॥ पच् युज् धातुओं को** चोः कुः (८।२।३०) **से कुत्व हो जायेगा । भिदिर् छिदिर् के द् को त्** वाऽवसाने (८।४।५५) **से हो जायेगा ॥**

भुवः संज्ञान्तरयोः ॥३।२।१७९॥

भुवः ५।१।। संज्ञान्तरयोः ७।२।। स०—संज्ञा० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—क्विप्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः,परश्च ॥ **अर्थः**—भूधातोः संज्ञायाम्, अन्तरे च गम्यमाने क्विप् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—विभूः । स्वयम्भूः । अन्तरे—प्रतिभूः ॥

भाषार्थः—[भुवः] **भू धातु से** [संज्ञान्तरयोः] **संज्ञा तथा अन्तर गम्यमान हो, तो क्विप् प्रत्यय होता है ॥ अन्तर का अर्थ है—मध्य । ऋण देनेवाले तथा लेनेवाले के मध्य स्थित,दोनों के विश्वासपात्र व्यक्ति को प्रतिभूः कहा जाता है॥ उदा०—विभूः (किसी का नाम है) । स्वयम्भूः (ईश्वर) । अन्तर में—प्रतिभूः (जामिन)॥**

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१८० तक जायेगी ।

विप्रसंभ्यो ड्वसंज्ञायाम् ॥३।२।१८०॥

विप्रसम्भ्यः ५।३।। डु १।१।। असंज्ञायाम् ७।१।। **स०**—विप्र० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः । न संज्ञा असंज्ञा, तस्याम्, नञ्तत्पुरुषः ॥ **अनु०**—भुवः, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—वि प्र सम् इत्येवंपूर्वाद् भूधातोः डुः प्रत्ययो भवत्यसंज्ञायां गम्यमानायां वर्त्तमाने काले ॥ **उदा०**—विभुः । प्रभुः । सम्भुः ॥

भाषार्थः—[असंज्ञायाम्] **संज्ञा गम्यमान न हो, तो** [विप्रसंभ्यः] **वि प्र तथा सम् पूर्वक भू धातु से** [डुः] **डु प्रत्यय होता है वर्त्तमानकाल में ॥ डित् होने से** डित्यभस्यापि टेर्लोपः **इस वार्त्तिक से भू के टि भाग ऊ का लोप होकर विभ् उ=**

विभुः (व्यापक)। प्रभुः (स्वामी)। सम्भुः (उत्पन्न होनेवाला) आदि बन गये ॥

धः कर्मणि ष्ट्रन् ॥३।२।१८१॥

धः ५।१॥ कर्मणि ७।१॥ ष्ट्रन् १।१॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'धः' इत्यनेन धेट् डुधाञ् इति द्वौ निर्दिश्येते। 'धा' धातोः कर्मणि कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—धीयते असौ धात्री ॥

भाषार्थः—[धः] धा धातु से [कर्मणि] कर्मकारक में [ष्ट्रन्] ष्ट्रन् प्रत्यय होता है वर्त्तमानकाल में ॥ धा से यहाँ धेट् तथा डुधाञ् दोनों का ग्रहण है ॥ ष्ट्रन् में षितकरण षिद्गौ० (४।१।४१) से ङीष् करने के लिये है। ष्ट्रन् के षकार की इत् संज्ञा हो जाने पर ष्टुत्व होकर जो 'त्' को ट् हो गया था, वह भी हटकर त् रह जाता है। सो ष्ट्रन् का 'त्र' शेष रहता है। धेट् से धात्री बनाने में आदेच उपदे० (६।१।४४) से 'धे' को आत्व हो जायेगा। धात्र ई, यहाँ यस्येति च (६।४।१४८) से त्र के अ का लोप होकर धात्री (स्तनपान करानेवाली, तथा रोगी की परिचर्या करनेवाली) बना है ॥

यहाँ से 'ष्ट्रन्' की अनुवृत्ति ३।२।१८३ तक जायेगी ॥

दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ॥३।२।१८२॥

दाम्नी···नहः ५।१॥ करणे ७।१॥ स०—दाप् च नीश्च शसश्च युश्च युजश्च स्तुश्च तुदश्च सिश्च सिचश्च मिहश्च पतश्च दशश्च नह् च—दाम्···नह्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—ष्ट्रन्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दाप् लवने, णीञ् प्रापणे, शसु हिंसायाम्, यु मिश्रणे, युजिर् योगे, ष्टुञ् स्तुतौ, तुद व्यथने, षिञ् बन्धने, षिच क्षरणे, मिह सेचने, पत्लृ गतौ, दंश दशने, णह बन्धने, इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—दान्त्यनेनेति दात्रम्। नयन्ति प्राप्नुवन्त्यनेनेति नेत्रम्। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पतन्त्यनेन=पत्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्रम् ॥

भाषार्थः—[दाम्नी···नहः] दाप्, णी, शसु आदि धातुओं से [करणे] करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—दात्रम् (दरांती)। नेत्रम् (आँख)। शस्त्रम् (औजार)। योत्रम्। योक्त्रम् (जुए को हल से बांधने की रस्सी)। स्तोत्रम् (स्तुतिमन्त्र)। तोत्रम् (जिससे पीड़ा दी जाय)। सेत्रम् (बन्धन)। सेक्त्रम् (जिससे सींचा जाय)। मेढ्रम् (बादल)। पत्रम् (वाहन)। दंष्ट्रा (दाढ़)। नद्ध्रम् (बन्धन) ॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी ॥

हलसूकरयोः पुवः ॥३।२।१८३॥

हलसूकरयोः ७।२॥ पुवः ५।१॥ स०—हल० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—करणे, ष्ट्रन्, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पू इति पूङ्पूञोः सामान्येन ग्रहणम्। पू धातोः करणे कारके ष्ट्रन् प्रत्ययो भवति, तच्चेत् करणं हलसूकरयोरवयवो भवति ॥ उदा०—हलस्य पोत्रम्। सूकरस्य पोत्रम् ॥

भाषार्थः—[पुवः] पू धातु से करण कारक में ष्ट्रन् प्रत्यय होता है, यदि वह करण कारक [हलसूकरयोः] हल तथा सूकर का अवयव हो तो ॥ पू से पूङ् पूञ् दोनों का ग्रहण है ॥ उदा०—हलस्य पोत्रम् (हल का अगला भाग)। सूकरस्य पोत्रम् (सुअर के मुख का अगला भाग)॥

अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः ॥३।२।१८४॥

अर्त्तिः···चरः ५।१॥ इत्रः १।१॥ स०—अर्त्तिश्च लूश्च धूश्च सूश्च खनश्च सहश्च चर् च अर्त्ति···चर्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—करणे, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऋ गतौ, लूञ् छेदने, धू विधूनने, षू प्रेरणे, खनु अवदारणे, षह मर्षणे, चर गतिभक्षणयोः इत्येतेभ्यो धातुभ्यः करणे कारके इत्रप्रत्ययो भवति वर्त्तमाने काले ॥ उदा०—इयर्त्यनेन=अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम् ॥

भाषार्थः—[अर्त्तिलू···चरः] ऋ, लू, धू आदि धातुओं से करण कारक में [इत्रः] इत्र प्रत्यय वर्त्तमानकाल में होता है॥ कृत्संज्ञक होने से ये सब प्रत्यय कर्त्ता (३।४।६७) में प्राप्त थे, करण में विधान कर दिये हैं ॥ उदा०—अरित्रम् (चप्पू)। लवित्रम् (चाकू)। धवित्रम् (पङ्खा)। सवित्रम् (प्रेरणा देनेवाला)। खनित्रम् (रम्बा, फावड़ा)। सहित्रम् (सहन करनेवाला)। चरित्रम् (चरित्र)॥ यथाप्राप्त गुण अवादि आदेश होकर 'लवित्रम्' आदि की सिद्धि जानें ॥

यहाँ से 'इत्रः' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी ॥

पुवः संज्ञायाम् ॥३।२।१८५॥

पुवः ५।१॥ संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—इत्रः, करणे, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—संज्ञायां गम्यमानायां पूधातोः करणे कारके इत्रः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पवित्रं दर्भः। पवित्रं प्राणापानौ ॥

भाषार्थः—[पुवः] पू धातु से [संज्ञायाम्] संज्ञा गम्यमान हो, तो करण

कारक में इत्र प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पवित्रं दर्भः (यज्ञ का विशेष दर्भ जो अंगूठे में पहना जाता है)। पवित्रं प्राणापानौ ॥

यहां से 'पुवः' की अनुवृत्ति ३।२।१८६ तक जायेगी ॥

कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः ॥३।२।१८६॥

कर्त्तरि ७।१॥ च अ० ॥ ऋषिदेवतयोः ७।२॥ स०—ऋषि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पुवः, इत्रः, करणे, वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पूधातोः 'ऋषौ' करणे, देवतायाञ्च कर्त्तरि इत्रः प्रत्ययो भवति ॥ यथासङ्ख्यं ऋषिदेवतयोः सम्बन्धः ॥ उदा०—पूयतेऽनेनेति पवित्रोऽयम् ऋषिः । देवतायाम्—अग्निः पवित्रं स मां पुनातु ॥

भाषार्थः—पू धातु से [ऋषिदेवतयोः] ऋषि को कहना हो तो करण कारक में, [च] तथा देवता को कहना हो तो [कर्त्तरि] कर्त्ता में इत्र प्रत्यय होता है ॥ यहां करण तथा कर्त्ता के साथ ऋषि देवता का यथासङ्ख्य करके सम्बन्ध है ॥ उदा०—पवित्रोऽयम् ऋषिः (जिसके द्वारा पवित्र किया जाये, वह मन्त्र)। देवता में—अग्निः पवित्रं स मां पुनातु (अग्नि पवित्र है, वह मेरी रक्षा करे)॥

ञीतः क्तः ॥३।२।१८७॥

ञीतः ५।१॥ क्तः १।१॥ स०—ञि इत् यस्य स ञीत्, तस्मात्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ञीतो धातोर्वर्त्तमाने काले क्तः प्रत्ययो भवति ॥ सर्वधातुभ्यो भूते निष्ठा विहिता सा वर्त्तमाने न प्राप्नोति, अतोऽयमारभ्यते योगः ॥ उदा०—ञिमिदा—मिन्नः । ञिक्ष्विदा—क्ष्विण्णः । ञिधृषा—धृष्टः॥

भाषार्थः—[ञीतः] ञि जिसका इत् संज्ञक हो, ऐसी धातु से वर्त्तमानकाल में [क्तः] क्त प्रत्यय होता है ॥ भूतकाल में सब धातुओं से क्त (३।२।१०२ से) प्रत्यय कहा है। सो वर्त्तमानकाल में नहीं प्राप्त था, अतः यह सूत्र बनाया ॥ सिद्धियां परि० १।३।५ में देखें ॥

यहां से 'क्तः' की अनुवृत्ति ३।२।१८८ तक जायेगी ॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥३।२।१८८॥

मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—मतिश्च बुद्धिश्च पूजा च मतिबुद्धिपूजाः, मतिबुद्धिपूजा अर्था येषां ते मतिबुद्धिपूजार्थाः, तेभ्यः द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ अनु०—क्तः, वर्त्तमाने, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मतिः इच्छा, बुद्धिर्ज्ञानम्, पूजा सत्कारः । मत्यर्थेभ्यो बुद्ध्यर्थेभ्यः पूजार्थेभ्यश्च धातुभ्यो वर्त्तमाने काले क्तः प्रत्ययो

भवति ॥ उदा०—मत्यर्थेभ्य:—राज्ञां मत:। राज्ञाम् इष्ट:। बुद्धयर्थेभ्य:—राज्ञां बुद्ध:। राज्ञां ज्ञात:। पूजार्थेभ्य:—राज्ञां पूजित:॥

भाषार्थ:—[मतिबुद्धिपूजार्थेभ्य:] मत्यर्थक, बुद्धयर्थक तथा पूजार्थक धातुओं से [च] भी वर्त्तमानकाल में क्त प्रत्यय होता है ॥ मति=इच्छा। बुद्धि=ज्ञान। पूजा=सत्कार॥ राज्ञाम् में क्तस्य च वर्त्तमाने (२।३।६७) से षष्ठी विभक्ति होती है, तथा क्तेन च पूजायाम् (२।२।१२) से षष्ठी-समास का निषेध होता है॥ मत:—मन् धातु से क्त प्रत्यय होकर एकाच उपदेशे० (७।२।१०) से इट् निषेध, तथा अनुदात्तो पदेश० (६।४।३७) से अनुनासिकलोप होकर मत: बनेगा। इष्ट:—'इषु इच्छायाम्' से क्त प्रत्यय होता है। यहां उदितो वा (७।२।५६) से विकल्प होने से यस्य विभाषा (७।२।१५) से इट् निषेध होकर ष्टुत्व हुआ है। बुद्ध:—बुध धातु से क्त को झषस्त० (८।२।४०) से धत्व, तथा झलां जश् झशि (८।४।५२) से ध् को द् होकर बुद्ध: बना है। पूजित:—पूज धातु से पूज् इट् क्त=पूजित:। तथा ज्ञात:—ज्ञा धातु से ज्ञा क्त=ज्ञात: बन ही जायेगा॥

॥ इति द्वितीयः पादः ॥

—०—

तृतीयः पादः

उणादयो बहुलम् ॥३।३।१॥

उणादय: १।३॥ बहुलम् १।१॥ स०—उण् आदिर्येषां ते उणादय:, बहुव्रीहि:॥ अनु०—वर्त्तमाने, धातो:, प्रत्यय:, परश्च॥ अर्थ:—उणादय: प्रत्यया वर्त्तमाने काले धातुभ्यो बहुलं भवन्ति॥ उदा०—करोतीति कारु:। वाति गच्छति जानाति वेति वायु:। पाति रक्षतीति पायु:। जायु:। मायु:। स्वादु:। साधु:। आशु:॥

भाषार्थ:—धातुओं से [उणादय:] उणादि प्रत्यय वर्त्तमानकाल में [बहुलम्] बहुल करके होते हैं॥ उदा०—कारु: (शिल्पी)। वायु: (पवन अथवा परमेश्वर)। पायु: (गुदा)। जायु: (औषध)। मायु: (पित्त)। स्वादु: (खाने योग्य अन्न)। साधु: (सज्जन)। आशु: (शीघ्र चलनेवाला)॥ उदाहरणों में कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण् (उणा० १।१) से उण् प्रत्यय हुआ है। वा, पा, मा (मि) धातुओं को आतो युक्चिण्कृतो: (७।३।३३) से युक् आगम होकर वायु:, पायु:, मायु: बना है। कृ, जि धातुओं को अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि, एवं आयादेश होकर कारु: जायु: बना ह॥

उणादि प्रत्ययों का विधान थोड़ीसी धातुओं से किया है। पर इष्ट औरों से भी है, अतः यहाँ बहुल कहा है। सो बहुल कहने से प्रयोग देखकर जिन धातुओं से किसी प्रत्यय का विधान नहीं भी किया गया, तो भी वह हो जायेगा। यथा हृषेरुलच् (उणा० १।९६) से हृष् धातु से उलच् प्रत्यय कहा है। परन्तु बहुल कहने से शङ्कुला शब्द सिद्ध करने के लिये शकि धातु से भी उलच् प्रत्यय हो गया है। इसी प्रकार जो प्रत्यय नहीं भी कहे, उनका भी प्रयोग (शिष्टप्रयोग) देखकर बहुल कहने से विधान हो जायेगा। यथा—ऋ धातु से फिड और फिड्ड प्रत्यय नहीं कहे, तो भी ये प्रत्यय होकर ऋफिड और ऋफिड्ड प्रयोग बनते हैं। महाभाष्य में इसका विशदरूप से व्याख्यान किया है॥

यहाँ से 'उणादयः' की अनुवृत्ति ३।३।३ तक जायेगी॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥३।३।२॥

भूते ७।१॥ अपि अ० ॥ दृश्यन्ते क्रियापदम् ॥ अनु०—उणादयः, धातोः, प्रत्ययः परश्च ॥ अर्थः—भूते कालेऽप्युणादयः प्रत्यया दृश्यन्ते। पूर्वत्र वर्त्तमाने काले विहिताः, भूतेऽपि विधीयन्ते ॥ उदा०—वृत्तमिदं वर्त्म। चरितं तच्चर्म। भसितं तदिति भस्म ॥

भाषार्थः—उणादि प्रत्यय धातु से [भूते] भूतकाल में [अपि] भी [दृश्यन्ते] देखे जाते हैं॥ पूर्वसूत्र से वर्त्तमानकाल में प्रत्यय प्राप्त थे। भूत में भी हों, इसीलिये यह सूत्र बनाया॥ उदा०—वर्त्म (मार्ग)। चर्म (चमड़ा)। भस्म (राख)॥ सर्वधातुभ्यो मनिन् (उणा० ४।१४५) से वृत् चर आदि धातुओं से मनिन् प्रत्यय भूतकाल में हुआ है। वर्त्मन् सु, स्वमोर्नपुंसकात् (७।१।२३) से सु का लुक्, तथा न लोपः० (८।२।७) से नकारलोप हो जायेगा॥

भविष्यति गम्यादयः ॥३।३।३॥

भविष्यति ७।१॥ गम्यादयः १।३॥ स०—गमी आदिर्येषां ते गम्यादयः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—उणादयः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उणादिषु ये गम्यादयः शब्दास्ते भविष्यति काले साधवो भवन्ति। अर्थाद् गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले भवन्ति ॥ उदा०—गमी ग्रामम्। आगामी। प्रस्थायी। प्रतिरोधी। प्रतिबोधी। प्रतियोधी। प्रतियोगी। प्रतियायी। आयायी। भावी॥

भाषार्थः—उणादिप्रत्ययान्त [गम्यादयः] गम्यादि शब्दों में जो प्रत्यय विधान किये हैं, वे [भविष्यति] भविष्यत्काल में होते हैं॥

यहाँ से 'भविष्यति' की अनुवृत्ति ३।३।१५ तक जायेगी॥

यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥३।३।४॥

यावत्पुरानिपातयो: ७।२॥ लट् १।१॥ स०—यावत् च पुरा च यावत्पुरौ, यावत्पुरौ च तौ निपातौ च=यावत्पुरानिपातौ, तयोः, द्वन्द्वगर्भकर्मधारयतत्पुरुष: ॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यावत्पुराशब्दयोर्निपातयोरुपपदयोर्भविष्यति काले धातोर्लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यावद् भुङ्क्ते । पुरा भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[यावत्पुरानिपातयोः] यावत् तथा पुरा निपात उपपद हों, तो भविष्यत् काल में धातु से [लट्] लट् प्रत्यय होता है ॥ भुङ्क्ते की सिद्धि परिशिष्ट १।३।६४ के प्रयुङ्क्ते के समान ही जानें ॥

यहाँ से 'लट्' की अनुवृत्ति ३।३।९ तक जायेगी ॥

विभाषा कदाकर्ह्योः ॥३।३।५॥

विभाषा १।१॥ कदाकर्ह्योः ७।२॥ स०—कदा च कर्हि च कदाकर्ही, तयोः, इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कदा कर्हि इत्येतयोरुपपदयोर्धातोर्भविष्यति काले विभाषा लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कदा भुङ्क्ते, कदा भोक्ष्यते, कदा भोक्ता । कर्हि भुङ्क्ते, कर्हि भोक्ष्यते, कर्हि भोक्ता ॥

भाषार्थः—[कदाकर्ह्योः] कदा तथा कर्हि उपपद हों, तो धातु से भविष्यत्-काल में [विभाषा] विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ विभाषा कहने से पक्ष में भविष्यत् काल के लकार लृट् तथा लुट् हो जायेंगे॥ उदा०—कदा भुङ्क्ते (कब खायेगा), कदा भोक्ष्यते, कदा भोक्ता । कर्हि भुङ्क्ते (कब खायेगा), कर्हि भोक्ष्यते, कर्हि भोक्ता ॥ 'भोज् स्य ते' पूर्ववत् (३।१।३३ से) होकर, चोः कुः (८।२।३०) तथा खरि च (८।४।५४) से कुत्व, तथा आदेश प्र० (८।३।५९) से षत्व होकर 'भोक्ष्यते' बनेगा । भोक्ता के लिये परिशिष्ट १।१।६ देखें ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।३ ९ तक जायेगी ॥

किंवृत्ते लिप्सायाम् ॥३।३।६॥

किंवृत्ते ७।१॥ लिप्सायाम् ७।१॥ स०—किमो वृत्तं किंवृत्तं, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः,परश्च ॥ अर्थः—लब्धुमिच्छा=लिप्सा । लिप्सायाम्=अभिलाषे गम्यमाने किंवृत्त उपपदे भविष्यति काले धातोर्विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कं कतरं कतमं वा भवान् भोजयति, भोजयिष्यति, भोजयिता वा । कस्मै भवानिदं पुस्तकं ददाति, दास्यति, दाता वा ॥

भाषार्थः—[लिप्सायाम्] लिप्सा गम्यमान होने पर [किंवृत्ते] किंवृत्त उपपद हो, तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय होता है ॥ किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का नाम लिप्सा है ॥ किंवृत्त से किम् शब्द की सारी विभक्ति सहित, तथा डतर डतम प्रत्ययान्त जो कतर कतम (५।३।९२-९३) शब्द ये सब लिये जायेंगे ॥ उदा०—कं कतरं कतमं वा भवान् भोजयति (किसको आप खिलायेंगे), भोजयिष्यति भोजयिता वा । कस्मै भवानिदं पुस्तकं दास्यति ददाति दाता वा (किसको आप यह पुस्तक देंगे) ॥ लेने की इच्छावाला कोई पूछता है कि आप किसको देंगे वा किसे खिलायेंगे,अर्थात् मुझे दे दो । सो यहाँ लिप्सा है । पक्ष में लृट् एवं लुट् होते है ॥ भुज् णिजन्त धातु से लट् आदि लकार आये हैं ॥

लिप्स्यमानसिद्धौ च ॥३।३।७॥

लिप्स्यमानसिद्धौ ७।१॥ च अ० ॥ लिप्स्यते प्राप्तुमिष्यते तल्लिप्स्यमानम् कर्मणि शानच् ॥ स०—लिप्स्यमानात् सिद्धिः लिप्स्यमानसिद्धिः, तस्मिन्, पञ्चमीतत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः,प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लिप्स्यमानात् (अभीप्सितपदार्थात्) सिद्धौ गम्यमानायां धातोर्भविष्यति काले विकल्पेन लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छति । यो भक्तं दास्यति दाता वा स स्वर्गं गमिष्यति गन्ता वा ॥

भाषार्थः—[लिप्स्यमानसिद्धौ] लिप्स्यमान=चाहे जाते हुए अभीष्ट पदार्थ से सिद्धि गम्यमान हो, तो [च] भी भविष्यत्काल में धातु से विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यो भक्तं ददाति स स्वर्गं गच्छति (जो चावल देगा वह स्वर्ग को जायेगा) । यो भक्तं दास्यति दाता वा स स्वर्गं गमिष्यति गन्ता वा ॥ उदाहरण में अभीष्ट लिप्स्यमान पदार्थ भात है। उस से स्वर्ग की सिद्धि होगी ऐसा कोई भिक्षुक कह रहा है, ताकि मुझे लोग भात दे दें।सो लिप्स्यमान से सिद्धि है । भविष्यत्काल में लृट् तथा लुट् लकार ही प्राप्त थे, लट् भी विधान कर दिया है । लिप्स्यमान में कर्म में शानच् हुआ है । गमेरिट् परस्मैपदेषु (७।२।५८) से गमिष्यति में इट् हुआ है ॥

लोडर्थलक्षणे च ॥३।३।८॥

लोडर्थलक्षणे ७।१॥ च अ० ॥ स०—लोटोऽर्थः लोडर्थः=प्रैषादिः, षष्ठीतत्पुरुषः । लक्ष्यते अनेनेति लक्षणम् । लोडर्थस्य लक्षणं लोडर्थलक्षणम्, तस्मिन्,षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लोडर्थलक्षणे वर्त्तमानाद् धातोर्भविष्यति काले लट् प्रत्ययो भवति विकल्पेन ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व ॥

भाषार्थ:—[लोडर्थलक्षणे] लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से [च] भी भविष्यत्काल में विकल्प से लट् प्रत्यय होता है ॥ लोट् का अर्थ है—प्रैषादि (करो, करो ऐसा प्रेरित करना), वह लोडर्थ प्रैषादि लक्षित हो जिसके द्वारा वह लोडर्थलक्षण धातु हुई, सो ऐसी धातु से जो लोडर्थ को लक्षित करे, उससे लट् प्रत्यय विकल्प से होगा ॥ अतः उदाहरणों में लोडर्थ (प्रैष) अधीष्व है। वह आगमन क्रिया से लक्षित किया जा रहा है। सो गम धातु से पक्ष में लृट् तथा लुट् लकार हो गये हैं ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदा गच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व (उपाध्याय जी यदि आ जावेंगे, तो तुम छन्द तथा व्याकरण पढ़ना) ॥

यहाँ से 'लोडर्थलक्षणे' की अनुवृत्ति ३।३।६ तक जायेगी ॥

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ॥३।३।६॥

लिङ् १।१॥ च अ० ॥ ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके ७।१॥ स०—मुहूर्त्ताद् ऊर्ध्वं ऊर्ध्वमुहूर्त्तम्, निपातनात् पञ्चमीतत्पुरुषः ॥ ऊर्ध्वमुहूर्त्ते भवम् ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकम्, तस्मिन् । कालाट्ठञ् (४।३।११) इति ठञ् प्रत्ययः, उत्तरपदवृद्धिश्च निपातनात् ॥ अनु०—लोडर्थलक्षणे, विभाषा, लट्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके भविष्यति काले लोडर्थलक्षणे वर्त्तमानाद् धातोर्विकल्पेन लिङ्, चकारात् लट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मुहूर्त्तस्य पश्चाद् उपाध्यायश्चेद् आगच्छेत् आगच्छति आगमिष्यति आगन्ता वा, अथ त्वं छन्दोऽधीष्व ॥

भाषार्थ:—[ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके] मुहूर्त्त=दो घड़ी से ऊपर के भविष्यत्काल को कहना हो, तो लोडर्थलक्षण में वर्त्तमान धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है, [च] चकार से लट् भी होता है ॥ उदाहरण में मुहूर्त्तभर से ऊपर भविष्यत्काल को कहना है, अत लिङ्, तथा पक्ष में भविष्यत् काल के लृट् एवं लुट् प्रत्यय होंगे, चकार से लट् भी होगा। अतः चारों लकार इस विषय में बोले जा सकते हैं ॥ लोडर्थ अधीष्व है, सो वह आगमन क्रिया से लक्षित हो रहा है। अतः गम् धातु से लिङ् आदि लकार हो गये हैं ॥

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥३।३।१०॥

तुमुन्ण्वुलौ १।२॥ क्रियायाम् ७।१॥ क्रियार्थायाम् ७।१॥ स०—तुमुन् च ण्वुल् च तुमुन्ण्वुलौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । क्रियायै इयं क्रियार्था, तस्यां क्रियार्थायाम्, चतुर्थीतत्पुरुषः ॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे धातोर्भविष्यति काले तुमुन्ण्वुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—भोक्तुं व्रजति । भोजको व्रजति ॥

भाषार्थः—[क्रियार्थायां क्रियायाम्] क्रियार्थ क्रिया उपपद हो, तो धातु से [तुमुन्ण्वुलौ] तुमुन् तथा ण्वुल् प्रत्यय भविष्यत्काल में होते हैं ।। क्रिया के लिये जो क्रिया हो वह क्रियार्थ क्रिया होती है । उदाहरण में, खाने के लिए जा रहा है, सो जाना क्रिया इसलिए हो रही है कि वह खाये । अतः 'व्रजति' क्रियार्थ क्रिया है । अब ऐसी क्रियार्थ क्रिया उपपद हो, तो किसी अन्य धातु से तुमुन् ण्वुल् प्रत्यय होंगे । सो व्रजति क्रियार्थ क्रिया के उपपद रहते भुज धातु से तुमुन् ण्वुल् प्रत्यय हो गये हैं।। उदा०—भोक्तुं व्रजति । भोजको व्रजति (खाने के लिये जाता है) ।। भोक्तुं में चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व हो जाता है ।।

यहाँ से 'क्रियायां क्रियार्थाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१३ तक जायेगी ।।

भाववचनाश्च ।।३।३।११।।

भाववचनाः १।३।। च अ० ।। ब्रुवन्तीति वचनाः, निपातनात्कर्त्तरि ल्युट् ।। स०—भावस्य वचनाः भाववचनाः, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—क्रियायां क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यति काले धातोर्भाववचनाः=भाववाचकाः (घञादयः) प्रत्यया भवन्ति ।। भावे (३।३।१८) इति प्रकृत्य ये घञादयः प्रत्यया विहितास्ते भाववचनाः ।। उदा०—पाकाय व्रजति । भूतये व्रजति । पुष्टये व्रजति ।।

भाषार्थः—क्रियार्थक्रिया उपपद हो, तो भविष्यत्काल में धातु से [भाववचनाः] भाववचन, अर्थात् भाववाचक (भाव को कहनेवाले) प्रत्यय [च] भी होते हैं ।। भावे (३।३।१८) के अधिकार में जो घञादि प्रत्यय कहे हैं, वे भाववचन हैं । भाव को जो कहते हैं, वे भाववचन प्रत्यय होते हैं ।। उदा०—पाकाय व्रजति (भोजन बनाने के लिये जाता है) । भूतये व्रजति (संपत्ति के लिए जाता है) । पुष्टये व्रजति (पुष्टि के लिये जाता है) ।। व्रजति यहाँ कियार्थ क्रिया उपपद है । सो पच् धातु से भविष्यत् काल में घञ् होकर पाक बना । सिद्धि परिशिष्ट १।१।१ में देखें । पाकाय इत्यादि में चतुर्थी विभक्ति 'तुमर्थाच्च० (२।३।१५) से होगी । भू तथा पुष धातुओं से भाववचन क्तिन् प्रत्यय स्त्रियां क्तिन् (३।३।९४) से होगा, सो भूतिः । तथा पुष क्तिन्=पुष् ति, ष्टुत्व होकर पुष्टिः बन गया ।।

अण्कर्मणि च ।।३।३।१२।।

अण् १।१।। कर्मणि ७।१।। च अ० ।। अनु०—क्रियायां क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—क्रियार्थायां क्रियायां कर्मणि चोपपदे धातोर्भविष्यति कालेऽण् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—काण्डलावो व्रजति । गोदायो व्रजति । अश्वदायो व्रजति ।।

भाषार्थ:—क्रियार्थ क्रिया [च] एवं [कर्मणि] कर्म उपपद रहते धातु से भविष्यत्काल में [अण्] अण् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—काण्डलावो व्रजति (शाखा को काटेगा, इसलिए जाता है)। गोदायो व्रजति(गौ देगा, इसलिए जाता है)। अश्वदायो व्रजति (अश्व देगा, इसलिए जाता है) ॥ उदाहरणों में लवन एवं दान क्रिया के लिये व्रजि क्रियार्थ क्रिया उपपद है। सो ३।३।१० सूत्र से ण्वुल् प्राप्त था, अण् कह दिया है। लू धातु के 'काण्ड' तथा दा धातु के 'गो' कर्म उपपद में है, इसी प्रकार दा के 'अश्व' उपपद में है। सो क्रियार्थ क्रिया एवं कर्म दोनों उपपद हैं ॥ सिद्धि में लू को लौ वृद्धि एवं आवादेश, तथा दा को आतो युक्० (७।३।३३) से युक् आगम हो जायेगा ॥

लृट् शेषे च ॥३।३।१३॥

लृट् १।१॥ शेषे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—क्रियायाम्, क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शेषे अर्थात् केवले भविष्यति काले, चकारात् क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यति काले च धातोर्लृट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शेषे—करिष्यति, हरिष्यति। करिष्यामीति व्रजति, हरिष्यामीति व्रजति ॥

भाषार्थ:—धातु से [शेषे] शेष=केवल भविष्यत्काल में तथा [च] चकार से क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते भी भविष्यत्काल में [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है ॥ शेष कहने से बिना क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते भी लृट् हो जाता है ॥ उदा०—शेष में—करिष्यति, हरिष्यति। क्रियार्थ क्रिया—करिष्यामीति व्रजति (करूंगा, इसलिए जाता है), हरिष्यामीति व्रजति (हरण करूंगा, इसलिए जाता है) ॥ सिद्धि परि० १।४।१३ में देखें ॥

लृटः सद्वा ॥३।३।१४॥

लृटः ६।१॥ सत् १।१॥ वा अ० ॥ अनु०—क्रियायाम्, क्रियार्थायाम्, भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भविष्यति काले विहितस्य लृटः स्थाने सत्संज्ञकौ शतृशानचावादेशौ वा भवतः ॥ उदा०—करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य। करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य। हे करिष्यन्, हे करिष्यमाण। अर्जयिष्यमाणो वसति ॥

भाषार्थ:—भविष्यत्काल में विहित जो [लृटः] लृट् उसके स्थान में [सत्] सत् (३।२।१२७) संज्ञक शतृ शानच् प्रत्यय [वा] विकल्प से होते हैं ॥ उदा०—करिष्यन्तं देवदत्तं पश्य (जो करेगा, ऐसे देवदत्त को देखो)। करिष्यमाणं देवदत्तं पश्य। हे करिष्यन्, हे करिष्यमाण। अर्जयिष्यमाणो वसति ॥ उदाहरणों

में करिष्यतं करिष्यमाणं में अप्रथमासमानाधिकरण में; हे करिष्यन् हे करिष्यमाण में सम्बोधन में; और अर्जयिष्यमाणः में क्रिया के हेतु में सद्-आदेश हुए हैं। इन्हीं विषयों में तो सत् (३।२।१२७) से सत् संज्ञा का विधान है ॥

अनद्यतने लुट् ॥३।३।१५॥

अनद्यतने ७।१॥ लुट् १।१॥ स०—न विद्यतेऽद्यतनो यस्मिन् सोऽनद्यतनः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनद्यतने भविष्यति काले धातोर्लुट् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—श्वः कर्त्ता, श्वो भोक्ता ॥

भाषार्थः—[अनद्यतने] अनद्यतन भविष्यत् काल में धातु से [लुट्] लुट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है ॥ उदा०— श्वः कर्त्ता (कल करेगा), श्वो भोक्ता (कल खायेगा) ॥ लुट् लकार में सिद्धि परिशिष्ट १।१।५ की तरह समझें। केवल यहाँ एकाच उपदे० (७।२।१०) से इट् निषेध होगा। भुज् को कुत्व चोः कुः (८।२।३०) से होता है ॥

पदरुजविशस्पृशो घञ् ॥३।३।१६॥

पदरुजविशस्पृशः ५।१॥ घञ् १।१॥ स०—पदश्च रुजश्च विशश्च स्पृश् च पद···स्पृश्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पद, रुज, विश, स्पृश इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पद्यतेऽसौ पादः। रुजत्यसौ रोगः। विशत्यसौ वेशः। स्पृशतीति स्पर्शः ॥

भाषार्थः—[पदरुजविशस्पृशः] पद, रुज, विश, स्पृश इन धातुओं से [घञ्] घञ् प्रत्यय होता है ॥ इस सूत्र में कोई काल नहीं कहा, तो सामान्य करके तीनों कालों में घञ् होगा। तथा सामान्य विधान होने से कर्त्तरि कृत् (३।४।६७) से कर्त्ता में ही होगा ॥ उदा०—पादः (पैर)। रोगः (रोग)। वेशः (प्रवेश करनेवाला)। स्पर्शः (रोग)। स्पृश उपताप इति वक्तव्यम (वा० ३।३।१६) इस वार्त्तिक से उपताप=रोग अर्थ में स्पर्शः बनता है ॥ घञन्त की सिद्धि सर्वत्र परिशिष्ट १।१।१ के भागः आदि के समान जानें। जहाँ कुछ विशेष होगा लिखा जायेगा ॥

यहाँ से 'घञ्' की अनुवृत्ति ३।३।५५ तक जायेगी ॥

सृ स्थिरे ॥३।३।१७॥

सृ लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ स्थिरे ७।१॥ अनु०—घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सृ धातोः स्थिरे कालान्तरस्थायिनि कर्त्तरि घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चन्दनस्य सारः चन्दनसारः, खदिरसारः ॥

भाषार्थः—[सृ] सृ धातु से [स्थिरे] स्थिर अर्थात् चिरस्थायी कर्त्ता वाच्य हो, तो घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चन्दनसारः (चन्दन का चूरा), खदिरसारः

(कत्था) ।। उदाहरण में चन्दन तथा खदिर के साथ 'सार' का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ है। वृद्धि आदि कार्य घञन्त के समान ही जानें ।।

भावे ।।३।३।१८।।

भावे ७।१।। **अनु०**—घञ्, धातोः प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—भावे = धात्वर्थ वाच्ये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—पाकः, त्यागः, रागः ।।

भाषार्थः—[भावे] **भाव अर्थात् धात्वर्थ वाच्य हो, तो धातुमात्र से घञ् प्रत्यय होता है ।। सिद्धि परिशिष्ट १।१।१ में देखें ।।**

यहाँ से 'भावे' का अधिकार ३।३।११२ तक जायेगा ।।

अकर्त्तरि[1] च कारके संज्ञायाम् ।।३।३।१९।।

अकर्त्तरि ७।१।। च अ० ।। कारके ७।१।। संज्ञायाम् ७।१।। स०—न कर्त्ता अकर्त्ता, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ।। **अनु०**—घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—कर्त्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—आवाहः, विवाहः । प्रास्यन्ति तं प्रासः । प्रसीव्यन्ति तं प्रसेवः । आहरन्ति तस्माद् रसमिति आहारः ।।

भाषार्थः—[अकर्त्तरि] **कर्त्ताभिन्न** [कारके] **कारक में** [च] **भी धातु से** [संज्ञायाम्] **संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय होता है ।। उदा०**—**आवाहः (कन्या को विवाह करके लाना), विवाहः । प्रासः (भाला)। प्रसेवः (थैला)। आहारः (भोजन)।।**

यह भी अधिकारसूत्र है, ३।३।११२ तक जायेगा ।।

परिमाणाख्यायां सर्वेभ्यः ।।३।३।२०।।

परिमाणाख्यायाम् ७।१।। सर्वेभ्यः ५।३।। **स०**—परिमाणस्य आख्या परिमाणाख्या, तस्याम्, षष्ठीतत्पुरुषः ।। **अनु०**—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—परिमाणाख्यायां गम्यमानायां सर्वेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति ।। **उदा०**—एकस्तण्डुलनिचायः । द्वौ शूर्पनिष्पावौ । द्वौ कारौ, त्रयः काराः ।।

भाषार्थः—[सर्वेभ्यः] **सब धातुओं से** [परिमाणाख्यायाम्] **परिमाण की आख्या = कथन गम्यमान हो तो घञ् प्रत्यय होता है ।। निचीयते यः स निचायः =**

---

१. यहाँ से 'भावे' तथा 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्' दोनों की अनुवृत्ति चलती है। सो हमने अनुवृत्ति तथा अर्थ में दोनों को ही दिखाया है। पाठक उदाहरण देखकर यथासम्भव स्वयं ही लगा लें, क्योंकि यह उदाहरणाधीन विषय है ।।

राशिः, तण्डुलानां निचायः तण्डुलनिचायः। यहां एकराशिरूप से तण्डुलों के परिमाण का कथन है। निचायः में एरच् (३।३।५६) से कर्म में अच् प्राप्त था, घञ् विधान कर दिया। निष्पूयते यः स निष्पावः=तण्डुलादिः, शूर्पेण निष्पावः शूर्पनिष्पावः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ में शूर्प=सूप की संख्या से निष्पाव (तण्डुलादि) के परिमाण की प्रतीति हो रही है। 'निर् पाव' यहाँ खरवसान० (८।३।१५) से रेफ का विसर्जनीय, तथा इदुदुपध० (८।३।४१) से षत्व होकर निष्पाव बना है। यहाँ ऋदोरप् (३।३।५७) से कर्म में अप् की प्राप्ति में घञ् का विधान है। 'कॄ विक्षेपे' से कीर्यते यः सः कारः= तण्डुलादिः। द्वौ कारौ आदि में भी संख्या के द्वारा विक्षिप्त द्रव्य के परिमाण का कथन है॥ यहाँ भी पूर्ववत् कर्म में अप् प्रत्यय की प्राप्ति में घञ् का विधान हुआ है॥

इङश्च ॥३।३।२१॥

इङः ५।१। च अ० ॥ **अनु०**—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—इङ्धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—अधीयते यः सः अध्यायः। उपेत्याधीते यस्मात् सः उपाध्यायः॥

भाषार्थः—[इङः] इङ् धातु से [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—अध्यायः (जिसका अध्ययन किया जाता है)। उपाध्यायः (जिसके समीप जाकर पढ़ा जाता है)॥ अधि इ घञ्, वृद्धि तथा आयादेश होकर 'अधि आय् अ' बना, यणादेश होकर अध्यायः बन गया है॥ एरच् (३।३।५६) सूत्र से अच् प्रत्यय की प्राप्ति में यह सूत्र है॥

उपसर्गे रुवः ॥३।३।२२॥

उपसर्गे ७।१॥ रुवः ५।१॥ **अनु०**—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—उपसर्ग उपपदे रु धातोः घञ् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ **उदा०**—संरावः। उपरावः। विरावः॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [रुवः] रु धातु से घञ् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में॥ उवर्णान्त होने से ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था, तदपवाद यह सूत्र है॥ ये सारे सूत्र आगे के औत्सर्गिक सूत्रों से विधान किये हुए अप् अच् आदि प्रत्ययों के ही अपवाद हैं। सो औत्सर्गिकों से पहले ही ये अपवाद विधान कर देने से ये सब पुरस्तादपवाद हैं। अन्यथा घञ् विधान करने की आवश्यकता ही नहीं थी। भावे, अकर्त्तरि च० इन औत्सर्गिकों से ही सब धातुओं से घञ् हो ही जाता॥ उदा०—संरावः (आवाज)। उपरावः (आवाज)। विरावः (आवाज)॥

समि युद्रुदुवः ॥३।३।२३॥

समि ७।१॥ युद्रुदुवः ५।१॥ स०—युश्च द्रुश्च दुश्च युद्रुदु, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम्पूर्वेभ्यो यु मिश्रणे, दु द्रु गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—संयूयते मिश्रीक्रियते यः सः संयावः । सन्द्रावः। सन्दावः ॥

भाषार्थः—[समि] सम् पूर्वक [युद्रुदुवः] यु द्रु तथा दु धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ॠदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—संयावः (हलुवा)। सन्द्रावः (भागना)। सन्दावः (भागना) ॥ सर्वत्र वृद्धि तथा आवादि आदेश होकर सिद्धि जानें ॥

श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ॥३।३।२४॥

श्रिणीभुवः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—श्रिश्च णीश्च भूश्च श्रिणीभूः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः । न उपसर्गो यस्य सः अनुपसर्गः, तस्मिन्, (पञ्चम्यर्थे) बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—श्रि, णी, भू इत्येतेभ्योऽनुपसर्गेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—श्रायः । नायः । भावः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्गरहित [श्रिणीभुवः] श्रि, णी, भू इन धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—श्रायः (आश्रय) । नायः (ले जाना) । भावः (होना) ॥ इवर्णान्तों से अच् प्रत्यय (३।३।५६), तथा उवर्णान्त से अप् (३।३।५७) प्राप्त था, सो उनका यह अपवाद है ॥

वौ क्षुश्रुवः ॥३।३।२५॥

वौ ७।१॥ क्षुश्रुवः ५।१॥ स०—क्षुश्च श्रुश्च क्षुश्रु, तस्मात् समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च विपूर्वाभ्यां टुक्षु शब्दे श्रु श्रवणे इत्येताभ्यां धातुभ्यां घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विक्षावः । विश्रावः ॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक [क्षुश्रुवः] क्षु तथा श्रु धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् यह भी अप् का अपवाद है ॥ उदा०—विक्षावः (शब्द करना) । विश्रावः (अति प्रसिद्धि होना) ॥

अवोदोर्नियः ॥३।३।२६॥

अवोदोः ७।२॥ नियः ५।१॥ स०—अवश्च उद् च अवोदौ, तयोः, इतरेतर-

योगद्वन्द्वः ।। अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च अव उद् इत्येतयोरुपसर्गोपपदयोर्णीञ् धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—अवनायः । उन्नायः ।।

भाषार्थः—[अवोदोः] अव तथा उद् पूर्वक [नियः] णी धातु से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ।। एरच् (३।३।५६) से अच् प्राप्त था यह उसका अपवाद है ।। उदा०—अवनायः (अवनति) । उन्नायः (उन्नति) ।। उद् नाय, ऐसी अवस्था में यहाँ यरोऽनु० (८।४।४४) लगकर उन्नायः बन गया है ।।

प्रे द्रुस्तुस्रुवः ।।३।३।२७।।

प्रे ७।१।। द्रुस्तुस्रुवः ५।१।। स०—द्रुश्च स्तुश्च स्रुश्च द्रुस्तुस्रु, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ।। अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—प्रोपसर्गे उपपदे द्रु गतौ, ष्टुञ् स्तुतौ, स्रु गतौ इत्येतेभ्यो धातुभ्यो घञ् प्रत्ययो भवति अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां विषये भावे च ।। उदा०—प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्रावः ।।

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [द्रुस्तुस्रुवः] द्रु, स्तु, स्रु इन धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ।। यह भी पूर्ववत् अप् प्रत्यय का अपवाद है ।। उदा०—प्रद्रावः (भागना) । प्रस्तावः (प्रस्ताव) । प्रस्रावः (बहना, मूत्र) ।।

निरभ्योः पूल्वोः ।।३।३।२८।।

निरभ्योः ७।२।। पूल्वोः ६।२।। स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—निर् अभि पूर्वाभ्यां यथासंख्यं पू लू इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ।। पू इत्यनेन पूङ्पूञोः सामान्येन ग्रहणम् ।। उदा०—निष्पावः । अभिलावः ।।

भाषार्थः—[निरभ्योः] निर् अभि पूर्वक क्रमशः [पूल्वोः] पू लू धातुओं से कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ।। पू से सामान्य करके पूङ् तथा पूञ् दोनों धातुओं का ग्रहण है ।। उदा०—निष्पावः (पवित्र करना) । अभिलावः (काटना) ।। निष्पावः में इदुदुपधस्य० (८।३।४१) से निर् के विसर्जनीय को षत्व हो गया है । यह सूत्र भी पूर्ववत् अप् का अपवाद है ।।

उन्न्योर्ग्रः ।।३।३।२९।।

उन्न्योः ७।२।। ग्रः ५।१।। स०—उद् च नि चेति उन्न्यौ, तयोः, इत्यत्रेतरेतर-

योगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च उद् नि इत्येतयोरुपपदयोः 'गॄ' धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उद्गारः । निगारः ॥

भाषार्थः—[उन्न्योः] उद् नि उपपद रहते [ग्रः] गॄ धातु से कर्तृभिन्न कारक सञ्ज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ॠवर्णान्त धातुओं से ३।३।५७ से अप् प्राप्त था, तदपवाद यह सूत्र है ॥ यहाँ गॄ से 'गॄ शब्दे' तथा 'गॄ निगरणे' दोनों धातुओं का ग्रहण है ॥ उदा०—उद्गारः (वमन, आवाज) । निगारः (भोजनः) ॥

यहाँ से 'उन्न्योः' की अनुवृत्ति ३।३।३० तक जायेगी ॥

कॄ धान्ये ॥३।३।३०॥

कॄ लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ धान्ये ७।१॥ अनु०—उन्न्योः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उद् नि इत्येतयोरुपपदयोः 'कॄ विक्षेपे' इत्यस्माद् धातोर्धान्यविषये घञ् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—उत्कारो धान्यस्य । निकारो धान्यस्य ॥

भाषार्थः उद नि पूर्वक [कॄ] कॄ धातु से [धान्ये] धान्यविषय में घञ् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक सञ्ज्ञाविषय में तथा भाव में ॥ यह भी अप् का अपवाद है ॥ उदा०—उत्कारो धान्यस्य (धानों को इकट्ठा करना, और ऊपर उछालना) । निकारो धान्यस्य (धान का ऊपर फेंकना) ॥

यज्ञे समि स्तुवः ॥३।३।३१॥

यज्ञे ७।१॥ समि ७।१॥ स्तुवः ५।१॥ अनु०— अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज्ञविषये सम्पूर्वात् ष्टुञ्धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—समेत्य संस्तुवन्ति यस्मिन् देशे छन्दोगा सः संस्तावः ॥

भाषार्थः—[यज्ञे] यज्ञविषय में [समि) सम्पूर्वक [स्तुवः] स्तु धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय होता है ॥ यह सूत्र अधिकरण में ल्युट् (३।३।११७) का अपवाद है ॥ उदा०—संस्तावः (सामगान करनेवाले ऋत्विजों का स्तुति करने का स्थान) ॥

प्रे स्त्रोऽयज्ञे ॥३।३।३२॥

प्रे ७।१॥ स्त्रः ५।१॥ अयज्ञे ७।१॥ स०— न यज्ञः अयज्ञः, तस्मिन्, नञ्-तत्पुरुषः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ् धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—प्रपूर्वात् 'स्तृञ् आच्छादने' अस्माद् धातोर्यज्ञविषयं विहाय कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—शङ्खप्रस्तारः, छन्दःप्रस्तारः

भाषार्थः—[प्रे] प्र पूर्वक [स्त्रः] 'स्तृञ् आच्छादने' धातु से [अयज्ञे] यज्ञ-विषय को छोड़कर कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ऋवर्णान्त होने से अप् प्राप्त था, तदपवाद है ॥ उदा०—शङ्खप्रस्तारः (शङ्खों का फैलाव, विस्तार), छन्दःप्रस्तारः (छन्द का विस्तार) ॥ प्रस्तारः में वृद्धि आदि करके पुनः शङ्ख या छन्दः शब्द के साथ शङ्खानां प्रस्तारः, छन्दसां प्रस्तारः ऐसा विग्रह करके षष्ठीसमास होगा ॥

यहाँ से 'स्त्रः' की अनुवृत्ति ३।३।३४ तक जायेगी ॥

प्रथने वावशब्दे ॥३।३।३३॥

प्रथने ७।१॥ वौ ७।१॥ अशब्दे ७।१॥ स०—न शब्दोऽशब्दः, तस्मिन्, नञ्-तत्पुरुषः ॥ **अनु०**—स्त्रः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—विशब्द उपपदे स्तृञ् धातोरशब्दे प्रथनेऽभिधेये घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ **उदा०**—पटस्य विस्तारः ॥

भाषार्थः—[वौ] वि पूर्वक स्तृञ् धातु से [अशब्दे] अशब्दविषयक [प्रथने] प्रथन=विस्तार, अर्थात शब्दविषयक विस्तार को न कहना हो, तो कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पटस्य विस्तारः (कपड़े का फैलाव) ॥

यहाँ से 'वौ' की अनुवृत्ति ३।३।३४ तक जायेगी ॥

छन्दोनाम्नि च ॥३।३।३४॥

छन्दोनाम्नि ७।१॥ च अ० ॥ स०—छन्दसः नाम छन्दोनाम, तस्मिन् षष्ठी-तत्पुरुषः ॥ **अनु०**—वौ, स्त्रः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—विपूर्वात् स्तृञ्धातोः छन्दोनाम्नि कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः, विष्टारबृहती छन्दः ॥

भाषार्थः—वि पूर्वक स्तृञ् धातु से [छन्दोनाम्नि] छन्द का नाम कहना हो, तो [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ छन्दोनाम से यहाँ विष्टारपङ्क्ति आदि छन्द लिये हैं न कि वेद ॥ विस्तार बनकर छन्दोनाम्नि च (८।३।९४) से षत्व, तथा ष्टुना ष्टुः (८।४।४) से ष्टुत्व होकर विष्टारः बन गया है ॥

उदि ग्रहः ॥३।३।३५॥

उदि ७।१॥ ग्रहः ५।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत्पूर्वाद् ग्रहधातोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उद्ग्राहः ॥

भाषार्थः—[उदि] उत् पूर्वक [ग्रहः] ग्रह धातु से, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ ग्रहवृदृनिश्चि० (३।३।५८) से अप् प्रत्यय प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—उद्ग्राहः (विद्या का विचार) ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।३६ तक जायेगी ॥

समि मुष्टौ ॥३।३।३६॥

समि ७।१॥ मुष्टौ ७।१॥ अनु०—ग्रहः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्चः ॥ अर्थः—समपूर्वाद् ग्रहधातोर्मुष्टिविषये घञ् प्रत्ययो भवति, कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—अहो! मल्लस्य संग्राहः ॥

भाषार्थः—[समि] सम्पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में [मुष्टौ] मुष्टि =मुट्ठीविषय में घञ् प्रत्यय होता है ॥ यह भी अप् का अपवाद है ॥ उदा०—अहो ! मल्लस्य संग्राहः (ओहो ! पहलवान की मुट्ठी की पकड़) ॥

परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः ॥३।३।३७॥

परिन्योः ७।२॥ नीणोः ६।२॥ द्यूताभ्रेषयोः ७।२॥ स०—परिश्च निश्च परिनी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ नी च इण्च नीणौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । द्यूतं च अभ्रेषश्च द्यूताभ्रेषौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परि शब्दे नि शब्दे चोपपदे यथासंख्यं नी इण् इत्येताभ्यां धातुभ्याम् अकर्त्तरि च कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति, द्यूताभ्रेषयोर्विषययोः ॥ अत्रापि यथासङ्ख्यमेव सम्बन्धः ॥ उदा०—द्यूते—परिणायेन शारान हन्ति । अभ्रेषे—एषोऽत्र न्यायः ॥

भाषार्थः—[परिन्योः] परि तथा नि उपपद रहते यथासंख्य करके [नीणोः] नी तथा इण् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में [द्यूताभ्रेषयोः] द्यूत तथा अभ्रेष विषय में घञ् प्रत्यय होता है ॥ यहां भी यथासंख्य का सम्बन्ध लगता है । सो परि पूर्वक नी धातु से द्यूतविषय में, तथा नि पूर्वक इण् धातु से अभ्रेष (उचित आचरण करना) विषय में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—द्यूत में—परिणायेन

शारान् हन्ति (चारों ओर से जाकर द्यूतक्रीडा के पासों को मारता है)। अभ्रेष में—एषोऽत्र न्याय: (यही यहाँ उचित है)॥ परिणाय: में उपसर्गाद० (८।४।१४) से णत्व होता है। 'नि इ अ' यहाँ वृद्धि होकर 'नि ऐ अ', आयादेश होकर नि आय् अ, पश्चात् यणादेश होकर न्याय: बन गया है॥

परावनुपात्यय इण: ॥३।३।३८॥

परौ ७।१॥ अनुपात्यये ७।१॥ इण: ५।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातो:, प्रत्यय: परश्च॥ अर्थ:—परिपूर्वाद् इण्धातो: अनुपात्यये=क्रमप्राप्तस्यानतिपातेऽर्थे गम्यमाने कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—तव पर्याय:, मम पर्याय:॥

भाषार्थ:—[परौ] परि पूर्वक [इण:] इण् धातु से [अनुपात्यये] अनुपात्यय=क्रम, परिपाटी गम्यमान होने पर कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है॥ उदा०—तव पर्याय: (तेरी बारी), मम पर्याय: (मेरी बारी)॥ इवर्णान्त धातु होने से पूर्ववत् एरच् (३।३।५६) सूत्र का अपवाद यह सूत्र है॥ पूर्ववत् वृद्धि आयादेश होकर 'परि आय् घञ्', यणादेश होकर पर्याय: बना है॥

व्युपयो: शेते: पर्याये ॥३।३।३९॥

व्युपयो: ७।२॥ शेते: ५।१॥ पर्य्याये ७।१॥ स०—विश्च उपश्च व्युपौ, तयो:, इतरेतरयोगद्वन्द्व:॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातो: प्रत्यय:, परश्च॥ अर्थ:—पर्याये गम्यमाने वि उप इत्येतयोरुपपदयो: शीङ्धातो:, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—तव विशाय:। ममोपशाय:॥

भाषार्थ:—[व्युपयो:] वि उप पूर्वक [शेते:] शीङ् धातु से [पर्याये] पर्याय गम्यमान होने पर कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है॥ पूर्ववत् अच् प्राप्त था, तदपवाद है। सिद्धि में पूर्ववत् ही वृद्धि आदि जानें। मम उपशाय:, यहाँ आद्: गुण: (६।१।८४) से पूर्व पर को गुण होकर ममोपशाय: (मेरे सोने की बारी)। तव विशाय: (तेरे सोने की बारी) बना है॥

हस्तादाने चेरस्तेये ॥३।३।४०॥

हस्तादाने ७।१॥ चे: ५।१॥ अस्तेये ७।१॥ स०—हस्तेन आदानं ग्रहणं हस्तादानं, तस्मिन्, तृतीयातत्पुरुष:। न स्तेयम् अस्तेयम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुष:॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च॥ अर्थ:—अस्तेये

=चौर्यरहिते हस्तादाने गम्यमाने चित्र् धातो: कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—पुष्पप्रचाय:, फलप्रचाय: ।।

भाषार्थ:—[अस्तेये] चोरीरहित [हस्तादाने] हाथ से ग्रहण करना गम्यमान हो, तो [चे:] चिञ् धातु से कर्तृभिन्न कारक और भाव में घञ् प्रत्यय होता है ।। हस्तादान कहने से पुष्प या फल की समीपता प्रतीत होती है, तभी हस्तादान सम्भव है ।। पूर्ववत् अच का अपवाद यह सूत्र है ।। उदा०—पुष्पप्रचाय:(हाथ से फूल तोड़ना), फलप्रचाय: (हाथ से फल तोड़ना) ।। सिद्धि में पूर्ववत् वृद्धि आयादेश होकर 'प्रचाय:' बनकर, पश्चात् पुष्प एवं फल के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ है ।।

यहाँ से 'चे:' की अनुवृत्ति ३।३।४२ तक जायेगी ।।

निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च क: ।।३।३।४१।।

निवास···धानेषु ७।३।। आदे: ६।१।। च अ० ।। क: १।१।। स०—निवासश्च चितिश्च शरीरं च उपसमाधानं च निवास···समाधानानि, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ।। अनु०—चे:, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। निवसन्त्यस्मिन्निति निवास: । चीयतेऽसौ चिति: । राशीकरणमुपसमाधानम् ।। अर्थ:—निवास, चिति, शरीर, उपसमाधान इत्येतेष्वर्थेषु चिञ्धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, धातोरादेश्च ककारादेशो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ।। उदा०—निवास: —एषोऽस्य निकाय: । चिति:—आकायमग्निं चिन्वीत । शरीरम्—अनित्यकाय:, अकायं ब्रह्म । उपसमाधानम्—महान् फलनिकाय: ।।

भाषार्थ:—[निवास···नेषु] निवास, चिति(=जो चुना जाय), शरीर, उपसमाधान (=राशि)इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है, [च]तथा चिञ् के [आदे:] आदि चकार को [क:] ककारादेश हो जाता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में ।। उदा०—निवास—एषोऽस्य निकाय: (यह इसका निवास स्थान है)। चिति—आकायमग्निं चिन्वीत (श्मशान की आग का चयन किया जाय)। शरीर—अनित्यकाय: (शरीर अनित्य है)। अकायं ब्रह्म (ब्रह्म शरीररहित है) । उपसमाधान—महान् फलनिकाय: (बड़ा भारी फलों का ढेर) ।। आकायम् में आङ्-पूर्वक चिञ् धातु है ।।

यहाँ से 'आदेश्च क:' की अनुवृत्ति ३।३।४२ तक जायेगी ।।

सङ्घे चानौत्तराधर्ये ।।३।३।४२।।

सङ्घे ७।१।। च अ० ।। अनौत्तराधर्ये ७।१।। उत्तरे च अधरे च उत्तराधरा:, तेषां भाव: औत्तराधर्यम् ।। स०—न औत्तराधर्यम् अनौत्तराधर्यं, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुष:।।

अनु०—आदेश्च कः, चेः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ् धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अनौत्तराधर्ये सङ्घे वाच्ये चिञ् धातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, आदेश्च-कारस्य स्थाने ककारादेशोऽपि भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ।। उदा०—भिक्षुकनिकायः । ब्राह्मणनिकायः । वैयाकरणनिकायः ।।

भाषार्थः—[अनौत्तराधर्ये] अनौत्तराधर्य [सङ्घे] सङ्घ वाच्य हो, तो [च] भी चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है, तथा आदि चकार को ककारादेश हो जाता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में एवं भाव में ।। प्राणियों के समुदाय को संघ कहा जाता है। वह दो प्रकार से बनता है—एक धर्म के अन्वय से, तथा दूसरा ऊपर-नीचे बैठने से । सूत्र में औत्तराधर्य (=ऊपर-नीचे स्थित होने) का प्रतिषेध होने से एकधर्मान्वय से बननेवाले संघ का ग्रहण यहाँ किया गया है ।। उदा०—भिक्षुकनिकायः (भिक्षुकों का समुदाय)। ब्राह्मणनिकायः (ब्राह्मणों का समुदाय)। वैयाकरणनिकायः ।। निकायः बनाकर पीछे षष्ठीसमास भिक्षुक आदि के साथ होता है । सिद्धि पूर्ववत् है ।।

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ।।३।३।४३।।

कर्मव्यतिहारे ७।१।। णच् १।१।। स्त्रियाम् ७।१।। स०—कर्मणो व्यतिहारः कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कर्मव्यतिहारे गम्यमाने स्त्रियामभिधेयायां धातोर्णच् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ।। उदा०—व्यावक्रोशी, व्यावलेखी, व्यावहासी ।।

भाषार्थः—[कर्मव्यतिहारे] कर्मव्यतिहार=क्रिया का अदल-बदल गम्यमान हो, तो [स्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग में धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा विषय में तथा भाव में [णच्] णच् प्रत्यय होता है ।।

अभिविधौ भाव इनुण् ।।३।३।४४।।

अभिविधौ ७।१।। भावे ७।१।। इनुण् १।१।। अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अभिविधि=अभिव्याप्तिः, तस्यां गम्यमानायां भावे धातोरिनुण् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—सांकूटिनम्, सांराविणम् ।।

भाषार्थः—[अभिविधौ] अभिविधि अर्थात् अभिव्याप्ति गम्यमान हो, तो धातु से [भावे] भाव में [इनुण्] इनुण् प्रत्यय होता है ।।

आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः ।।३।३।४५।।

आक्रोशे ७।१।। अवन्योः ७।२।। ग्रहः ५।१।। स०—अव० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।।

अर्थः—अव नि इत्येतयोरुपपदयोराक्रोशे गम्यमाने ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके सञ्ज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अवग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् । निग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् ॥

भाषार्थः—'आक्रोश' क्रोध से कुछ कहने को कहते हैं । [आक्रोशे] आक्रोश गम्यमान हो, तो [अवन्योः] अव तथा नि पूर्वक [ग्रहः] ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अवग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् (हे दुष्ट ! तेरा अभिभव हो जाये) । निग्राहो दुष्ट ! ते भूयात् (हे दुष्ट ! तेरा बाध हो) ॥

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।४७ तक जायेगी ॥

प्रे लिप्सायाम् ॥३।३।४६॥

प्रे ७।१॥ लिप्सायाम् ७।१॥ अनु०—ग्रहः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—लिप्सायाम्=लब्धुमिच्छायां गम्यमानायां प्रपूर्वात् ग्रहधातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुकोऽन्नार्थी । स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी ॥

भाषार्थः—[लिप्सायाम्] लिप्सा=प्राप्त करने की इच्छा गम्यमान हो, तो [प्रे] प्र पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पात्रप्रग्राहेण चरति भिक्षुकोऽन्नार्थी (अन्न चाहनेवाला भिक्षु अन्न का पात्र लिये विचरता है)। स्रुवप्रग्राहेण चरति द्विजो दक्षिणार्थी (दक्षिणा चाहनेवाला द्विजस्रुव स्रुव लेकर घूमता है) ॥ उदाहरण में वृद्धि आदि होकर प्रग्राहः बनकर पात्र तथा स्रुव शब्द के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥

परौ यज्ञे ॥३।३।४७॥

परौ ७।१॥ यज्ञे ७।१॥ अनु०—ग्रहः, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज्ञविषये परिपूर्वाद् ग्रहधातोर्घञ् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ॥ उदा०—उत्तरः परिग्राहः । अधरः परिग्राहः ॥

भाषार्थः—[यज्ञे] यज्ञविषय में [परौ] परि पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उत्तरः परिग्राहः (दर्शपौर्णमास यज्ञ में उत्तर वेदि के निर्माण को उत्तरः परिग्राहः कहते हैं) । अधरः परिग्राहः (नीचे का निर्माण) ॥ परिग्राहः पूर्ववत् बनकर उत्तर तथा अधर के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥

नौ वृ धान्ये ॥३।३।४८॥

नौ ७।१॥ वृ लुप्तपञ्चम्यन्तनिर्देशः ॥ धान्ये ७।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ् धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—वृ इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम् । निपूर्वाद् वृ इत्येतस्माद् धातोः धान्येऽर्थे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नीवाराः व्रीहयः ॥

भाषार्थः—[नौ] नि पूर्वक [वृ] वृ धातु से [धान्ये] धान्यविशेष को कहना हो, तो कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥

वृ से यहाँ वृङ् वृञ् दोनों का ग्रहण है ॥ ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च (३।३।५८) से अप् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है ॥ उदा०—नीवाराः व्रीहयः (नीवार नाम का धान्यविशेष) ॥ नीवार में उपसर्गस्य० (६।३।१२२) से उपसर्ग के इकार को दीर्घ हुआ है ॥

उदि श्रयतियौतिपूद्रुवः ॥३।३।४९॥

उदि ७।१॥ श्रयतियौतिपूद्रुवः ५।१॥ स०—श्रयतिश्च यौतिश्च पूश्च द्रुश्च श्रयति···द्रु, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उत्पूर्वेभ्यः श्रि, यु, पू, द्रु इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उच्छ्रायः । उद्यावः । उत्पावः । उद्द्रावः ॥

भाषार्थः—[उदि] उत् पूर्वक [श्रयतियौतिपूद्रुवः] श्रि यु पू द्रु इन धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उच्छ्रायः (ऊंचाई)। उद्यावः (इकट्ठा करना) । उत्पावः (यज्ञीय पात्रों का संस्कारविशेष)। उद्द्रावः (भागना) ॥ उत् श्राय, यहाँ स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) से श्चुत्व, तथा शश्छोऽटि (८।४।६२) से छत्व होता है । शेष सब पूर्ववत् ही है । श्रि धातु से एरच् (३।३।५६) से अच् प्राप्त था, तथा अन्य धातुओं से ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् प्राप्त था, उनका यह अपवाद है ॥

विभाषाङि रुप्लुवोः ॥३।३।५०॥

विभाषा १।१॥ आङि ७।१॥ रुप्लुवोः ६।२॥ स०—रुप्लु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आङ्युपपदे रु प्लु इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आरावः, आरवः । आप्लावः, आप्लवः ॥

भाषार्थः—[आङि] आङ् पूर्वक [रुप्लुवोः] रु तथा प्लु धातुओं से कर्तृभिन्न

कारक संज्ञा में तथा भाव में [विभाषा] विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ।। रु धातु से उपसर्गे रुवः (३।३।२२) से नित्य घञ् प्राप्त था, सो विकल्प से कह दिया । अतः पक्ष में ऋदोरप् (३।३।५७) से अप् ही होगा । इसी प्रकार प्लु धातु से भी पक्ष में उवर्णान्त होने से अप् होगा । अप् पक्ष में रु तथा प्लु को गुण तथा अवादेश हो जायेगा । एवं घञ् पक्ष में वृद्धि तथा आवादेश होकर आरावः आप्लावः बनेगा, ऐसा जानें ।। उदा०—आरावः (एक प्रकार की आवाज), आरवः । आप्लावः (स्नान, डुबकी मारना), आप्लवः ।।

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।३।५५ तक जायेगी ।।

अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ।।३।३।५१।।

अवे ७।१।। ग्रहः ५।१।। वर्षप्रतिबन्धे ७।१।। स०—वर्षस्य प्रतिबन्धो वर्षप्रतिबन्धः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—वर्षप्रतिबन्धेऽभिधेये अवपूर्वाद् ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—अवग्राहो देवस्य, अवग्रहो देवस्य ।।

भाषार्थः—[वर्षप्रतिबन्धे] वर्षप्रतिबन्ध अभिधेय होने पर [अवे] अव पूर्वक [ग्रहः] ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ।। वर्षा का समय हो जाने पर भी वर्षा का न होना 'वर्षप्रतिबन्ध' कहाता है ।। ग्रहवृदृ० (३।३।५८) से अप् प्राप्त था, घञ् प्रत्यय विकल्प से कह दिया है । अतः पक्ष में अप् ही होगा ।। उदा०—अवग्राहो देवस्य (देव का न बरसना), अवग्रहो देवस्य ।।

यहाँ से 'ग्रहः' की अनुवृत्ति ३।३।५३ तक जायेगी ।।

प्रे वणिजाम् ।।३।३।५२।।

प्रे ७।१।। वणिजाम् ६।३।। अनु०—ग्रहः, विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—प्रशब्द उपपदे ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति, वणिजां सम्बन्धिनि वाच्ये।। उदा०—तुलाप्रग्राहेण चरति, तुलाप्रग्रहेण वा ।।

भाषार्थः—[वणिजाम्] वणिक्सम्बन्धी प्रत्ययान्त वाच्य हो, तो [प्रे] प्र पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में, तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ।। उदा०—तुलाप्रग्राहेण चरति (तराजू का मध्यसूत्र पकड़े घूमता है), तुलाप्रग्रहेण । तराजू के मध्यस्थित सूत्र को 'प्रग्राह' अथवा 'प्रग्रह' कहा जाता है ।

तुला का सम्बन्ध वणिक् से होने के कारण सूत्र में 'वणिजाम्' पद प्रयुक्त हुआ है ॥

यहाँ से 'प्रे' की अनुवृत्ति ३।३।५४ तक जायेगी ॥

रश्मौ च ॥३।३।५३॥

रश्मौ ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—प्रे, ग्रहः, विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—रश्मौ प्रत्ययार्थे प्रपूर्वाद् ग्रहधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेन घञ प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रग्राहः, प्रग्रहः ॥

भाषार्थः—[रश्मौ] रश्मि अर्थात् घोड़े की लगाम वाच्य हो, तो [च] भी प्र पूर्वक ग्रह धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में घञ् प्रत्यय होता है, पक्ष मे अप् होता है ॥ उदा०—प्रग्राहः (लगाम, रस्सी), प्रग्रहः ॥

वृणोतेराच्छादने ॥३।३।५४॥

वृणोतेः ५।१॥ आच्छादने ७।१॥ अनु०—प्रे, विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आच्छादनेऽर्थे प्रपूर्वाद् वृञ्-धातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विभाषा घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—प्रावारः, प्रवरः ॥

भाषार्थः—[आच्छादने] आच्छादन अर्थ में प्र पूर्वक [वृणोतेः] वृञ् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में, तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ग्रहवृदृ० (३।३।५८) से अप् प्राप्त था, सो पक्ष में वह भी होता है ॥ उदा०—प्रावारः (चादर), प्रवरः ॥ यहाँ उपसर्गस्य० (६।३।१२२) से उपसर्ग को दीर्घ हुआ है ॥

परौ भुवोऽवज्ञाने ॥३।३।५५॥

परौ ७।१॥ भुवः ५।१॥ अवज्ञाने ७।१॥ अनु०—विभाषा, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, घञ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अवज्ञानम्=तिरस्कारः, तस्मिन् वर्त्तमानात् परिपूर्वाद् भूधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेन घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परिभावः, परिभवः ॥

भाषार्थः—[अवज्ञाने] अवज्ञान=तिरस्कार अर्थ में वर्त्तमान [परौ] परिपूर्वक [भुवः] भू धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥ ३।३।५७ से अप् प्रत्यय प्राप्त था, सो पक्ष में वही होगा ॥ उदा०—परिभावः (निरादर), परिभवः ॥

एरच् ॥३।३।५६॥

एः ५।१॥ अच् १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इवर्णान्ताद्धातोर्भावे अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् अच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जयः, चयः, नयः, क्षयः, अयः ॥

भाषार्थः—[एः] इवर्णान्त धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अच्] अच् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ येन विधिस्त० (१।१।७१) से तदन्तविधि करके 'इवर्णान्त' ऐसा अर्थ हुआ है ॥ उदा०—जयः (जीतना), चयः (चुनना), नयः (ले जाना), क्षयः (नाश), अयः (ज्ञान) ॥

चि जि धातु को सार्वधातुका० (७।३।८४) से गुण, तथा अयादेश होकर चयः जयः आदि रूप बनेंगे। इण् धातु से अयः बना है ॥ यह सूत्र घञ् का अपवाद है ॥

ॠदोरप् ॥३।३।५७॥

ॠदोः ५।१॥ अप् १।१॥ स०—ॠत् च उश्च ॠदुः, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ॠकारान्तेभ्यः उवर्णान्तेभ्यश्च धातुभ्यः कर्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये भावे चाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ॠकारान्तेभ्यः—करः, गरः, शरः। उवर्णान्तेभ्यः—यवः, लवः, पवः ॥

भाषार्थः—[ॠदोः] ॠकारान्त तथा उवर्णान्त धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अप्] अप् प्रत्यय होता है ॥ यह भी घञ् का अपवादसूत्र है ॥ गुण इत्यादि पूर्ववत् होकर सिद्धि जानें। उदा०—करः (विक्षेप), गरः (विष), शरः (तीर)। उवर्णान्तों से—यवः (मिलाना), लवः (काटना), पवः (पवित्र करना) ॥

यहाँ से 'अप्' की अनुवृत्ति ३।३।८७ तक जायेगी ॥

ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च ॥३।३।५८॥

ग्रह गमः ५।१॥ च अ० ॥ स०—ग्रहश्च वृश्च दृश्च निश्चिश्च गम् च ग्रह···गम्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ग्रह, वृ, दृ, निर् पूर्वक चि, गम् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृवर्जिते कारके संज्ञायां विषये भावे चाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ग्रहः। वरः। दरः। निश्चयः। गमः ॥

भाषार्थ:—[ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च] ग्रह, वृ, दृ तथा निर् पूर्वक चि, एवं गम इन धातुओं से [च] भी कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ।। यह सूत्र घञ् का अपवाद है। निश्चि में अच् प्राप्त होता था ।। उदा०—ग्रह: (ग्रहण)। वर: (श्रेष्ठ)। दर: (डर, गड्ढा)। निश्चय: (निश्चय)। गम: (यात्रा)।। सिद्धि में यथासम्भव गुण इत्यादि जानें ।।

उपसर्गेऽद: ।।३।३।५९।।

उपसर्गे ७।१।। अद: ५।१।। अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—उपसर्ग उपपदे अदधातोरप् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ।। उदा०—विघस: । प्रघस: ।।

भाषार्थ:—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [अद:] अद् धातु से अप् प्रत्यय होता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ।। अद् को अप् परे रहते घञपोश्च (२।४।३८) से घस्लृ आदेश होता है ।।

यहाँ से 'अद:' की अनुवृत्ति ३।३।६० तक जायेगी ।।

नौ ण च ।।३।३।६०।।

नौ ७।१।। ण लुप्तप्रथमान्तनिर्देश: ।। च अ० ।। अनु०—अद:, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—निशब्द उपपदे अदधातो: कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च ण: प्रत्ययो भवति, चकाराद् अप् च ।। उदा०—न्याद:; निघस: ।।

भाषार्थ:—[नौ] नि पूर्वक अद् धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [ण] ण प्रत्यय होता है, [च] चकार से अप् प्रत्यय भी होता है। नि पूर्वक अद् धातु से ण प्रत्यय करने पर अत: उपधाया: (७।२।११६) से वृद्धि; तथा अप् पक्ष में पूर्ववत् २।४।३८ से घस्लृ आदेश होता है ।। नि+आद्+ण=न्याद: (भोजन); नि+घस्+अप्=निघस: (भोजन) ।।

व्यधजपोरनुपसर्गे ।।३।३।६१।।

व्यधजपो: ६।२।। अनुपसर्गे ७।१।। स०—व्यध० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व: । अनुपसर्ग इत्यत्र नञ्तत्पुरुष: ।। अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—व्यधजप इत्येताभ्यां धातुभ्यां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाप् प्रत्ययो भवति, उपसर्ग उपपदे तु न भवति ।। उदा०—व्यध: । जप: ।।

भाषार्थ:—[अनुपसर्गे] उपसर्गरहित [व्यधजपो:] व्यध तथा जप धातुओं

से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—व्यधः (चोट)। जपः (जपना)॥

यहाँ से 'अनुपसर्गे' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी॥

स्वनहसोर्वा ॥३।३।६२॥

स्वनहसोः ६।२॥ वा अ०॥ स०—स्वन० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—अनुपसर्गे, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—उपसर्गरहिताभ्यां स्वन हस इत्येताभ्यां धातुभ्यां वाऽप् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च॥ उदा०—स्वनः, स्वानः। हसः, हासः॥

भाषार्थः—उपसर्गरहित [स्वनहसोः] स्वन और हस धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [वा] विकल्प से अप् प्रत्यय होता है। पक्ष में भावे (३।३।१८) से घञ् हो गया है, क्योंकि 'भावे' से घञ् की प्राप्ति में ये सब सूत्र हैं। घञ् पक्ष में अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि हो ही जायेगी॥ उदा०—स्वनः (शब्द करना), स्वानः। हसः (हँसना), हासः॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी॥

यमः समुपनिविषु च ॥३।३।६३॥

यमः ५।१॥ समुपनिविषु ७।३॥ च० अ०॥ स०—सम् च उपश्च निश्च विश्च समु··वयः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—वा, अनुपसर्गे, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—सम् उप नि वि इत्येतेषूपपदेषु अनुपसर्गेऽपि यम् धातोर्वाऽप् प्रत्ययो भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च॥ उदा०—संयमः, संयामः। उपयमः, उपयामः। नियमः, नियामः। वियमः, वियामः। यमः, यामः॥

भावार्थः—[समुपनिविषु] सम् उप नि वि उपसर्गपूर्वक तथा निरुपसर्ग [च] भी [यमः] यम धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से अप् प्रत्यय होता है॥ पक्ष में यथाप्राप्त घञ् होगा॥ उदा०—संयमः (संयम), संयामः। उपयमः (विवाह), उपयामः। नियमः (नियम), नियामः। वियमः (दुःख), वियामः। यमः (संयम), यामः॥

नौ गदनदपठस्वनः ॥३।३।६४॥

नौ ७।१॥ गदनदपठस्वनः ५।१॥ स०—गदश्च नदश्च पठश्च स्वन् च गद··स्वन्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—वा, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—निपूर्वेभ्यो गदादिभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके

संज्ञायां भावे च विकल्पेनाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निगदः, निगादः । निनदः, निनादः । निपठः, निपाठः । निस्वनः, निस्वानः ॥

भाषार्थः—[नौ] नि पूर्वक [गदनदपठस्वनः] गद, नद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में घञ् प्रत्यय होगा ॥ उदा०—निगदः (भाषण), निगादः । निनदः (आवाज), निनादः । निपठः (पढ़ना), निपाठः । निस्वनः (आवाज करना), निस्वानः ॥

यहाँ से 'नौ' की अनुवृत्ति ३।३।६५ तक जायेगी ॥

क्वणो वीणायां च ॥३।३।६५॥

क्वणः ५।१॥ वीणायाम् ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—नौ, वा, अनुपसर्गे, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः क्वणधातोर्नि-पूर्वादनुपसर्गाच्च वीणायां च विषये कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च विकल्पेनाऽप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निक्वणः, निक्वाणः । अनुपसर्गात्—क्वणः, क्वाणः । वीणायाम्—कल्याणप्रक्वणा वीणा, कल्याणप्रक्वाणा ॥

भाषार्थः—नि पूर्वक, अनुपसर्ग, तथा [वीणायाम्] वीणा विषय होने पर [च] भी [क्वणः] क्वण धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में विकल्प से अप् प्रत्यय होता है ॥ पक्ष में घञ् भी होगा ॥ उदा०—निक्वणः (शब्द), निक्वाणः । क्वणः (आवाज), क्वाणः । कल्याणप्रक्वणा वीणा (उत्तम शब्दवाली वीणा), कल्याणप्रक्वाणा ॥

यहाँ सोपसर्ग क्वण धातु से ही वीणा विषय होने पर प्रत्यय होता है, अनुपसर्ग से नहीं । सो 'क्वण' का केवल आवाज ही अर्थ होगा ॥

नित्यं पणः परिमाणे ॥३।३।६६॥

नित्यम् १।१॥ पणः ५।१॥ परिमाणे ७।१॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—'पण व्यवहारे स्तुतौ च' अस्माद् धातोः परिमाणे गम्यमाने कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च नित्यम् अप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मूलकपणः, शाकपणः ॥

भाषार्थः—[परिमाणे] परिमाण गम्यमान होने पर [पणः] पण धातु से [नित्यम्] नित्य ही कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ पण धातु से अप् प्रत्यय करके पणः बनाकर मूलक एवं शाक के साथ षष्ठी-तत्पुरुष समास हो गया है ॥ उदा० – मूलकपणः (मूली के गट्ठे, जो बेचने के लिये गिनकर रखे जाते हैं), शाकपणः (शाक का गट्ठा) ॥

मदोऽनुपसर्गे ॥३।३।६७॥

मदः ५।१॥ अनुपसर्गे ७।१॥ स०—अनुप० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनुपसर्गाद् मदधातोः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाप् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—विद्यया मदः=विद्यामदः । धनेन मदः=धनमदः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गे] उपसर्गरहित [मदः] मद धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—विद्यामदः (विद्या के कारण अभिमान), धनमदः (धन के कारण अभिमान) ॥ विद्यामदः आदि में कर्तृकरणे० (२।१।३१) से समास होता है ॥

प्रमदसम्मदौ हर्षे ॥३।३।६८॥

प्रमदसम्मदौ १।२॥ हर्षे ७।१॥ स०—प्रमद० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हर्षेऽभिधेये प्रमद सम्मद इत्येतौ शब्दौ अप्प्रत्ययान्तौ निपात्येते कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—कन्यानां प्रमदः । कोकिलानां सम्मदः ॥

भाषार्थः—[हर्षे] हर्ष अभिधेय होने पर [प्रमदसम्मदौ] प्रमद और सम्मद ये शब्द अपप्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ पूर्व सूत्र से अनुपसर्ग मद धातु से अप् प्राप्त था । यहां प्र तथा सम् पूर्वक मद धातु से भी अप् हो जाये, अतः निपातन कर दिया है ॥ उदा०— कन्यानां प्रमदः (कन्याओं का हर्ष) । कोकिलानां सम्मदः (कोयलों का हर्ष) ॥

समुदोरजः पशुषु ॥३।३।६९॥

समुदोः ७।२॥ अजः ५।१॥ पशुषु ६।३॥ स०—सम् च उद् च समुदौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम् उद् इत्येतयोरुपपदयोः अज धातो कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाप् प्रत्ययो भवति पशुविषये ॥ उदा०—समजः पशूनाम् । उदजः पशूनाम् ॥

भाषार्थः—[समुदोः] सम् उत् पूर्वक [अजः] अज धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में, समुदाय से [पशुषु] पशुविषय प्रतीत हो, तो अप् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—समजः पशूनाम् (पशुओं का समूह) । उदजः पशूनाम् (पशुओं की प्रेरणा) ॥

अक्षेषु ग्लहः ॥३।३।७०॥

अक्षेषु ७।३॥ ग्लहः १।१॥ अनु०—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे,

धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—ग्लह इति अप्प्रत्ययान्तो निपात्यते अक्षविषये कर्तृभिन्ने कारके भावे च, लत्वं च भवति ग्रहधातोरत्र निपातनात् ।। **उदा०**—अक्षस्य ग्लहः ।।

भाषार्थः—[ग्लहः] **ग्लह शब्द में [अक्षेषु] अक्ष विषय हो, तो ग्रह धातु से अप् प्रत्यय तथा लत्व निपातन से होता है कर्तृभिन्न कारक तथा भाव में ।। ग्रह धातु से ग्रहवृद्०** (३।३।५८) **से अप् सिद्ध ही था, लत्वार्थ निपातन है ।** उदा०—अक्षस्य ग्लहः (द्यूतक्रीडा में लगाई गई शर्त =धन जिसे जीतनेवाला ग्रहण करता है)।।

प्रजने सर्त्तेः ।।३।३।७१।।

प्रजने ७।१।। सर्त्तेः ५।१।। **अनु०**—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—प्रजनम् =प्रथमं गर्भग्रहणम् । प्रजनेऽर्थे वर्त्तमानात् सृधातोः कर्तृभिन्ने कारके भावे चाऽप् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—गवामुपसरः, पशूनामुपसरः ।।

भाषार्थः—[प्रजने] **प्रजन अर्थ में वर्त्तमान [सर्त्तेः] सृ धातु से अप् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ।।** उदा० **गवामपसरः (गौओं का गर्भग्रहणार्थ प्रथम बार गमन), पशूनामुपसरः (पशुओं का गर्भग्रहणार्थ प्रथम बार गमन) ।।**

ह्वः सम्प्रसारणं च न्यभ्युपविषु ।।३।३।७२।।

ह्वः ५।१।। सम्प्रसारणम् १।१।। च अ० ।। न्यभ्युपविषु ७।३।। स० —न्यभ्यु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। **अनु०**—अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—नि अभि उप वि इत्येतेषूपपदेषु ह्वेञ धातोः सम्प्रसारणम् अप् प्रत्ययश्च भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ।। उदा०—निहवः । अभिहवः । उपहवः । विहवः ।।

भाषार्थः—[न्यभ्युपविषु] **नि अभि उप तथा वि पूर्वक [ह्वः] ह्वेञ धातु से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अप् प्रत्यय होता है [च] एवं ह्वेञ को [सम्प्रसारणम्] सम्प्रसारण भी हो जाता है ।** उदा०—निहवः (बुलाना)। **अभिहवः (सब ओर से बुलाना)। उपहवः (समीप बुलाना) । विहवः (प्रबलता से बुलाना) ।। ह्वेञ् को आदेच उपदे०** (६।१।४४) **से ह्वा बन कर प्रकृत सूत्र से सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय होकर 'नि ह् उ आ अप्' रहा । सम्प्रसारणाच्च** (६।१।१०४) **लगकर 'नि हु अ' बना, पूर्ववत् गुण तथा अवादेश होकर निहवः आदि रूप बन गये ।।**

यहां से 'ह्वः सम्प्रसारणम्' की अनुवृत्ति ३।३।७५ तक जायेगी ।।

आङि युद्धे ॥३।३।७३॥

आङि ७।१॥ युद्धे ७।१॥ अनु०— ह्वः सम्प्रसारणम्, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—युद्धेऽभिधेये आङि उपपदे ह्वेञ्धातोः सम्प्रसारणमप् प्रत्ययश्च भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ॥ उदा०—आहूयन्तेऽस्मिन् =आहवः ॥

भाषार्थः—[युद्धे] युद्ध अभिधेय हो, तो [आङि] आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु को सम्प्रसारण तथा अप् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में ॥ उदा०—आहवः (युद्धक्षेत्र) ॥

निपानमाहावः ॥३।३।७४॥

निपानम् १।१॥ आहावः १।१॥ अनु०—ह्वः सम्प्रसारणण, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, धातोः,प्रत्ययः,परश्च ॥ अर्थः—आङ्पूर्वाद् ह्वेञ्धातोः सम्प्रसारणम्, अप् प्रत्ययो वृद्धिश्च निपात्यते,निपानेऽभिधेये कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ॥ निपिबन्ति अस्मिन्निति निपानम् ॥ उदा०— आहूयन्ते पशवो जलपानाय यत्र स आहावः ॥

भाषार्थः—[निपानम्] निपान अभिधेय हो, तो आङ् पूर्वक ह्वेञ् धातु से अप् प्रत्यय सम्प्रसारण तथा वृद्धि भी निपातन से करके [आहावः] आहाव शब्द सिद्ध करते हैं कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में। निपान जलाधार को कहते हैं, जो कि कुओं के समीप पशुओं के जल पीने के लिये बनाया जाता है ॥ उदा०—आहावः (पशुओं के जल पीने का चबच्चा) ॥

भावेऽनुपसर्गस्य ॥३।३।७५॥

भावे ७।१॥ अनुपसर्गस्य ६।१॥ स०—न विद्यत उपसर्गो यस्य सोऽनुपसर्गः, तस्य, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—ह्वः सम्प्रसारणम, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहितस्य ह्वेञ्धातोः सम्प्रसारणम् अप् प्रत्ययश्च भवति भावे वाच्ये ॥ उदा०—हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । हवः ॥

भाषार्थः—[अनुपसर्गस्य] उपसर्गरहित ह्वेञ् धातु से [भावे] भाव में अप् प्रत्यय तथा सम्प्रसारण हो जाता है ॥

यहां से 'भावेऽनुपसर्गस्य' की अनुवृत्ति ३।३।७६ तक जायेगी ॥

हनश्च वधः ॥३।३।७६॥

हनः ६।१॥ च अ० ॥ वधः १।१॥ अनु०—भावेऽनुपसर्गस्य, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गरहिताद् हन्धातोर्भावेऽप् प्रत्ययो भवति, तत्संनियोगेन च हनो वध आदेशो भवति ॥ उदा०—वधश्चौराणाम्, कंसस्य वधः ॥

भाषार्थः—अनुपसर्ग [हनः] हन् धातु से अप् प्रत्यय भाव में होता है, [च] तथा प्रत्यय के साथ ही साथ हन को [वधः] वध आदेश भी हो जाता है ।। यह वध आदेश अन्तोदात्त होता है, सो अनुदात्त (३।१।४) अप् परे रहते वध के अ का अतो लोपः (६।४।४८) से लोप करने पर अनुदात्तस्य च० (६।१।१५५) से अप् को उदात्त हो जाता है ।। उदा०—वधश्चोराणाम् (चोरों को मारना), कंसस्य वधः (कंस का मारा जाना) ।।

यहाँ से 'हनः' की अनुवृत्ति ३।३।८७ तक जाती है ।।

मूर्त्तौ घनः ।।३।३।७७।।

मूर्त्तौ ७ १।। घनः १।१।। अनु०—हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—मूर्त्तिः=काठिन्यम् । मूर्त्ताविभिधेयायां हन्-धातोरप् प्रत्ययो भवति हनश्च 'घन' आदेशो भवति ।। उदा०—अभ्रघनः, दधिघनः, घनो मेघः, घनं वस्त्रम् ।।

भाषार्थः—[मूर्त्तौ] मूर्त्ति=काठिन्य अभिधेय हो, तो हन धातु से अप् प्रत्यय होता है, तथा हन को [घनः] घन आदेश भी हो जाता है ।। उदा०—अभ्रघनः (बादल का घनापन), दधिघनः (दही का कड़ापन), घनो मेघः (घने बादल), घनं वस्त्रम् ।।

यहाँ से 'घनः' की अनुवृत्ति ३।३।८३ तक जायेगी ।।

अन्तर्घनो देशे ।।३।३।७८।।

अन्तर्घनः १।१।। देशे ७।१।। अनु०—घनः, हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—देशेऽभिधेये अन्तःपूर्वाद् हन् धातोरप् प्रत्ययो भवति कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम्, तस्य च हनः घनादेशो निपात्यते ।। उदा०—अन्तर्घनो देशः ।।

भाषार्थः—[देशे] देश अभिधेय हो, तो कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अन्तर्घनः] अन्तर्घन शब्द में अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय तथा हन को घन आदेश निपातन किया जाता है ।। उदा०—अन्तर्घनः (देशविशेष) ।।

अगारैकदेशे प्रघणः प्रघाणश्च ।।३।३।७९।।

अगारैकदेशे ७।१।। प्रघणः १।१।। प्रघाणः ।।१।१।। च अ० ।। स०—एकश्चासौ देशश्च एकदेशः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः । अगारस्य=गृहस्य एकदेशः अगारैकदेशः, षष्ठी-तत्पुरुषः ।। अनु०—घनः, हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अगारैकदेशे वाच्ये प्रघणः प्रघाणः इत्येतौ शब्दौ निपात्येते कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ।। प्रपूर्वाद् हनधातोरप् प्रत्ययः, हन्तेश्च घनादेशो निपात्यते कर्मणि, पक्षे वृद्धिश्च ।। प्रविशद्भिर्जनैः पादैः प्रकर्षेण हन्यते इति प्रघणः, प्रघाणः ।।

भाषार्थ:—[अगारैकदेशे] गृह का एकदेश वाच्य हो, तो [प्रघण: प्रघाण:] प्रघण और प्रघाण शब्द में प्र पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन को घन आदेश कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में (कर्म में) निपातन किये जाते हैं ।। यहां पूर्वपदात्० (८।४।३) से णत्व हो जाता है ।। उदा०—प्रघण: (ड्योढ़ी) । प्रघाण: ।।

उद्घनोऽत्याधानम् ।।३।३।८०।।

उद्घन: १।१।। अत्याधानम् १।१।। अनु०—घन:, हन:, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अति=उपरि आधीयन्तेऽस्मिन्निति अत्याधानम् ।। अर्थ:—अत्याधाने वाच्ये उत्पूर्वाद् हन् धातोरप् प्रत्ययो हनश्च घन आदेशश्च निपात्यते कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ।। उद् हन्यन्ते यस्मिन् काष्ठानीति उद्घन: ।।

भाषार्थ:—[उद्घन:] उद्घन शब्द में [अत्याधानम्] अत्याधान वाच्य हो, तो उत् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय तथा हन् को घनादेश किया जाता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में ।। जिस काष्ठ को फाड़ना होता है, उसके नीचे एक काष्ठ और रखते हैं, उसे अत्याधान कहते हैं ।। उदा०—उद्घन: (जिस काष्ठ पर काष्ठ को रखकर बढ़ई लोग छीलते हैं वह) ।।

अपघनोऽङ्गम् ।।३।३।८१।।

अपघन: १।१।। अङ्गम् १।१।। अनु०—घन:, हन:, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—अपपूर्वाद् हन धातोरप् प्रत्ययो हनो घनादेशश्च निपात्यते, अङ्गं चेत् तद् भवति, कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ।। अपहन्यतेऽनेनेति अपघन: ।।

भाषार्थ:—अप पूर्वक हन् धातु से [अङ्गम्] अङ्ग=शरीर का अवयव अभिधेय हो, तो अप प्रत्यय तथा हन् को घन आदेश [अपघन:] अपघन शब्द में निपातन किया जाता है, कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में ।। 'अपघन:' (हाथ या पैर को ही कहते हैं, शरीर के सब अङ्गों को नहीं) ।।

करणेऽयोविद्रुषु ।।३।३।८२।।

करणे ७।१।। अयोविद्रुषु ७।३।। स०—अयश्च विश्च द्रुश्च अयोविद्रव:, तेषु, इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व: ।। अनु०—घन:, हन:, अप्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—

अयस् वि द्रु इत्येतेषूपपदेषु करणे कारके हन्धातोरप् प्रत्ययो भवति, हनः स्थाने घनादेशश्च भवति ।। उदा०—अयो हन्यतेऽनेनेति अयोघनः । विघनः । द्रुघनः ।।

भाषार्थः—[अयोविद्रुषु] अयस् वि तथा द्रु उपपद रहते हन् धातु से [करणे] करण कारक में अप् प्रत्यय होता है, तथा हन् के स्थान में घनादेश भी होता है ।। उदा०—अयोघनः (हथौड़ी) । विघनः (हथौड़ा) । द्रुघनः (कुल्हाड़ा) ।।

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।३।८४ तक जायेगी ।।

स्तम्बे क च ।।३।३।८३।।

स्तम्बे ७।१।। क लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ।। च अ० ।। अनु०—करणे, घनः, हनः, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—स्तम्ब शब्द उपपदे करणे कारके हनधातोः कः प्रत्ययो भवति अप्, च, अप्सन्नियोगेन च हन्तेर्घनादेशो भवति ।। उदा०—स्तम्बो हन्यतेऽनेन स्तम्बघ्नः । स्तम्बघनः ।।

भाषार्थः—[स्तम्बे] स्तम्ब शब्द उपपद रहते करण कारक में हन् धातु से [क] क प्रत्यय [च] तथा अप् प्रत्यय भी होता है, और अप् प्रत्यय परे रहते हन को घन आदेश भी हो जाता है ।। करण कारक का सम्बन्ध क तथा अप् दोनों के साथ लगेगा । क प्रत्यय परे रहते गमहनजन० (६।४।९८) से उपधालोप तथा, हो हन्तेर्ञ्णि० (७।३।५४) से ह को कुत्व हो जायेगा ।। उदा०—स्तम्बघ्नः (घास जिससे काटी जाय, खुरपा) । स्तम्बघनः ।।

परौ घः ।।३।३।८४।।

परौ ७।१।। घः १।१।। अनु०—करणे, हनः, अप्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—परिपूर्वाद् हन् धातोः करणे कारके अप् प्रत्ययो भवति, हन्तेश्च 'घ' आदेशो भवति ।। उदा०—परिहन्यन्तेऽनेनेति=परिघः, पलिघः ।।

भाषार्थः—[परौ] परि पूर्वक हन् धातु से करण कारक में अप प्रत्यय होता है, तथा हन् के स्थान में [घः] घ आदेश भी होता है ।। परेश्च घाङ्कयोः (८।२।२२) से र को विकल्प से लत्व होकर—पलिघः भी बनेगा ।। उदा०—परिघः (लोहे का मुद्‌गर), पलिघः ।।

उपघ्न आश्रये ।।३।३।८५।।

उपघ्नः १।१।। आश्रये ७।१।। अनु०—हनः, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—उपघ्न इत्यत्र उपपूर्वाद् हन्धातोरप् प्रत्ययः उपधालोपश्च निपात्यते आश्रये गम्यमाने, कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायाम् ।। उदा०—पर्वतेन उपहन्यते=पर्वतोपघ्नः; ग्रामेण उपहन्यते=ग्रामोपघ्नः ।।

भाषार्थ: — [उपघ्न:] उपघ्न शब्द में उप पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय, तथा हन् की उपधा का लोप निपातन किया जाता है [आश्रये] आश्रय=सामीप्य प्रतीत होने पर, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में ॥ 'उप ह् न् अप्' यहाँ पूर्ववत् हन् के ह् को कुत्व होकर उपघ्न: बना। एवं पर्वत तथा ग्राम के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास हो गया है ॥ उदा०—पर्वतोपघ्न: (पर्वत के समीपस्थ), ग्रामोपघ्न: (ग्राम के समीपस्थ)॥

संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ॥३।३।८६॥

संघोद्घौ १।२॥ गणप्रशंसयो: ७।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व:॥ अनु०—हन:, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—संघ उद्घ इत्येतौ शब्दौ निपात्येते यथासंख्यं गणेऽभिधेये प्रशंसायां च गम्यमानायां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च। सम् उद् उपपदयो: हन्धातोरप् प्रत्यय:, टिलोपो घत्वञ्च निपात्यते ॥ उदा०—सङ्घ: (संहननं) पशूनाम्। उद्हन्यते=उत्कृष्टो ज्ञायत इति उद्घो मनुष्याणाम् ॥

भाषार्थ:—[संघोद्घौ] संघ और उद्घ शब्द यथासंख्य करके [गणप्रशंसयो:] गण अभिधेय तथा प्रशंसा गम्यमान होने पर निपातन किये जाते हैं, कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञाविषय में तथा भाव में। सम्पूर्वक हन धातु से अप् प्रत्यय, हन् के टि भाग का (अर्थात् अन् का) लोप, तथा हकार को घत्व निपातन करके भाव में संघ: शब्द बनाते हैं, गण अभिधेय होने पर। इसी प्रकार उत् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय, टि लोप तथा घत्व, प्रशंसा गम्यमान होने पर कर्म में निपातन करके उद्घ: शब्द बनाते हैं ॥ उदा०—संघ: पशूनाम् (पशुओं को इकट्ठा करना)। उद्घो मनुष्याणाम् (मनुष्यों में प्रशस्त ॥

निघो निमितम् ॥३।३।८७॥

निघ: १।१॥ निमितम् १।१॥ अनु०—हन:, अप्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ समन्तात् मितं निमितम् ॥ अर्थ:—निमितेऽभिधेये निपूर्वाद् हन्धातोरप् प्रत्यय:, टिलोपो घत्वं च निपात्यते ॥ निर्विशेषं हन्यन्ते=ज्ञायन्ते इति निघा वृक्षा: ॥

भाषार्थ:—सब प्रकार से जो मित बराबर वह 'निमित' कहाता है। [निमितम्] निमित अभिधेय हो, तो [निघ:] नि पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय, टि भाग का लोप, तथा घ आदेश निपातन करके निघ शब्द सिद्ध करते हैं ॥ उदा०—निघा वृक्षा: (एक बराबर ऊँचाई के वृक्ष)। निघा: शालय: (एक बराबर के ऊँचाई के धान) ॥

ड्वितः क्त्रिः ॥३।३।८८॥

ड्वितः ५।१॥ क्त्रिः १।१॥ स०—डु इत् यस्य स ड्वित्, तस्माद्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ड्वितो धातोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च क्त्रिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—डुपचष्—पाकेन निर्वृत्तम्=पक्त्रिमम्। उप्त्रिमम् । कृत्रिमम् ॥

भाषार्थः—[ड्वितः] डु इत्संज्ञक है जिन धातुओं का उनसे कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [क्त्रिः] क्त्रि प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।३।५ में देखें ॥

ट्वितोऽथुच् ॥३।३।८९॥

ट्वितः ५।१॥ अथुच् १।१॥ स०—टु इत् यस्य स ट्वित्, तस्मात्, बहुव्रीहिः॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ट्वितो धातोः कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च अथुच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—वेपथुः । श्वयथुः । टुक्षु—क्षवथुः ॥

भाषार्थः—[ट्वितः] टु इत्संज्ञक है जिन धातुओं का उनसे कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अथुच्] अथुच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—वेपथुः । श्वयथुः । क्षवथुः (खांसी) ॥ सिद्धि परि० १।३।५ में देखें ॥

यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्॥३।३।९०॥

यज···रक्षः५।१॥ नङ् १।१॥ स०—यजश्च याचश्च यतश्च विच्छश्च प्रच्छश्च रक्ष् च इति यज···रक्ष्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यज देवपूजादौ, टुयाचृ याच्ञायाम्, यती प्रयत्ने, विच्छ गतौ, प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्, रक्ष रक्षणे इत्येतेभ्यो धातुभ्यः कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च नङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विश्नः । प्रश्नः । रक्ष्णः ॥

भाषार्थः—[यज·· रक्षः] यज् याच आदि धातुओं से कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [नङ्] नङ् प्रत्यय होता है ॥

यज्+नङ्,इस अवस्था में स्तोः श्चुना० (८।४।३९) से श्चुत्व होकर यज्+ञ=यज्ञः बना है । याच्+न, यहाँ पर भी श्चुत्व तथा टाप् होकर याच्ञा (मांगना) बना है । 'यती प्रयत्ने' से यत्नः बन ही जायेगा । विच्छ्+न, प्रच्छ्+न, यहाँ च्छ्वोः शू० (६।४।१९) से च्छ के स्थान में श् होकर--विश्+न=विश्नः (नक्षत्र); प्रच्छ+न= प्रश्नः बन गया । रक्ष्+न, यहाँ ष्टुना ष्टुः (८।४।४०) से ष्टुत्व होकर रक्ष्णः (रक्षा करना) बना है ॥

स्वपो नन् ॥३।३।९१॥

स्वपः ५।१॥ नन् १।१॥ अनु०—भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्वप् धातोर्भावे नन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वप्नः ॥

भाषार्थः—[स्वपः] 'ञिष्वप् शये' धातु से भाव में [नन्] नन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—स्वप्नः (सोना) ॥

उपसर्गे घोः किः ॥३।३।९२॥

उपसर्गे ७।१॥ घोः ५।१॥ किः १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गे उपपदे घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—विधिः, निधिः, प्रतिनिधिः, प्रदिः, अन्तर्द्धिः ॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [घोः] घुसंज्ञक धातुओं से [किः] कि प्रत्यय कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में होता है ॥ सिद्धि में दाधा घ्वदाप (१।१।१९) से डुदाञ् डुधाञ् की घु संज्ञा होकर कि प्रत्यय हुआ है । आतो लोप इटि च (६।४।६४) से 'आ' का लोप होकर वि ध् इ=विधिः आदि बन गये हैं ॥ उदा०—विधिः (विधान), निधिः (खजाना), प्रतिनिधिः (प्रतिनिधि), प्रदिः (प्रदान), अन्तर्द्धिः (छिपना) ॥ अन्तःशब्दस्य अङ्किविधिसमासणत्वेषूपसंख्यानम् (वा० १।४।६५) इस वार्त्तिक से अन्तर् शब्द की उपसर्ग संज्ञा होती है ॥

यहाँ से 'घोः किः' की अनुवृत्ति ३।३।९३ तक जायेगी ॥

कर्मण्यधिकरणे च ॥३।३।९३॥

कर्मणि ७।१॥ अधिकरणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—घोः, किः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदेऽधिकरणे कारके घुसंज्ञकेभ्यो धातुभ्यः किः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जलं धीयतेऽस्मिन्निति जलधिः । शरो धीयतेऽस्मिन्निति शरधिः । उदकं धीयतेऽस्मिन्निति उदधिः ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [अधिकरणे] अधिकरण कारक में [च] भी घुसंज्ञक धातुओं से 'कि' प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जलधिः (समुद्र) । शरधिः (तूणीर=तरकश) । उदधिः (सागर) । उदधिः में उदक को 'उद' आदेश पेषंवासवाहनधिषु च (६।३।५६) से होता है ॥

स्त्रियां क्तिन् ॥३।३।९४॥

स्त्रियाम् ७।१॥ क्तिन् १।१॥ अनु०—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे,

धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—धातो: स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च क्तिन् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—कृति:, चिति:, मति: ।।

भाषार्थ:—धातुमात्र से [स्त्रियाम्] स्त्रीलिङ्ग में [क्तिन्] क्तिन् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ।। मन् धातु से 'मति:' अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७) से नकार लोप होकर बनेगा । कित् होने से कृति: चिति: में गुण नहीं हुआ है ।।

यहाँ से 'स्त्रियाम्' की अनुवृत्ति ३।३।११२ तथा तक 'क्तिन्' की अनुवृत्ति ३।३।९७ तक जाती है ।।

स्थागापापचो भावे ।।३।३।९५।।

स्था पच: ५।१।। भावे ७।१।। स०—स्थाश्च गाश्च पाश्च पच् च स्थागापापच्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्व: ।। अनु०—स्त्रियाम्, क्तिन्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—स्था, गा, पा, पच इत्येतेभ्यो धातुभ्य: स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् प्रत्ययो भवति ।। पूर्वेणैव सिद्धे पुनर्वचनं स्थादिभ्य: आतश्चोपसर्गे (३।३।१०६) इत्यनेनाङ् मा भूत् इत्येवमर्थम् । पक्ति: इत्यत्र षिद्भिदादिभ्यो० (३।३।१०४) इत्यनेनाङि प्राप्ते क्तिन् विधीयते ।। उदा०—प्रस्थिति: । उद्गीति:, संगीति: । प्रपीति:, सम्पीति: । पक्ति: ।।

भाषार्थ:—[स्थागापापच:] स्था गा पा पच् इन धातुओं से स्त्रीलिङ्ग [भावे] भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है ।। पूर्व सूत्र से ही क्तिन् सिद्ध था, पुनर्वचन स्था गा पा के आकारान्त होने से आतश्चोपसर्गे (३।३।१०६) से जो अङ् प्रत्यय प्राप्त था, उसके बाधनार्थ है । तथा पच् से भी षिद्भिदादिभ्यो० (३।३।१०४) से अङ् प्राप्त था, उसके बाधनार्थ है ।। उदा०—प्रस्थिति: (अवस्था) । उद्गीति: (सामगान), संगीति: (संगीत)। प्रपीति: (पीना), सम्पीति: (इकट्ठा मिलकर पीना)। पक्ति: (पकाना) ।।

द्यतिस्यतिमा० (७।४।४०) से स्था के अन्त्य अल् (१।१।५१) आ के स्थान में इत्व होकर प्रस्थिति: बना है । उद्गीति: आदि में घुमास्थागापा० (६।४।६६) से पूर्ववत् अन्त्य अल् को ईत्व हुआ है ।। पच को चो: कु: (८।२।३०) से कुत्व होकर पक्ति: बना है ।।

यहाँ से 'भावे' की अनुवृत्ति ३।३।९६ तक जायेगी ।।

मन्त्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्त: ।।३।३।९६।।

मन्त्रे ७।१।। वृषे—रा: १।३, पञ्चम्यर्थे प्रथमा ।। उदात्त: १।१।। स०-वृषश्च इषश्च पंचश्च मनश्च विदश्च भूश्च वीश्च राश्च वृष…रा:, इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व: ।। अनु०--भावे, स्त्रियाम् क्तिन्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ: –मन्त्रे विषये वृष्

सेचने, इषु इच्छायाम्, डुपचष् पाके, मन ज्ञाने, विद ज्ञाने, भू सत्तायाम्, वी गतिव्याप्तिप्रजनादिषु, रा दाने इत्येतेभ्यो धातुभ्यः क्तिन् प्रत्ययो भवति, स च उदात्तः स्त्रीलिङ्गे भावे ॥ उदा०– वृष्टिः (ऋक् १।३८।८)। इष्टिः (ऋक् ४।४।७) पक्तिः (ऋक्० ४।२४।५)। मतिः (ऋक् १।१४१।१) वित्तिः। भूतिः। यन्ति वीतये (अथ० २०।६९।३)। रातिः (ऋक् १।३४।१)॥

भाषार्थः—[मन्त्रे] मन्त्रविषय में [वृषे...राः] वृष इष् आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है, [उदात्तः] और वह उदात्त होता है॥ ञ्नित्यादिर्नि० (६।१।१९१) से क्तिन्प्रत्ययान्त शब्द को आद्युदात्त प्राप्त था, यहाँ प्रत्यय को उदात्त कर दिया है॥ मति की सिद्धि ३।३।९४ सूत्र पर देखें॥

यहां से 'उदात्तः' की अनुवृत्ति ३।३।१०० तक जायेगी॥

ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्त्तयश्च ॥३।३।९७॥

ऊति···कीर्त्तयः १।३॥ च अ० ॥ स०—ऊति० इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—उदात्तः, स्त्रियां, क्तिन्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः प्रत्ययः परश्च॥ अर्थः—ऊत्यादयः शब्दा अन्तोदात्ता निपात्यन्ते॥ ऊतिः, इत्यत्र अव धातोः क्तिन्, ज्वरत्वर० (६।४।२०) इत्यनेन वकारस्य उपधायाश्च स्थाने ऊठ् भवति। स्वरार्थं निपात्यते, प्रत्यय ऊठ् च सिद्ध एव॥ यूतिः, इत्यत्र यु धातोर्दीर्घत्वं निपात्यते, क्तिन् तु सिद्ध एव। एवं जूतिः इत्यत्र जु धातोः दीर्घत्वं निपात्यते। षोऽन्तकर्मणि इत्यस्माद् धातोः क्तिनि परतः द्यतिस्यति० (७।४।४०) इत्यनेन इत्वे प्राप्ते तदभावार्थं निपातनम्। अथवा—सन धातोः जनसनखनां सञ्झलोः (६।४।४२) इति 'आत्वे' कृते सातिः इति रूपम्। तत्र स्वरार्थमेव निपातनं स्यात्। हनधातोर्हिधातोर्वा हेतिः रूपम्। यदा हन्तेस्तदा हकारस्य एत्वं निपात्यते, अनुनासिकलोपस्तु अनुदात्तोप० (६।४।३७) इत्यनेन सिद्ध एव। यदा 'हि' धातोस्तदा गुणो निपात्यते। कीर्त्तिः, इत्यत्र 'कृत संशब्दने' धातोश्चुरादित्वाण्णिचि कृते ण्यासश्रन्थो युच् (३।३।१०७) इति युचि प्राप्ते क्तिन् प्रत्ययो निपात्यते॥

भाषार्थः—[ऊति···कीर्त्तयः] ऊत्यादि शब्द [च] भी अन्तोदात्त निपातन किये जाते हैं। 'क्तिन्' प्रत्यय तो सामान्य (३।३।९४) सब धातुओं से सिद्ध ही था, विशेष कार्य निपातन से करते हैं॥ ऊतिः में अव धातु से क्तिन् प्रत्यय, ज्वरत्वर० (६।४।२०) से उपधा तथा वकार के स्थान में ऊठ् होकर ऊठ् ति=ऊतिः (रक्षा) रूप सिद्ध ही था, पुनः अन्तोदात्त स्वर के लिए वचन है, अन्यथा क्तिन् के नित् होने से ञ्नित्यादि० (६।१।१९१) से आद्युदात्त होता॥ यूतिः (मिलाना), जूतिः (भागना) में क्रम से

यु जु धातुओं से दीर्घत्व तथा अन्तोदात्त स्वर निपातन है, प्रत्यय सिद्ध ही था। साति:(अन्त होना),'षोऽन्तकर्मणि' धातु से बनाएं, तो क्तिन् परे रहते जो द्यतिस्यति० (७।४।४०)से इत्व प्राप्त था, उसका अभाव निपातन है। अथवा 'षण् दाने' धातु से बनावें, तो जनसन० (६।४।४२) से आत्व हो ही जायेगा, केवल स्वरार्थ वचन है। हेति: (गति) हन् या हि धातु से बनेगा। हन् से बनाए, तो हकार को एत्व निपातन करेंगे। अनुनासिक लोप अनुदात्तोपदेश० (६।४।३७) से सिद्ध ही है। हि से सिद्ध करें, तो गुण निपातन से होगा, क्योंकि क्तिन् के कित् होने से क्ङिति च (१।१।५) से गुण निषेध प्राप्त था। कीर्ति: में कृत धातु के चुरादिगण की होने से ण्यन्त होकर ण्यासश्रन्थो० (३।३।१०७) से युच् प्रत्यय प्राप्त था, क्तिन् निपातन से कर दिया है। 'कृत् णि ति', यहाँ उपधायाश्च (७।१।१०१) से इत्व रपरत्व होकर किर् ति रहा। णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप, तथा उपधायां च (८।२।७८) से दीर्घ होकर कीर्तिः बन गया है ॥

व्रजयजोर्भावे क्यप् ॥३।३।९८॥

व्रजयजोः ६।२॥ भावे ७।१॥ क्यप् १।१॥ स०—व्रजश्च यज् च व्रजयजौ, तयोः व्रजयजोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—उदात्तः, स्त्रियाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—व्रज यज इत्येताभ्यां धातुभ्यां स्त्रीलिङ्गे भावे क्यप् प्रत्ययो भवति, स च उदात्तः ॥ उदा०—व्रज्या। इज्या ॥

भाषार्थः—[व्रजयजोः] व्रज तथा यज धातुओं से स्त्रीलिङ्ग [भावे] भाव में [क्यप्] क्यप् प्रत्यय होता है, और वह उदात्त होता है ॥ उदा०—व्रज्या (गमन)। इज्या (यज्ञ करना) ॥ यज को वचिस्वपियजा० (६।१।१५) से सम्प्रसारण हो जायेगा। क्यप् के पित् होने से अनुदात्तौ सुप्पितौ (३।१।४) से क्यप् को अनुदात्त प्राप्त था, उदात्त विधान कर दिया है ॥

यहाँ से 'क्यप्' की अनुवृत्ति ३।३।१०० तक जायेगी ॥

संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः ॥३।३।९९॥

संज्ञायाम् ७।१॥ सम…ञिणः ५।१॥ स०—समजश्च निषदश्च निपतश्च मनश्च विदश्च षुञ् च शीङ् च भृञ् च इण् च समज…भृञिण्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—क्यप्, उदात्तः, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—संज्ञायां विषये सम्पूर्वक अज, निपूर्वक षद् पत, मन, विद,षुञ्,शीङ्, भृञ्, इण् इत्येतेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां विषये भावे च क्यप् प्रत्ययो भवति,स च क्यप् उदात्तो भवति॥ उदा०—समजन्त्यस्याम्=समज्या। निषीदन्त्यस्याम्=निषद्या। निपत्या। मन्यते तया मन्या। विदन्ति तया=विद्या। सुन्वन्ति तस्यां सुत्या। शेरते तस्यां शय्या। भरणं=भृत्या। ईयते गम्यते यया इत्या ॥

भाषार्थः—[संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में [सम......ञिणः] सम् पूर्वक अज, नि पूर्वक षद तथा पत आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में क्यप प्रत्यय होता है, और वह उदात्त होता है ॥ उदा०—समुज्या (सभा)। निषद्या (बाजार)। निपत्या (युद्धभूमि)। मन्या (गले के पास की नाड़ी, जिससे व्यक्ति क्रुद्ध है ऐसा जाना जाता है)। विद्या। सुत्या (जिस वेला=काल में रस निकालते हैं, वह काल)। शय्या (खाट)। भृत्या। (जीविका)। इत्या (जिसके द्वारा जाते हैं, ऐसी लालटेन)॥ सुत्या, इत्या में ह्रस्वस्य पिति० (६।१।६६) से तुक् आगम हुआ है॥ शय्या में शीङ् धातु के ई को (१।१।५२) अयङ् यि क्ङिति (७।४।२२) से अयङ् होकर शयङ्+क्यप्, शय्+य=शय्या बन गया है॥

कृञः श च ॥३।३।१००॥

कृञः ५।१॥ श लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ०॥ अनु०—क्यप्, उदात्तः, स्त्रियां, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—कृञ् धातोः स्त्रियां कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च शः प्रत्ययो भवति चकारात् क्यप् च॥ भाष्येऽत्र "वा वचनं कर्त्तव्यं क्तिन्नर्थम्" इति वार्तिकमस्ति। तेन पक्षे क्तिन् प्रत्ययोऽपि भवति॥ उदा०—क्रिया, कृत्या, कृतिः॥

भाषार्थः—[कृञः] कृञ् धातु से स्त्रीलिङ्ग में कर्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में [श] श प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से क्यप् भी होता है॥ महाभाष्य में यहाँ 'वा वचनं कर्त्तव्यं क्तिन्नर्थम्' ऐसा कह कर पक्ष में क्तिन् प्रत्यय भी किया है। सो श क्यप् तथा क्तिन् तीन प्रत्यय होते हैं॥

यहाँ से 'श' की अनुवृत्ति ३।३।१०१ तक जायेगी॥

इच्छा ॥३।३।१०१॥

इच्छा १।१॥ अनु०—श, स्त्रियाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—इच्छा इत्यत्र इषेर्धातोः श प्रत्ययो भावे स्त्रियां निपात्यते। भावे सार्वधातु० (३।१।६७) इत्यनेन यकि प्राप्ते तदभावो निपातनाद् भवति॥

भाषार्थः—[इच्छा] इच्छा शब्द भाव स्त्रीलिङ्ग में शप्रत्ययान्त निपातन किया जाता है॥ भाव में श प्रत्यय निपातन करने से सार्वधातुके यक् (३।१।६७) से यक् प्राप्त था, उसका अभाव भी यहाँ निपातन है। इषुगमियमां० (७।३।७७) से इष् के षकार को छत्व, तथा छे च (६।१।७१) से तुक् होकर 'इत् छ् अ' बना। स्तोः श्चुना श्चुः (८।४।३९) से श्चुत्व, तथा टाप् होकर इच्छा (=अभिलाषा) शब्द बन गया है॥

अ प्रत्ययात् ॥३।३।१०२॥

अ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ प्रत्ययात् ५।१॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च 'अ' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चिकीर्षा, जिहीर्षा, पुत्रीया, पुत्रकाम्या, लोलूया, कण्डूया ॥

भाषार्थः—[प्रत्ययात्] प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अ] अ प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चिकीर्षा (करने की इच्छा)। जिहीर्षा (हरण करने की इच्छा)। पुत्रीया (अपने पुत्र की इच्छा), पुत्रकाम्या। लोलूया (बार-बार काटने की क्रिया)। कण्डूया (खुजली) ॥ परिशिष्ट १।१।५७ के समान चिकीर्ष जिहीर्ष धातु बनाकर इस सूत्र से अ प्रत्यय हो गया है। अ प्रत्यय करने का यही लाभ है कि कृत्तद्धितसमा० (१।२।४६) से इन सब की प्रातिपदिक संज्ञा होकर रूप चलेंगे ॥ इसी प्रकार पुत्रीय धातु परि० २।४।७१ के समान बनकर अ प्रत्यय होगा। पुत्रकाम्या में पुत्रकाम्य धातु काम्यच्च (३।१।६) से काम्यच् प्रत्यय होकर बना है। लोलूय धातु परि० १।१।४ के समान जानें। कण्डू शब्द से कण्ड्वादिभ्यो यक् (३।१।२७) से यक् प्रत्यय होकर 'कण्डूय' धातु बना है, पुनः अ प्रत्यय हो ही जायेगा। यह सब प्रत्ययान्त धातुएं हैं—सन्, क्यच्, यङ् आदि प्रत्यय आकर पुनः सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा सब की होती है। सर्वत्र अजाद्यतष्टाप् (४।१।४) से टाप् होगा ॥ क्तिन् का अपवाद यह सूत्र है। अ प्रत्यय के परे रहते अतो लोपः (६।४।४८) से धातुओं के अकार का लोप हो जाता है ॥

यहाँ से 'अ' की अनुवृत्ति ३।३।१०३ तक जायेगी ॥

गुरोश्च हलः ॥३।३।१०३॥

गुरोः ५।१॥ च अ० ॥ हलः ५।१॥ अनु०—अ, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हलन्तो यो गुरुमान् धातुस्तस्मात् स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च 'अ' प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कुण्डा, हुण्डा, ईहा, ऊहा ॥

भाषार्थः—[हलः] हलन्त जो [गुरोः] गुरुमान् धातु उनसे [च] भी स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अ प्रत्यय हो जाता है ॥ सिद्धि परि० १।४।११ में देखें। ईह ऊह धातुओं में दीर्घं च (१।४।१२) से ई ऊ की गुरु संज्ञा है। हलन्त हैं ही, सो प्रकृत सूत्र से 'अ' प्रत्यय तथा टाप् होकर ईहा ऊहा बन गया है। हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घा० (६।१।६६) से सु का लोप हो ही जायेगा ॥

षिद्भिदादिभ्योऽङ् ॥३।३।१०४॥

षिद्भिदादिभ्य: ५।३॥ अङ् १।१॥ स०—ष् इत यस्य स षिद्, बहुव्रीहिः। भिद् आदिर्येषां ते भिदादय:, बहुव्रीहिः। षित् च भिदादयश्च षिद्भिदादय:, तेभ्य:, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्य: स्त्रीलिङ्गे कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जृष्—जरा। त्रपूष्—त्रपा। भिदादिभ्य:— भिदा, छिदा, विदा ॥

भाषार्थ:—[षिद्भिदादिभ्य:] षकार इत्संज्ञक है जिनका, ऐसी धातुओं से तथा भिदादिगण-पठित धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में [अङ्] अङ् प्रत्यय होता है कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में ॥ उदा०—जरा (वृद्धावस्था)। त्रपा (लज्जा)। भिदादियों से—भिदा (फाड़ना)। छिदा (काटना)। विदा (जानना)॥ जृष् त्रपूष् षित् धातुएँ हैं, सो जृ अङ् बनकर जृ को ऋदृशो० (७।४।१६) से गुण रपरत्व होकर 'जर् अ' रहा, टाप् होकर जरा बना, त्रप् अङ् टाप्=त्रपा बना। सु का लोप हल्ङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से हो गया है। इसी प्रकार सब में जानें॥

यहाँ से 'अङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१०६ तक जायेगी ॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥३।३।१०५॥

चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्च: ५।१॥ च अ० ॥ स०—चिन्तिश्च पूजिश्च कथिश्च कुम्बिश्च चर्च् च चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्च्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—अङ्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—चिति स्मृत्याम्, पूज पूजायाम्, कथ वाक्यप्रबन्धे, कुबि आच्छादने, चर्च अध्ययने इत्येतेभ्यो धातुभ्य: स्त्रलिङ्गे कर्त्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे चाङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चिन्ता। पूजा। कथा। कुम्बा। चर्चा ॥

भाषार्थ:—[चिन्ति······चर्च:] चिन्त पूज आदि धातुओं से [च] भी स्त्रीलिङ्ग कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चिन्ता। पूजा। कथा। कुम्बा (मोटा घाघरा)। चर्चा (पढ़ना)॥ चिन्ति आदि सब धातुएं चुरादिगण की हैं, सो ण्यन्त होने से ण्यासश्रन्थो० (३।३।१०७) से युच् प्राप्त था, अङ् विधान कर दिया है। पश्चात् णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप हो ही जायेगा। चिति धातु के इदित् होने से इदितो नुम्० (७।१।५८) से नुमागम हो जाता है। सिद्धि पूर्ववत् ही जानें ॥

आतश्चोपसर्गे ॥३।३।१०६॥

आत: ५।१॥ च अ० ॥ उपसर्गे ७।१॥ अनु०—अङ्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च

कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उपसर्गं उपपद आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियां अङ् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च॥ उदा० - संज्ञायतेऽनेनेति=संज्ञा। उपधा। प्रदा। प्रधा। अन्तर्द्धा॥

भाषार्थः—[उपसर्गे] उपसर्ग उपपद रहते [आतः] आकारान्त धातुओं से [च] भी स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में अङ् प्रत्यय होता है॥ औत्सर्गिक क्तिन् प्राप्त था, उसका यह अपवाद है॥ उदा०—संज्ञा (नाम)। उपधा (स्थापन करना)। प्रदा (भेंट)। प्रधा (धारण करना)। अन्तर्द्धा (छिपना)॥

ण्यासश्रन्थो युच् ॥३।३।१०७॥

ण्यासश्रन्थः ५।१॥ युच् १।१॥ स०—णिश्च आसश्च श्रन्थ् च ण्यासश्रन्थ्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—ण्यन्तेभ्यो धातुभ्य आस श्रन्थ इत्येताभ्यां च धातुभ्यां स्त्रियां युच् प्रत्ययो भवति कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च॥ उदा०—णि—कारणा, हारणा। आस्—आसना। श्रन्थ—श्रन्थना॥

भाषार्थः—[ण्यासश्रन्थः] ण्यन्त धातुओं से, तथा आस उपवेशने (अदा० आ०), श्रन्थ विमोचनप्रतिहर्षयोः (क्या० प०) इन धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में [युच्] युच् प्रत्यय होता है कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में॥ उदा०—कारणा (कराना), हारणा (हराना)। आसना (बैठना)। श्रन्थना (ढीलापन)॥ सिद्धि में हेतुमति च (३।१।२६) से णिच् आकर कृ+णि रहा, वृद्धि होकर कारि की सनाद्यन्ता० (३।१।३२) से धातु संज्ञा हुई। कारि से पुनः प्रकृत सूत्र से युच् प्रत्यय आकर युवोरनाकौ (७।१।१) से अन, तथा णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप होकर 'कार् अन' रहा। अट्कुप्वाङ्० (८।४।२) से णत्व, तथा टाप् होकर कारणा बना है। इसी प्रकार हृ धातु से हारणा में भी समझें। आस श्रन्थ से बिना णिच् आये ही युच् प्रत्यय होगा॥

रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ॥३।३।१०८॥

रोगाख्यायाम् ७।१॥ ण्वुल् १।१॥ बहुलम् १।१॥ स०—रोगस्य आख्या रोगाख्या, तस्याम्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—रोगाख्यायाम्=रोगविशेषस्य संज्ञायां धातोः ण्वुल प्रत्ययो बहुलं भवति॥ क्तिनादीनां सर्वेषामपवादः॥ उदा०—प्रच्छर्दिका, प्रवाहिका, विचर्चिका॥ बहुलग्रहणात् क्वचिन्न भवति—शिरोर्त्तिः, क्तिन्नेव भवत्यत्र॥

भाषार्थः—[रोगाख्यायाम्] रोगविशेष की संज्ञा में धातु से स्त्रीलिङ्ग में

[ण्वुल] ण्वुल् प्रत्यय [बहुलम्] बहुल करके होता है ।। क्तिन् आदि सब का अपवाद यह सूत्र है ।। उदा० – प्रच्छर्दिका (वमन)। प्रवाहिका (पेचिश)। विचर्चिका (दाद) ।। बहुल ग्रहण से कहीं नहीं भी होता––शिरोर्त्तिः (सिरदर्द) ।।

यहाँ से 'ण्वुल' की अनुवृत्ति ३।३।११० तक जायेगी ।।

संज्ञायाम् ।।३।३।१०९।।

संज्ञायाम् ७।१।। अनु०– ण्वुल्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—संज्ञायां विषये धातोः स्त्रीलिङ्गे कर्त्तृभिन्ने कारके भावे च ण्वुल प्रत्ययो भवति ।। उदा०—उद्दालकपुष्पभञ्जिका, वारणपुष्पप्रचायिका, अभ्यूषखादिका, आचोषखादिका, शालभञ्जिका, तालभञ्जिका ।।

भाषार्थः––[संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में धातु से स्त्रीलिङ्ग में ण्वुल् प्रत्यय होता है कर्त्तृभिन्न कारक संज्ञा तथा भाव में ।। नित्यं क्रीडाजीविकयोः (२।२।१७) से उद्दालकपुष्पभञ्जिका आदि में षष्ठीसमास हुआ है ।। सिद्धि भी वहीं २।२।१७ सूत्र पर देख लें ।। उदा०— उद्दालकपुष्पभञ्जिका, वारणपुष्पप्रचायिका, अभ्यूषखादिका (लिट्टि[1] खाने की विशेष क्रीड़ा), आचोषखादिका (चूस कर खाने की क्रीडा), शाल-भञ्जिका (शाल[1] वृक्ष के पुष्पों को तोड़ने की क्रीड़ाविशेष), तालभञ्जिका (ताल वृक्ष के पुष्पों के तोड़ने की क्रीडाविशेष) ।।

विभाषाऽऽख्यानपरिप्रश्नयोरिञ्च ।।३।३।११०।।

विभाषा १।१।। आख्यानपरिप्रश्नयोः ७।२।। इञ् १।१।। च अ० ।। स०—आख्यानञ्च परिप्रश्नश्च आख्यानपरिप्रश्नौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः।। अनु०–ण्वुल्, स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—पूर्वं परिप्रश्नो भवति पश्चादाख्यानम् । आख्याने परिप्रश्ने च गम्यमाने धातोः कर्त्तृ-भिन्ने कारके संज्ञायां भावे च स्त्रीलिङ्गे विभाषा 'इञ्' प्रत्ययो भवति, चकाराद् ण्वुल् च । पक्षे यथाप्राप्तं सर्वे प्रत्यया भवन्ति ।। उदा०—कां कारिम् अकार्षीः, कां कारिकामकार्षीः, कां क्रियामकार्षीः, कां कृत्यामकार्षीः, कां कृतिमकार्षीः । आख्याने—सर्वां कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वा अकार्षम् । कां गणिं गणिकां गणनां वा अजीगणः । आख्याने—सर्वां गणिं गणिकां गणनां वा अजीगणम् । एवम्—कां पाठिम्, कां पाठिकाम्, कां पठितिम्, कां याजिम्, कां याजिकाम्, काम् इष्टिम् इत्यादि उदाहार्यम् ।।

---

१. इस विषय में अधिक 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' पृष्ठ १६३ हिन्दी संस्करण देखिये ।।

भाषार्थः—[आख्यानपरिप्रश्नयोः] उत्तर तथा परिप्रश्न गम्यमान होने पर धातु से स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [विभाषा] विकल्प से [इञ्] इञ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से ण्वुल् भी होता है ॥ प्रथम परिप्रश्न अर्थात् पूछना, पश्चात् उसका आख्यान=उत्तर होता है ॥ पक्ष में यथाप्राप्त भाव के सब प्रत्यय होंगे ॥ उदा०—परिप्रश्न में—कां कारिमकार्षीः (तुमने क्या काम किया), कां कारिकामकार्षीः, कां क्रियामकार्षीः, कां कृत्यामकार्षीः, कां कृतिमकार्षीः । आख्याने—सर्वां कारिं कारिकां क्रियां कृत्यां कृतिं वा अकार्षम् (मैंने सब काम कर लिया)। कां गणिं गणिकां गणनां वा अजीगणः (तुमने क्या गिनती की)। आख्याने—सर्वां गणिं गणिकां गणनां वाऽजीगणम् (मैंने सब गिनती कर ली)। इसी प्रकार कां पाठिं कां पाठिकां कां पठितिम्, कां याजिं कां याजिकां काम् इष्टिम् आदि उदाहरण भी समझने चाहिएं ॥ कारिम् में इञ प्रत्यय परे रहते अचो ञ्णिति (७।२।११५) से वृद्धि हुई है। कारिकाम् में ण्वुल् प्रत्यय परे रहते वृद्धि हुई है। पक्ष में श प्रत्यय होकर 'क्रियाम्', क्यप् होकर 'कृत्यां', तथा क्तिन् होकर 'कृतिम्' बना है। सिद्धि परि० ३।३।१०० में देखें ॥ इसी प्रकार गण धातु से प्रकृत सूत्र से इञ् तथा ण्वुल्, एवं पक्ष में ण्यासश्र०(३।३।१०७)से युच् प्रत्यय हुआ है। गण धातु अकारान्त चुरादिगण में पढ़ी है। अतः गण+णिच् इस अवस्था में अतो लोपः (६।४।४८) से अकार लोप हुआ है। सो अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि करते समय वह अकार स्थानिवत् (१।१।५५)हो गया, तो वृद्धि नहीं हुई। अब इञ् प्रत्यय होकर णेरनिटि (६।४।५१) से णि लोप होकर गणिं गणिकाम् आदि बन गया है ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।३।११६ तक जायेगी ॥

पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ण्वुच् ॥३।३।१११॥

पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु ७।३॥ ण्वुच् १।१॥ स०—पर्यायश्च अर्हश्च ऋणं च उत्पत्तिश्च पर्याया···त्तयः, तासु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, स्त्रियाम्, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पर्याय अर्ह ऋण उत्पत्ति इत्येतेष्वर्थेषु द्योत्येषु धातोः स्त्रियां भावे विकल्पेन ण्वुच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पर्याये तावत्—भवतः शायिका, भवतोऽग्रग्रासिका। अर्हे—इक्षुभक्षिकामर्हति भवान्, पयःपायिकामर्हति भवान्। ऋणे—इक्षुभक्षिकां मे धारयसि, ओदनभोजिकाम्। उत्पत्तौ—इक्षुभक्षिकां मे उदपादि भवान्, ओदनभोजिकाम्, पयःपायिकाम्। पक्षे—तव चिकीर्षा, मम चिकीर्षा ॥

भाषार्थः—[पर्यायार्हर्णोत्पत्तिषु] पर्याय, अर्ह, ऋण, उत्पत्ति इन अर्थों में धातु से स्त्रीलिङ्ग भाव में विकल्प से [ण्वुच्] ण्वुच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पर्याय में—भवतः शायिका, भवतोऽग्रग्रासिका (आपके प्रथम भोजन की बारी)। अर्ह में—

इक्षुभक्षिकामर्हति भवान् (आप गन्ना खाने के योग्य हैं), पय:पायिकामर्हति भवान् (आप दूध पीने के योग्य हैं)। ऋण में इक्षुभक्षिकां मे धारयसि (मुझको गन्ना खिलाने का ऋण आपके ऊपर है) ओदनभोजिकाम (चावल खिलाने का ऋण है)। उत्पत्ति में--इक्षुभक्षिकां मे उदपादि भवान् (आपने गन्ने का खाना मेरे लिए उत्पन्न किया), ओदनभोजिकां, पय:पायिकाम्। पक्ष में—तव चिकीर्षा (तुम्हारे करना चाहने की बारी), मम चिकीर्षा ॥ परि० २।२।१६ में शायिका की सिद्धि देखें। इसी प्रकार अग्रग्रासिका आदि में भी समझें। ग्रासिका आदि बनकर अग्र आदि के साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होगा। विकल्प कहने से पक्ष में अ प्रत्ययात् (३।३।१०२) से अ प्रत्यय हुआ है ॥

आक्रोशे नञ्यनि: ॥३।३।११२॥

आक्रोशे ७।१॥ नञि ७।१॥ अनि: १।१॥ अनु०—स्त्रियाम्, अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्, भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—आक्रोशे गम्यमाने नञ्युपपदे धातोरनि: प्रत्ययो भवति स्त्रीलिङ्गे कर्तृभिन्ने कारके संज्ञायां भावे च ॥ उदा०—अकरणिस्ते वृषल ! भूयात् ॥

भाषार्थ:—[आक्रोशे] आक्रोश=क्रोधपूर्वक चिल्लाना गम्यमान हो तो [नञि] नञ् उपपद रहते धातु से स्त्रीलिङ्ग कर्तृभिन्न कारक संज्ञा में तथा भाव में [अनि:] अनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अकरणिस्ते वृषल ! भूयात् (नीच! तेरी करणी का नाश हो जाये) ॥ नञ्पूर्वक कृञ् धातु से 'अनि' प्रत्यय होकर, तथा कृ को अनि परे रहते गुण, एवं नलोपो नञ: (६।३।७१) से नञ् के नकार का लोप होकर अकरणि: बन गया है। अट्कुप्वाङ्० (८।४।२) से अनि के न को णत्व हो ही जायेगा ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥३।३।११३॥

कृत्यल्युट: १।३॥ बहुलम् १।१॥ स०—कृत्याश्च ल्युट् च कृत्यल्युट:, इतरेतरयोगद्वन्द्व ॥ अनु०—धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ अर्थ:—कृत्यसंज्ञका: प्रत्यया ल्युट् च बहुलमर्थेषु भवन्ति। यत्र विहितास्ततोऽन्यत्रापि भवन्ति ॥ तयोरेव कृत्यक्त० (३।४।७०) इत्यनेन भावकर्मणो: कृत्या विधीयन्ते, कारकान्तरेष्वपि भवन्ति। भावे करणे अधिकरणे च ल्युट् विहितस्ततोऽन्यत्राऽपि भवति ॥ उदा०—स्नाति अनेनेति स्नानीयं चूर्णम्, अत्र करणे कृत्यसंज्ञकोऽनीयर्। दीयते तस्मै दानीयो ब्राह्मण:, अत्र सम्प्रदानेऽनीयर्। ल्युट्—अपसिच्यते तद् इति अपसेचनम्। अवस्राव्यते तदिति अवस्रावणम्। भुज्यन्ते इति भोजना:, राज्ञां भोजना: राजभोजना: शालय:। आच्छाद्यन्ते इति आच्छादनानि। सर्वत्र कर्मणि ल्युट्। प्रस्कन्दत्यस्मात्=प्रस्कन्दनम्, अत्रापादाने ल्युट्। प्रपतत्यस्मात्=प्रपतनम्, अत्रापि अपादाने ल्युट् ॥

भाषार्थ:—[कृत्यल्युट:] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय तथा ल्युट् प्रत्यय [बहुलम्] बहुल अर्थों में होते हैं ।। तयोरेव कृत्यक्त०(३।४।७०) से भाव कर्म में ही कृत्यसंज्ञक प्रत्ययों का विधान है । यहाँ कहने से उससे अन्यत्र कारकों में भी होते हैं । जैसे—स्नानीयम् में करण में कृत्यसंज्ञक अनीयर्, तथा दानीय: में सम्प्रदान में अनीयर् हुआ है । इसी प्रकार करण अधिकरण (३।३।११७), तथा भाव (३।३।११५) में ल्युट प्रत्यय कहा है, उससे अन्यत्र कर्म अपादानादि में भी ल्युट् हो जाता है जैसे—अपसेचनम्, प्रपतनम् आदि में देखें ।। स्रु ण्यन्त धातु से वृद्धि आवादेश होकर 'स्रावि' धातु बनकर ल्युट् प्रत्यय हुआ है । णेरनिटि (६।४।५१) से णि लोप होकर अवस्रावणम् बन गया है । प्रस्कन्दनम् में प्र पूर्वक स्कन्दिर धातु है, तथा प्रपतनम् में प्र पूर्वक पत्लृ धातु है ।। उदा०—स्नानीयं चूर्णम् (उबटन) । दानीयो ब्राह्मण: (देने योग्य ब्राह्मण)। अपसेचनम् (जो अच्छी तरह न सींचा जाय) । अवस्रावणम् (जो बुरी तरह बहाया जाता है)। राजभोजना: शालय: (राजा के भोजन करने योग्य चावल) । आच्छादनानि (वस्त्र)। प्रस्कन्दनम् (खींचा जाता है जिससे) । प्रपतनम् (जहाँ से वृक्षादि गिरते हैं) ।।

नपुंसके भावे क्त: ।।३।३।११४।।

नपुंसके ७।१।। भावे ७।१।। क्त: ५।१।। अनु०—धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—नपुंसकलिङ्गे भावे धातो: क्त: प्रत्ययो भवति ।। उदा०—हसितम्, सुप्तम्, जल्पितम् ।।

भाषार्थ:—[नपुंसके] नपुंसक लिङ्ग [भावे] भाव में धातुमात्र से [क्त:] क्त प्रत्यय होता है ।। उदा०—हसितम्(हँसना), सुप्तम् (सोना), जल्पितम्(बकना)।।

यहाँ से 'नपुंसके भावे' की अनुवृत्ति ३।३।११६ तक जायेगी ।।

ल्युट च ।।३।३।११५।।

ल्युट् १।१।। च अ० ।। अनु०—नपुंसके भावे, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—नपुंसकलिङ्गे भावे ल्युट् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—हसनं छात्रस्य शोभनम् । शयनम्, आसनम् ।।

भाषार्थ:—नपुंसकलिङ्ग भाव में धातु से [ल्युट्] ल्युट प्रत्यय [च] भी होता है ।। सिद्धि में 'यु' को अन युवोरनाकौ (७।१।१) से हो ही जायेगा । तथा अतोऽम् (७।१।२४) से सु को अम् हो जायेगा ।।

यहाँ से 'ल्युट्' की अनुवृत्ति ३।३।११७ तक जायेगी ।।

कर्मणि च येन संस्पर्शात्कर्त्तु: शरीरसुखम् ।।३।३।११६।।

कर्मणि ७।१।। च अ० ।। येन ३।१।। संस्पर्शात् ५।१।। कर्त्तु: ६।१।। शरीरसुखम्

१।१।। स०--शरीरस्य सुखम् शरीरसुखम्, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—ल्युट्, नपुंसके, भावे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—येन (कर्मणा) संस्पर्शात् कर्त्तुः शरीरसुखमुत्पद्यते तस्मिन् कर्मण्युपपदे धातोर्ल्युट् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—ओदनभोजनं सुखम् । पयःपानं सुखम् ।।

भाषार्थः—[येन] जिस कर्म के [संस्पर्शात्] संस्पर्श से [कर्त्तुः] कर्ता को [शरीरसुखम्] शरीर का सुख उत्पन्न हो, ऐसे [कर्मणि] कर्म के उपपद रहते [च] भी धातु से ल्युट् प्रत्यय होता है ।। उदा०—ओदनभोजनंसु खम् (चावल खाने का सुख)। पयःपानं सुखम् (दूध पीने का सुख) ।। ओदन या दूध के संस्पर्श से कर्त्ता=खानेवाले के शरीर=जिह्वा को सुख होता है, अतः ओदन एवं पयः कर्म उपपद रहते भुज तथा पा धातु से ल्युट् प्रत्यय हो गया है ।।

करणाधिकरणयोश्च ।।३।३।११७।।

करणाधिकरणयोः ७।२।। च अ० ।। स०—करणञ्च अधिकरणञ्च करणाधिकरणे, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—ल्युट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—करणेऽधिकरणे च कारके धातोः ल्युट् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—प्रवृश्चन्त्यनेन=प्रव्रश्चनः, इध्मानां प्रव्रश्चनः इध्मप्रव्रश्चनः । शात्यतेऽनेन=शातनः, पलाशस्य शातनः पलाशशातनः । अधिकरणे—दुह्यन्ते अस्याम्=दोहनी, गवां दोहनी गोदोहनी । धीयन्ते अस्याम्=धानी, सक्तूनां धानी सक्तुधानी ।।

भाषार्थः— धातु से [करणाधिकरणयोः] करण और अधिकरण कारक में [च] भी ल्युट् प्रत्यय होता है ।। प्र पूर्वक 'ओव्रश्चू छेदने' धातु से प्रव्रश्चनः बना है । पश्चात् इध्म के साथ षष्ठीसमास होकर इध्मप्रव्रश्चनः (कुल्हाड़ी) बना है । शातनः में शदेरगतौ तः (७।३।४२) से शद्लृ के द को त हुआ है। यहाँ शद्लृ णिजन्त से ल्युट् हुआ है । पीछे षष्ठीसमास होकर पलाशशातनः (जिस डण्डे से वृक्ष के पत्ते गिराये जाते हैं) बनेगा । पूर्ववत् दोहन शब्द दुह् से बनकर, टिड्ढाणञ्० (४।१।१५) से ङीप् होकर, तथा पूर्ववत् षष्ठीसमास होकर गोदोहनी (गौ दुहने का पात्र) बना है । इसी प्रकार सक्तुधानी (सत्तु रखने का पात्र) में भी जानें ।।

यहाँ से 'करणाधिकरणयोः' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक जायेगी ।।

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ।।३।३।११८।।

पुंसि ७।१।। संज्ञायां ७।१।। घः १।१।। प्रायेण ३।१।। अनु०—करणा-

धिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—पुंल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोरभिधेययोः धातोः घः प्रत्ययः प्रायेण भवति, समुदायेन चेत् संज्ञा गम्यते ॥ उदा०—दन्ताः छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः । उरः छाद्यतेऽनेनेति उरश्छदः । अधिकरणे—एत्य तस्मिन् कुर्वन्तीति आकरः । आलीयतेऽस्मिन्निति आलयः ॥

भाषार्थः—धातु से करण और अधिकरण कारक में [पुंसि] पुँल्लिङ्ग में [प्रायेण] प्रायः करके [घः] घ प्रत्यय होता है, [संज्ञायाम्] यदि समुदाय से संज्ञा प्रतीत होती है ॥

यहाँ से 'घः' की अनुवृति ३।३।११९ तक, तथा 'पुंसि संज्ञायाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक, एवं 'प्रायेण' की अनुवृत्ति ३।३।१२१ तक जाती है ॥ ३।३।११९ में प्रायेण नहीं सम्बन्धित होता है ॥

गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च ॥३।३।११९॥

गोचर···निगमाः १।३॥ च अ० ॥ स०—गोचर० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पुंसि, संज्ञायाम्, घः, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गोचर, सञ्चर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम इत्येते शब्दाः पुंल्लिङ्गे संज्ञायां विषये घप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते करणेऽधिकरणे च कारके ॥ गावश्चरन्ति अस्मिन्निति गोचरः । सञ्चरन्तेऽनेनेति सञ्चरः । वहन्ति तेन वहः। व्रजन्ति तेन व्रजः । व्यजन्ति तेन व्यजः। अत्र निपातनाद् अज धातोः अजेर्व्यं० (२।४।५६) इत्यनेन वीभावो न भवति । एत्य तस्मिन् आपणन्ते इति आपणः । निगच्छन्ति अस्मिन्निति निगमः ॥

भाषार्थः—[गोचर · निगमाः] गोचर आदि शब्द [च] भी घप्रत्ययान्त पुंल्लिङ्ग करण या अधिकरण कारक में संज्ञाविषय में निपातन किये जाते हैं । वि+अजः=व्यजः, यहाँ अज धातु को अजेर्व्यं० (२।४।५६) से वी भाव भी निपातन से नहीं होता ॥ उदा०—गोचरः (गायें जहाँ चरती हैं) । सञ्चरः (जिसके द्वारा घूमते हैं) । वहः (गाड़ी) । व्रजः (जिसके द्वारा जाते हैं) । व्यजः (पङ्खा) । आपणः (बाजार) । निगमः (वेद) ॥

अवे तृस्त्रोर्घञ् ॥३।३।१२०॥

अवे ७।१॥ तृस्त्रोः ६।२॥ घञ् १।१॥ स०—तृ च स्तृ च तृस्त्रौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—पुंसि संज्ञायां प्रायेण, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अव उपपदे तृ स्तृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां करणेऽधिकरणे च कारके संज्ञायां प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अवतारः । अवस्तारः ॥

भाषार्थः—[अवे] अव पूर्वक [तृस्त्रोः] तृ स्तृञ् धातुओं से करण और अधि-

करण कारक में संज्ञाविषय में प्रायः करके [घञ्] घञ् प्रत्यय होता है ।। उदा०—अवतारः (उतरना)। अवस्तारः (कनात) ।।

यहाँ से 'घञ्' की अनुवृत्ति ३।३।१२५ तक जायेगी ।।

हलश्च ।।३।३।१२१।।

हलः ५।१।। च अ० ।। अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां प्रायेण, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—हलन्ताद् धातोः पुंसि करणाधिकरणयोः कारकयोः संज्ञायां विषये प्रायेण घञ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—लेखः । वेदः । वेष्टः । बन्धः । मार्गः । अपामार्गः । वीमार्गः ।।

भाषार्थः—[हलः] हलन्त धातुओं से [च] भी संज्ञाविषय होने पर करण तथा अधिकरण कारक में पुंल्लिङ्ग में प्रायः करके घञ प्रत्यय होता है ।। 'वेष्ट वेष्टने' धातु से घञ् होकर वेष्टः (कनात)। तथा 'मृजूष शुद्धौ' से मार्गः, अपामार्गः (चिरचिटा)बनेगा । वि उपपद रहते 'मृजूष्' धातु से वीमार्गः (वृक्ष विशेष) भी बनेगा। अपामार्गः वीमार्गः में उपसर्गस्य घञ्य० (६।३।१२०)से 'अप' और 'वि' को दीर्घ हो जाता है । चजोः कु० (७।३।५२) से कुत्व, तथा मृजेर्वृद्धिः (७।२।११४) से यहाँ वृद्धि भी होती है ।।

अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ।।३।३।१२२।।

अ···हाराः १।३।। च अ० ।। स०—अध्या० इत्यत्रेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायां, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अध्याय, न्याय, उद्याव, संहार इत्येते घञन्ताः शब्दाः पुंल्लिङ्गयोः करणाधिकरणयोः कारकयोः संज्ञायां निपात्यन्ते ।। अधीयतेऽस्मिन् अध्यायः । नीयन्तेऽनेन कार्याणीति न्यायः । उद्युवन्ति अस्मिन् =उद्यावः । संह्रियन्तेऽनेन संहारः ।।

भाषार्थः—[अध्या···हाराः] अधि पूर्वक इङ् धातु से अध्यायः, नि पूर्वक इण् धातु से न्यायः, उत् पूर्वक यु धातु से उद्यावः, तथा सम्पूर्वक हृ धातु से संहारः ये घञन्त शब्द [च] भी पुंल्लिङ्ग में करण तथा अधिकरण कारक संज्ञा में निपातन किये जाते हैं ।। यहाँ भी वृद्धि आयादेशादि यथाप्राप्त जानें ।। अधि इ अ, अधि ऐ अ, आयादेश तथा यणादेश होकर अध्यायः बना है ।। उदा०—अध्यायः । न्यायः । उद्यावः (जहाँ सब इकट्ठे होते हैं) । संहारः (नाश, प्रलय) ।।

उदङ्कोऽनुदके ।।३।३।१२३।।

उदङ्कः १।१।। अनुदके ७।१।। स०—न उदकम् अनुदकम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः।। अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायाम्, करणाधिकरणयोः धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—

उदङ्क इति पुंसि निपात्यते अनुदके विषये, अधिकरणे कारके उत्पूर्वाद् अञ्चु धातोः घञ् निपातनाद भवति ॥ उदा०—तैलस्य उदङ्कः तैलोदङ्कः । घृतोदङ्कः ॥

भाषार्थः—[अनुदके] उदक विषय न हो, तो पुंल्लिङ्ग में उत् पूर्वक अञ्चु धातु से घञ् प्रत्ययान्त [उदङ्कः] उदङ्क शब्द निपातन किया जाता है, अधिकरण कारक में संज्ञाविषय होने पर ॥ उदा०—तैलोदङ्कः (तेल का कुप्पा) । घृतोदङ्कः (घी का कुप्पा)॥ अञ्चु के च् को चजोः कु घि० (७।३।५२) से कुत्व हो गया है । च को कुत्व कर लेने पर ञ को न स्वतः हो जायेगा । तत्पश्चात् न को नश्चापदान्तस्य झलि (८।३।२४) से अनुस्वार हो गया । तथा अनुस्वारस्य ययि० (८।४।५७) से अनुस्वार को ङ् बनकर उदङ्कः बन गया । तैल तथा घृत के साथ उदङ्कः का षष्ठीतत्पुरुष समास हुआ है ॥

जालमानायः ॥३।३।१२४॥

जालम् १।१॥ आनायः १।१॥ अनु०—घञ्, पुंसि, संज्ञायां, करणे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—जालेऽभिधेये पुंल्लिङ्गे करणे कारके संज्ञायाम् आङ्पूर्वात् णीञ् धातोः घञ् निपात्यते—'आनायः' इति ॥ उदा०—आनयन्त्यनेनेति आनायो मत्स्यानाम् । आनायो मृगाणाम् ॥

भाषार्थः—[जालम्] जाल अभिधेय हो, तो आङ् पूर्वक नी धातु से करण कारक तथा संज्ञा में [आनायः] आनाय शब्द घञ् प्रत्ययान्त निपातन किया जाता है ॥ उदा०—आनायो मत्स्यानाम् (मछलियों का जाल) । आनायो मृगाणाम् (मृगों का जाल) ॥

खनो घ च ॥३।३।१२५॥

खनः ५।१॥ घ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः॥ च अ०॥ अनु०—घञ्, पुंसि संज्ञायाम्, करणाधिकरणयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—खन धातोः पुंल्लिङ्गे करणाधिकरणयोः कारकयोः घः प्रत्ययो भवति संज्ञायाम्, चकारात् घञ् च ॥ उदा०—आखनन्त्यनेन अस्मिन् वा आखनः, आखानः ॥

भाषार्थः—[खनः] खन धातु से पुंल्लिङ्ग करणाधिकरण कारक संज्ञा में [घ] घ प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से घञ् भी होता है ॥ उदा०—आखनः (फावड़ा), आखानः ॥ घञ् पक्ष में अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होगी ॥

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥३।३।१२६॥

ईषद्दुःसुषु ७।३॥ कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ७।३॥ खल् १।१॥ स०—ईषच्च दुश्च सुश्च ईषद्दुःसवः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । न कृच्छ्रम् अकृच्छ्रम्, नञ्तत्पुरुषः । कृच्छ्रञ्च

अकृच्छ्रञ्च कृच्छ्राकृच्छ्रे, कृच्छ्राकृच्छ्रेऽर्थौ येषां ते कृच्छ्राकृच्छ्रार्थाः, तेषु, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—ईषद्, दुर्, सु इत्येतेषूपपदेषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु धातोः खल् प्रत्ययो भवति ॥ कृच्छ्रम्=कष्टम् । अकृच्छ्रम्=सुखम्॥ **उदा०**—ईषत्करो भवता कटः । दुष्करः । सुकरः । ईषद्भोजः । दुर्भोजः । सुभोजः ॥

भाषार्थः—[कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु] कृच्छ्र अर्थवाले तथा अकृच्छ्र अर्थवाले [ईषद्दुः-सुषु] ईषत् दुर् तथा सु ये उपपद हों, तो धातु से [खल्] खल् प्रत्यय होता है ॥ तयोरेव कृत्य० (३।४।७०) से भाव कर्म में ही ये खलर्थ प्रत्यय होते हैं ॥ दुर् शब्द कृच्छ्र, तथा ईषत् और सु अकृच्छ्र अर्थ में होते हैं ॥ उदा०—ईषत्करो भवता कटः (आपके द्वारा चटाई सुगमता से बनती है) । दुष्करः (कठिन) । सुकरः । ईषद्भोजः (सुगमता से खाना) । दुर्भोज । सुभोजः ॥

यहाँ से 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१३० तक, तथा 'खल्' की अनुवृत्ति ३।३।१२७ तक जायेगी ॥

कर्त्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥३।३।१२७॥

कर्त्तृकर्मणोः ७।२॥ च अ० ॥ भूकृञोः ६।२॥ स०—कर्त्ता च कर्म च कर्त्तृ-कर्मणी, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । भूश्च कृञ् च भूकृञौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—भू कृञ् इत्येताभ्यां धातुभ्यां यथासङ्ख्यं कर्त्तरि कर्मणि चोपपदे, चकाराद् कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु ईषद् दुर् सु इत्येतेषु चोपपदेषु खल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—अनाढ्येन भवता ईषदाढ्येन शक्यं भवितुम्=ईषदाढ्यंभवं भवता । अनाढ्येन भवता दुराढ्येन शक्यं भवितुम्=दुराढ्यंभवं भवता । स्वाढ्यंभवं भवता । कर्मणि—अनाढ्यः ईषदाढ्यः क्रियते इति ईषदाढ्यंकरो देवदत्तः । दुराढ्यंकरः । स्वाढ्यंकरो देवदत्तः ॥

भाषार्थः—[भूकृञोः] भू तथा कृञ् धातु से यथासङ्ख्य करके [कर्त्तृकर्मणोः] कर्त्ता एवं कर्म उपपद रहते, [च] चकार से कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में वर्त्तमान ईषद् दुः सु उपपद हों, तो भी खल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ईषदाढ्यंभवं भवता (धनाढ्य सुगमता से होने योग्य आप हो) दुराढ्यंभवं भवता (कठिनाई से धनाढ्य होने योग्य आप हो) । स्वाढ्यंभवं भवता । कर्मणि—ईषदाढ्यंकरो देवदत्तः (सुगमता से धनवान् बनाया जानेवाला देवदत्त) । दुराढ्यंकरः (कठिनाई से धनवान् बनाया जानेवाला) । स्वाढ्यंकरो देवदत्तः ॥ ईषद् आढ्य भू खल=ईषदाढ्य भो अ, अरुर्द्विषद० (६।३।६५) से पूर्वपद को मुम् आगम तथा अवादेश होकर ईषदाढ्य मुम् भव सु=ईषदाढ्यंभवम् बना है । इसी प्रकार 'ईषदाढ्यंकरः' में कृ को गुण होकर सिद्धि जानें ॥

आतो युच् ॥३।३।१२८॥

आतः ५।१॥ युच् १।१॥ अनु०—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आकारान्तेभ्यो धातुभ्यः कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्वीषदादिषूपपदेषु युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः । ईषद्दानो गौर्भवता । दुर्दानः । सुदानः ॥

भाषार्थः—[आतः] आकारान्त धातुओं से कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद रहते [युच्] युच् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ईषत्पानः सोमो भवता (आपके द्वारा सोमपान करना आसान है) । दुष्पानः (पीना कठिन है) । सुपानः । ईषद्दानो गौर्भवता (आपके द्वारा गोदान करना आसान है) । दुर्दानः (गोदान कठिन है) ।सुदानः ॥ पा तथा दा धातुएं आकारान्त हैं, सो सिद्धि में युच् प्रत्यय होकर 'यु' को अन हो गया है । ये सब खलर्थ प्रत्यय हैं, सो तयोरेव० (३।४।७०) से भाव कर्म में ही होंगे । अतः भवता में कर्तृकरण० (२।३।१८) से अनभिहित कर्त्ता में तृतीया हो गई है ॥

यहाँ से 'युच्' की अनुवृत्ति ३।३।१३० तक जायेगी ॥

छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥३।३।१२९॥

छन्दसि ७।१॥ गत्यर्थेभ्यः ५।३॥ स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, तेभ्यः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—युच्, ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्वीषदादिषूपपदेषु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सूपसदनोऽग्निः । सूपसदनमन्तरिक्षम् ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में [गत्यर्थेभ्यः] गत्यर्थक धातुओं से कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थों में ईषदादि उपपद हों, तो युच् प्रत्यय होता है ॥ 'सु उप षद्लृ यु', यु को अन, सु+उप को सवर्ण दीर्घ होकर सूपसदनः बन गया ॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।३।१३० तक जायेगी ॥

अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥३।३।१३०॥

अन्येभ्यः ५।३॥ अपि अ० ॥ दृश्यते क्रियापदम् ॥ अनु०—छन्दसि, युच्, ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गत्यर्थेभ्योऽन्ये ये धातवस्तेभ्यः छन्दसि विषये कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेष्वीषदादिषूपपदेषु युच् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सुदोहनाम् अकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनाम् अकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥

भाषार्थः—वेदविषय में [अन्येभ्यः] गत्यर्थक धातुओं से अन्य जो धातुयें उनसे [अपि] भी कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में ईषदादि उपपद रहते युच् प्रत्यय [दृश्यते]

देखा जाता है ।। सु दुह श्रन टाप्=सुदोहना; सुविद श्रन टाप्=सुवेदना बनकर द्वितीया में सुदोहनाम् और सुवेदनाम् बन गया है । ये गत्यर्थक धातुयें नहीं हैं ।।

वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वा ।।३।३।१३१।।

वर्त्तमानसामीप्ये ७।१ वर्त्तमानवत् अ० ।। वा अ० ।। समीपमेव सामीप्यम् । **चातुर्वर्ण्यादीनाम्०** (वा० ५।१।१२४) इत्यनेन वार्त्तिकेन स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः ।। **स०**— वर्त्तमानस्य सामीप्यं वर्त्तमानसामीप्यं, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः । वर्त्तमाने इव वर्त्तमानवत्, **तत्र तस्येव** (५।१।११५) इति वतिः ।। **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। **अर्थः**—वर्त्तमानस्य समीपे यो भूतकालः भविष्यत्कालश्च तस्मिन् वर्त्तमानाद् धातोर्वर्त्तमानवत् प्रत्यया वा भवन्ति ।। **वर्त्तमाने लट्** (३।२।१२३) इत्यारभ्य **उणादयो बहुलम्** (३।३।१) इति यावद् ये प्रत्यया उक्तास्ते वर्त्तमानसमीपे भूते भविष्यति च भवन्ति ।। **उदा०**—देवदत्त कदाऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि । आगच्छन्तमेव मां विद्धि । पक्षे— अयमागमम् । एषोऽस्मि आगतः, एष आगतवान् । भविष्यति—कदा देवदत्त गमिष्यसि? एष गच्छामि । गच्छन्तमेव मां विद्धि । पक्षे—एष गमिष्यामि, एष गन्ताऽस्मि ।।

भाषार्थः—[वर्त्तमानसामीप्ये] **वर्त्तमान के समीप, अर्थात् निकट के भूत निकट के भविष्यत्काल में वर्त्तमान धातु से** [वर्त्तमानवत्] **वर्त्तमानकाल के समान** [वा] **विकल्प से प्रत्यय होते हैं ।।** वर्त्तमाने लट् (३।२।१२३) **से लेकर** उणादयो० (३।३।१) **तक 'वर्त्तमाने'के अधिकार में जो प्रत्यय कहे हैं, वे यहां निकट के भूत या भविष्यत् को कहने में विकल्प से विधान किये जाते हैं। पक्ष में भूत भविष्यत् के प्रत्यय भी हो जाते हैं ।। भूत अर्थ में आगच्छामि में लट् लकार, तथा आगच्छन्तम् में शतृ प्रत्यय हुआ है । इसी प्रकार भविष्यत् अर्थ में गच्छामि गच्छन्तम् वर्त्तमानकाल के प्रत्यय हुये हैं । पक्ष में लुङ् लकार, निष्ठा प्रत्यय भूतकाल के, तथा लृट् लुट् लकार भविष्यत् काल में हो जाते हैं । तात्पर्य यह हुआ कि निकट के भूत वा निकट के भविष्यत् में वक्ता वर्त्तमानकालिक प्रत्ययों का भी प्रयोग कर सकता है ।।** उदा०—**देवदत्त ! कदाऽगतोऽसि ? अयमागच्छामि (अभी आया था) । आगच्छन्तमेव मां विद्धि (मुझको आया ही समझें) । पक्ष में—अयमागमम् (अभी आया हूं) । एषोऽस्मि आगतः, एष आगतवान् । भविष्यत् में—कदा देवदत्त ! गमिष्यसि ? एष गच्छामि (अभी जाऊंगा) । गच्छन्तमेव मां विद्धि (मुझे गया हुआ ही समझें) । पक्ष में— एष गमिष्यामि (अभी जाऊंगा) । एष गन्ताऽस्मि ।।**

यहां से 'वर्त्तमानवद्वा' की अनुवृत्ति ३।३।१३२ तक जायेगी ।।

आशंसायां भूतवच्च ।।३।३।१३२।।

आशंसायाम् ७।१।। भूतवत् अ० ।। च अ० । अनु०— वर्त्तमानवद्वा, धातोः,

प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—अप्राप्तस्येष्टपदार्थस्य प्राप्तुमिच्छा आशंसा, सा च भविष्यत्कालविषया भवति । तत्र भविष्यति काले आशंसायां गम्यमानायां धातोर्विकल्पेन भूतवत् प्रत्यया भवन्ति, चकाराद् वर्त्तमानवच्च ।। उदा०—उपाध्यायश्चेद् आगमत् आगतः आगच्छति वा, वयं व्याकरणमध्यगीष्महि अधीतवन्तोऽधीमहे वा । पक्षे—उपाध्यायश्चेदागमिष्यति, वयं व्याकरणमध्येष्यामहे ।।

भाषार्थः—[आशंसायाम्] आशंसा गम्यमान होने पर धातु से [भूतवत्] भूतकाल के समान, [च] तथा वर्त्तमानकाल के समान भी विकल्प से प्रत्यय हो जाते हैं ।। अप्राप्त प्रिय पदार्थ के प्राप्त करने की इच्छा को 'आशंसा' कहते हैं । वह भविष्यत्काल विषयवाली होती है । आशंसा गम्यमान होने पर भविष्यत्काल के ही प्रत्यय होने चाहियें, यहाँ विकल्प से भूतवत् प्रत्यय विधान कर दिये हैं ।। सो पक्ष में भविष्यत्काल के समान प्रत्यय भी होंगे, चकार से वर्त्तमानवत् भी कर दिये हैं ।। भूतवत् कहने से आगमत् अध्यगीष्महि में लुङ् लकार, तथा आगतः अधीतवन्तः में निष्ठा प्रत्यय हो गया है । वर्त्तमानवत् कहने से लट् लकार में आगच्छति अधीमहे बनेंगे । तथा विकल्प कहने से भविष्यत्काल में आगमिष्यति अध्येष्यामहे प्रयोग भी बन गये हैं ।।

परि० १।२।१ में अध्यगीष्ट की सिद्धि की है । उसी प्रकार अध्यगीष्महि बन गया ।। 'आङ् अट गम् च्लि त' ऐसा पूर्ववत् होकर पुषादिद्युता० (३।१।५५) से च्लि को अङ् होकर आगमत् बन गया है । आगमिष्यति आदि की सिद्धि पूर्व कई बार दिखा चुके हैं, उसी प्रकार यहाँ समझें । आगतः में क्त प्रत्यय हुआ है । गम् के अनुनासिक का लोप अनुदात्तोप० (६।४।३७) से हो जाता है । (१) उपाध्याय जी यदि आयेंगे (२) तो हम व्याकरण पढ़ लेंगे, ये दो वाक्य आशंसा दिखाने के लिये दिये हैं । दोनों वाक्यों की क्रियाओं में पूर्वोक्त प्रत्यय हो गये हैं ।।

यहाँ से 'आशंसायाम' की अनुवृत्ति ३।३।१३३ तक जायेगी ।।

क्षिप्रवचने लृट् ।।३।३।१३३।।

क्षिप्रवचने ७।१।। लृट् १।१।। स०—क्षिप्रस्य वचनम् क्षिप्रवचनम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—आशंसायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—आशंसायां गम्यमानायां क्षिप्रवचन उपपदे धातोर्लृट प्रत्ययो भवति ।। पूर्वेण भूतवत् प्राप्ते लृट् विधीयते ।। उदा०—उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रं त्वरितम् आशु शीघ्रं वागमिष्यति, क्षिप्रं त्वरितं शीघ्रं वा व्याकरणमध्येष्यामहे ।।

भाषार्थः—[क्षिप्रवचने] क्षिप्रवचन=शीघ्रवाची शब्द उपपद हो, तो आशंसा गम्यमान होने पर धातु से [लृट्]लृट् प्रत्यय होता है ।। पूर्व सूत्र से आशंसा गम्यमान

होने पर भूतवत् प्रत्यय प्राप्त थे, यहाँ भविष्यत्काल का लृट् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रं त्वरितम् आशु शीघ्रं वाऽऽगमिष्यति, क्षिप्रं त्वरितं शीघ्रं वा व्याकरणमध्येष्यामहे (उपाध्याय जी यदि शीघ्र आ जायेंगे, तो हम व्याकरण शीघ्र पढ़ लेंगे) ॥

आशंसावचने लिङ् ॥३।३।१३४॥

आशंसावचने ७।१॥ लिङ् १।१॥ आशंसा उच्यतेऽनेन आशंसावचनम् ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशंसावचन उपपदे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदागच्छेत्, आशंसे अवकल्पये वा युक्तोऽधीयीय ॥

भाषार्थः—[आशंसावचने] आशंसावाची शब्द उपपद हो, तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ आशंसा भविष्यत्काल विषयवाली होती है ॥ यह सूत्र आशंसायां० (३।३।१३२) का अपवाद है ॥ उदा०—उपाध्यायश्चेदाऽऽगच्छेत्, आशंसे अवकल्पये वा युक्तोऽधीयीय (उपाध्याय जी यदि आ जायेंगे तो आशा है लगकर पढ़ेंगे)। अधिपूर्वक इङ् धातु से उत्तम पुरुष का 'इट्' आकर लिङः सीयुट् (३।४।१०२) से सीयुट् आगम, तथा इटोऽत् (३।४।१०६) से इट् को 'अत्' आदेश होकर 'अधि इ सीय् अ' रहा। लिङः सलोपो० (७।२।७९) से सकार लोप, तथा अचि श्नु-धातु० (६।४।७७) से धातु को इयङ् आदेश होकर 'अधि इयङ् ईय् अ' सवर्ण दीर्घ होकर अधीय ईय् अ=अधीयीय बन गया ॥

नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ॥३।३।१३५॥

न अ० ॥ अनद्यतनवत् अ० ॥ क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः ७।२॥ स०—क्रियाणां प्रबन्धः क्रियाप्रबन्धः, षष्ठीतत्पुरुषः। क्रियाप्रबधश्च सामीप्यञ्च क्रियाप्रबन्धसामीप्ये, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—क्रियाप्रबन्धे सामीप्ये च गम्यमानेऽनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति ॥ भूतानद्यतने अनद्यतने लङ् (३।२।१११) इत्यनेन लङ् विहितः, भविष्यत्यनद्यतने च अनद्यतने लुट् (३।३।१५) इत्यनेन लुट् विहितस्तयोरयं प्रतिषेधः ॥ क्रियाप्रबन्धो नैरन्तर्येण क्रियाया अनुष्ठानम्॥ उदा०—क्रियाप्रबन्धे—यावज्जीवं भृशमन्नम् अदात्। भृशमन्नं दास्यति। सामीप्ये—येयं प्रतिपद् अतिक्रान्ता तस्यां विद्युद् अपप्तत्। वृक्षमभैत्सीत्। मार्गमरौत्सीत्। योऽयं रविवासर आगामी तस्मिन् नगरान्तरं यास्यामः। धनं दास्यामः। पुस्तकं ग्रहीष्यामः॥

भाषार्थः—भूत अनद्यतनकाल में लङ्, तथा भविष्यत् अनद्यतन में लुट् का विधान किया है, उनका यह निषेध सूत्र है ॥ [क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः] क्रियाप्रबन्ध तथा

सामीप्य गम्यमान हो, तो धातु से [अनद्यतनवत्] अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि [न] नहीं होती है ॥ क्रियाप्रबन्ध=निरन्तर किसी क्रिया का अनुष्ठान। सामीप्य=तुल्यजातीय काल का व्यवधान न होना ॥ अनद्यतनवत् निषेध होने से सामान्य भूतकाल में कहा हुआ लुङ्, तथा सामान्य भविष्यत् काल में कहा हुआ लृट् प्रत्यय हो गया है ॥ उदा०—क्रियाप्रबन्ध में—यावज्जीवं भृशमन्नम् अदात् (जब तक जिया निरन्तर अन्न का दान किया)। भृशमन्नं दास्यति। सामीप्य में—येयं प्रतिपद अतिक्रान्ता तस्यां विद्युद् अपप्तत् (जो यह प्रतिपद् बीत गई, उसमें बिजली गिरी थी)। वृक्षमभैत्सीत् (वृक्ष को फाड़ दिया था)। मार्गमरौत्सीत् (मार्ग को रोक दिया था)। योऽयं रविवासर आगामी तस्मिन् नगरान्तरं यास्यामः (जो यह आगामी रविवार है, उसमें दूसरे शहर को जायेंगे)। धन दास्यामः (धन देंगे)। पुस्तकं ग्रहीष्यामः पुस्तक लेंगे) ॥ अपप्तत् में परि० ३।१।५२ के समान 'अ पत् अङ् त्' होकर पतः पुम् (७।४।१९) मिदचोऽन्त्यात्० (१।१।४६) से अन्त्य अच् से परे पुम् होकर 'अ प पुम् त् अङ् त्'=अपप्तत् बन गया। यहाँ च्लि के स्थान में अङ् पुषादिद्यु० (३।१।५५) से होगा। अभैत्सीत् अरौत्सीत् की सिद्धि परि० ३।१।५७ में देखें। अदात्त में सिच् का लुक् गातिस्थाघु० (२।४।७७) से हुआ है ॥

यहाँ से 'नानद्यतनवत्' की अनुवृत्ति ३।३।१३८ तक जायेगी ॥

भविष्यति मर्यादावचनेऽवरस्मिन् ॥३।३।१३६॥

भविष्यति ७।१॥ मर्यादावचने ७।१॥ अवरस्मिन ७।१॥ मर्यादा उच्यतेऽनेन मर्यादावचनम् ॥ अनु०—नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—मर्यादावचनेऽवरस्मिन् प्रविभागे भविष्यति काले धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति ॥ उदा०—योऽयमध्वा गन्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे। तत्र सक्तून् पास्यामः ॥

भाषार्थः—[अवरस्मिन्] अवर प्रविभाग अर्थात् इधर के भाग को लेकर [मर्यादावचने] मर्यादा कहनी हो, तो [भविष्यति] भविष्यत्काल में धातु से अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि नहीं होती है ॥ अनद्यतन भविष्यत्काल में लुट् प्रत्यय प्राप्त था, उसका ही यहाँ निषेध है, अतः सामान्य भविष्यत् काल विहित लृट् हो गया है ॥ उदा०—योऽयमध्वा गन्तव्यः आपाटलिपुत्रात्, तस्य यदवरं कौशाम्ब्यास्तत्र द्विरोदनं भोक्ष्यामहे (जो यह मार्ग पाटलिपुत्र तक गन्तव्य है, उसका जो कौशाम्बी से इधर का भाग है, उसमें दो बार चावल खायेंगे)। तत्र सक्तून पास्यामः (वहाँ सत्तू पीयेंगे) ॥ सिद्धि में कुछ भी विशेष नहीं है ॥ भुज् के ज् को चोः कुः (८।२।३०) से कुत्व हुआ है। 'भुक् स्य महिङ्' यहाँ अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१) से दीर्घत्व, तथा षत्वादि होकर भोक्ष्यामहे बना है ॥

यहाँ से 'भविष्यति' की अनुवृत्ति ३।३।१३९ तक, 'मर्यादावचने' की ३।३।१३८ तक, एवं 'अवरस्मिन्' की ३।३।१३७ तक जायेगी ॥

कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥३।३।१३७॥

कालविभागे ७।१॥ च अ० ॥ अनहोरात्राणाम् ६।३॥ स०—कालस्य विभागः कालविभागः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः । अहानि च रात्रयश्च अहोरात्राणि, न अहोरात्राणि अनहोरात्राणि, तेषाम्, द्वन्द्वगर्भो नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—भविष्यति, मर्यादावचनेऽवरस्मिन्, नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालमर्यादायामवरस्मिन् प्रविभागे सति भविष्यति काले धातोरनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेद् अहोरात्रसम्बन्धी विभागः, तत्र त्वनद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्भवत्येव ॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । तत्रौदनं भोक्ष्यामहे ॥

भाषार्थः—[कालविभागे] कालकृत मर्यादा में अवर भाग को कहना हो, तो [च] भी भविष्यत् काल में धातु से अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि नहीं होती, यदि वह काल का मर्यादाविभाग [अनहोरात्राणम्] अहोरात्र=दिन-रात सम्बन्धी न हो ॥ पूर्व सूत्र से ही निषेध सिद्ध था, यहाँ 'अनहोरात्राणाम्' में निषेध करने के लिये यह वचन है ॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यदवरमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे (जो यह आगामी वर्ष है, उसका जो अगहन पूर्णमासी से इधर का भाग है, उसमें लग कर पढ़ेंगे) । तत्रौदनं भोक्ष्यामहे ॥

उदाहरण में आग्रहायणी कालवाची शब्द से अवर भाग की मर्यादा बांधी है, सो अध्येष्यामहे में अनद्यतन भविष्यत्काल के लुट् का निषेध होकर पूर्ववत् लृट् प्रत्यय हो गया है ॥

यहाँ से 'कालविभागे चानहोरात्राणाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१३८ तक जायेगी ॥

परस्मिन् विभाषा ॥३।३।१३८॥

परस्मिन् ७।१॥ विभाषा १।१॥ अनु०—कालविभागे चानहोरात्राणाम्, भविष्यति मर्यादावचने, नानद्यतनवत्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भविष्यति काले मर्यादावचने कालस्य परस्मिन् प्रविभागे सति धातोर्विकल्पेनानद्यतनवत् प्रत्ययविधिर्न भवति, न चेद् अहोरात्र-सम्बन्धी प्रविभागः ॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी, तत्र यत् परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येष्यामहे । पक्षे—अध्येतास्महे । तत्र सक्तून पास्यामः, पातास्मो वा ॥

भाषार्थः—भविष्यत्काल में काल के [परस्मिन्] परले भाग की मर्यादा को

कहना हो, तो अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि [विभाषा] विकल्प से नहीं होती, यदि वह कालविभाग अहोरात्र-सम्बन्धी न हो तो ॥ पूर्वसूत्र में कालकृत अवरप्रविभाग की मर्यादा में अनद्यतनवत् प्रत्ययविधि का निषेध था, यहां परप्रविभाग को कहने में विकल्प से निषेध कर दिया है ॥ उदा०—योऽयं संवत्सर आगामी तत्र यत् परमाग्रहायण्यास्तत्रयुक्ता अध्येष्यामहे(जो यह आनेवाला साल है उसका जो अगहन पूर्णमासी से परला भाग है, उसमें लगकर पढ़ेंगे)। पक्ष में —अध्येतास्महे । तत्र सक्तून् पास्यामः, पातास्मो वा उसमें सत्तू पीवेंगे) ॥ विकल्प कहने से पक्ष में भविष्यत् काल का लुट् प्रत्यय होकर, 'अधि इ तास् महिङ्'—अधि ए तास् महे=अध्येतास्महे, तथा पातास्मः बन गया है ॥

लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ॥३।३।१३९॥

लिङ्निमित्ते ७।१॥ लृङ् १।१॥ क्रियातिपत्तौ ७।१॥ स०—लिङो निमित्तं लिङ्निमितम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः । क्रियाया अतिपत्तिः क्रियातिपत्तिः, तस्याम्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ **अनु०**—भविष्यति, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—भविष्यति काले लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां धातोर्लृङ् प्रत्ययो भवति ॥ हेतुहेतुमतोर्लिङ् (३।३।१५६) इत्येवमादिकं लिङो निमित्तम् ॥ उदा०—दक्षिणेन चेदागमिष्यत्, न शकटं पर्याभविष्यत् । अभोक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमासिष्यत ॥

भाषार्थः—भविष्यतकाल में [लिङ्निमित्ते] लिङ् का निमित्त होने पर [क्रियातिपत्तौ] क्रिया की अतिपत्ति=उल्लङ्घन अथवा क्रिया का सिद्धि न होना गम्यमान हो, तो धातु से [लृङ्] लृङ् प्रत्यय होता है ॥ हेतु (कारण) और हेतुमत् (फल=कार्य) लिङ् के निमित्त होते हैं । सो लिङ् निमित्त का अर्थ हुआ—हेतुहेतुमद्भाव ॥ उदा०—दक्षिणेन चेदागमिष्यत्, न शकटं पर्याभविष्यत् (यदि दक्षिण के रास्ते से आओगे, तो गाड़ी नहीं उलटेगी) । अभोक्ष्यत भवान् घृतेन, यदि मत्समीपमासिष्यत (यदि आप मेरे पास बैठोगे, तो घी से भोजन करोगे) ॥ उदाहरण में दक्षिण से आना तथा मेरे पास बैठना, यह हेतु है, छकड़े का न उलटना तथा घी से खाना, यह हेतुमत् है । वह दक्षिण से आयेगा ही नहीं, अतः छकडा टूट जायेगा, एवं मेरे पास रहेगा ही नहीं, अतः घी से न खा सकेगा (यह बात वक्ता ने किसी प्रकार जान ली) यह क्रियातिपत्ति=क्रिया का उल्लङ्घन है । सो उदाहरण आगमिष्यत् पर्याभविष्यत् आदि में लृङ् लकार हो गया है ॥ आगमिष्यत् में गमेरिट् पर० (७।२।५८) से इट् आगम होता है । 'परि आङ् अट् भू इट् स्य त्'=पर्या भो इष्य त्=पर्याभविष्यत् पूर्ववत् बन गया है ॥ आत्मनेपद में 'त' होकर अभोक्ष्यत आसिष्यत भी इसी प्रकार समझें ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।३।१४१ तक जायेगी ॥

भूते च ॥३।३।१४०॥

भूते ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ पूर्वेण भविष्यति विहितोऽत्र भूतेऽपि विधीयते ॥ अर्थः—भूते लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ सत्यां लृङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदा अभोक्ष्यत, न तु भुक्तवान् अन्येन पथा स गतः ॥

भाषार्थः—लिङ् का निमित्त हेतुहेतुमत् आदि हो, तो क्रियातिपत्ति होने पर [भूते] भूतकाल में [च] भी धातु से लृङ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्वसूत्र से भविष्यत् काल में ही लृङ् प्राप्त था, यहाँ भूतकाल में भी विधान कर दिया है ॥ उदा०—दृष्टो मया भवत्पुत्रोऽन्नार्थी चङ्क्रम्यमाणः, अपरश्च द्विजो ब्राह्मणार्थी, यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदा अभोक्ष्यत, न तु भुक्तवान्, अन्येन पथा स गतः (मैंने अन्न के लिये इधर-उधर घूमते हुये आपके पुत्र को देखा था, तथा मैंने एक द्विज को देखा था, जो ब्राह्मण को भोजन कराने के लिये ढूंढ रहा था। यदि वह आपके पुत्र को देख लेता, तो खिला देता, पर नहीं खा सका, क्योंकि वह अन्य रास्ते से चला गया = दिखाई नहीं दिया) ॥ उदाहरण में 'यदि वह उसके द्वारा देखा जाता', यह हेतु है; 'तो खिला देता' यह हेतुमत् है, उसने देखा नहीं, अतः खिलाया नहीं, यह क्रियातिपत्ति है ॥ भूतकालता प्रदर्शित करने के लिये ही दृष्टो मया···आदि इतना बड़ा वाक्य दिखाया है ॥

यहाँ से 'भूते' की अनुवृत्ति ३।३।१४१ तक जायेगी ॥

वोताप्योः ॥३।३।१४१॥

वा अ० ॥ आ अ० ॥ उताप्योः ७।२॥ अनु०—लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ, भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—उताप्योः समर्थयोर्लिङ् (३।३।१५२) इति सूत्रात् प्राक् लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूते विभाषा लृङ् भवतीत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ उदा०—विभाषा कथमि लिङ् च (३।३।१४३) इत्यत्र कथं नाम तत्र भवान् ब्राह्मणम् अक्रोक्ष्यत्। यथाप्राप्तं 'क्रोशेत्' इति च ॥

भाषार्थः—[उताप्योः] उताप्योः समर्थयोर्लिङ् (३।३।१५२) से [आ] पहले-पहले जितने सूत्र हैं, उनमें लिङ् का निमित्त होने पर क्रिया की अतिपत्ति में भूतकाल में [वा] विकल्प से लृङ् प्रत्यय होता है। विभाषा कथमि लिङ् च (३।३।१४३) सूत्र में लिङ् का विधान है। अतः यहां प्रकृत सूत्र का अधिकार होने से पक्ष में भूतकाल क्रियातिपत्ति विवक्षा होने पर लृङ् भी हो गया। जहां लिङ् का सम्बन्ध नहीं होगा, वहां इस सूत्र का अधिकार नहीं बैठेगा ॥

'वा+आ' को सवर्णदीर्घ होकर 'वा' बना। पुनः वा+उताप्योः यहाँ आद् गुणः, (६।१।८४) लगकर वोताप्योः बना है ॥ यहाँ पर आङ् मर्यादा में है, अभिविधि में नहीं ॥

गर्हायां लडपिजात्वोः ॥३।३।१४२॥

गर्हायाम् ७।१॥ लट् १।१॥ अपिजात्वोः ७।२॥ स०—अपिश्च जातुश्च अपि-जातू, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गर्हायां गम्यमानायाम् अपि, जातु इत्येतयोरुपपदयोः धातोर्लट् प्रत्ययो भवति ॥ कालत्रये लट विधीयते ॥ उदा०—अपि तत्र भवान् मांसं खादति । जातु तत्र भवान् मांसं खादति, गर्हितमेतत् ॥

भाषार्थः—वर्त्तमानकाल में लट् प्रत्यय कहा है, कालसामान्य (तीन कालों) प्राप्त नहीं था, अतः विधान कर दिया है ॥ [गर्हायाम्] निन्दा गम्यमान हो, तो [अपिजात्वोः] अपि तथा जातु उपपद रहते धातु से [लट्] लट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अपि तत्र भवान् मांसं खादति, जातु तत्र भवान् मांसं खादति, गर्हितमेतत् (क्या आप मांस खाते हैं, खाया था, वा खायेंगे, यह बड़ा निन्दित कर्म है)॥

किसी कालविशेष में ये लकार नहीं कहे गये हैं । अतः इस सारे प्रकरण में कहे गये प्रत्यय भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों ही कालों में होते हैं । सो विवक्षाधीन उदाहरणों के अर्थ लगा लेने चाहियें ॥

यहां से 'गर्हायाम्' की अनुवृत्ति ३।३।१४४, तथा 'लट्' की अनुवृत्ति ३।३।१४३ तक जायेगी ॥

विभाषा कथमि लिङ् च ॥३।३।१४३॥

विभाषा १।१॥ कथमि ७।१॥ लिङ् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—गर्हायाम्, लट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गर्हायां गम्यमानायां कथंशब्द उपपदे धातोः लिङ् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, चकारात् लट् च । पक्षे स्वस्वकाले विहिताः सर्वे लकारा भवन्ति ॥ उदा०—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोशेत् । चकारात् लट—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोशति । पक्षे स्वस्वकाले सर्वे लकाराः—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोक्ष्यति (लृट्)। कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोष्टा (लुट्)। कथं नाम भवान् ब्राह्मणमक्रोशत् (लङ्)। कथं नाम भवान् ब्राह्मणं चुक्रोश (लिट्)। कथं नाम भवान् ब्राह्मणमक्रुक्षत् (लुङ्) । अस्मिन् सूत्रे लिङ् निमित्तमस्त्यतो भूतविवक्षायां क्रियातिपत्तौ सत्यां वोताप्योः (३।३।१४१) इत्यनेन लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः—गर्हा गम्यमान हो, तो [कथमि] कथम् शब्द उपपद रहते [विभाषा] विकल्प करके [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से लट् प्रत्यय

भी होता है। पक्ष में अपने-अपने काल में विहित सारे ही लकार होते हैं ॥ उदा०—कथं नाम भवान् ब्राह्मणं क्रोशेत् (कैसे आप ब्राह्मण को डांटते हैं, डांटा, वा डांटेंगे)॥ शेष उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जान लें। इस सूत्र में लिङ् का निमित्त है, अतः क्रियातिपत्ति में भूत काल की विवक्षा में लृङ् भी पक्ष में होगा— अक्रोक्ष्यत् बनेगा॥

किंवृत्ते लिङ्लृटौ ॥३।३।१४४॥

किंवृत्ते ७।१॥ लिङ्लृटौ १।२॥ स०— किमो वृत्तं किंवृत्तम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः। लिङ् च लृट् च लिङ्लृटौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०— गर्हायाम्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—किंवृत्त उपपदे धातोः गर्हायां गम्यमानायां लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा०—को नाम यो विद्यां निन्देत्। को नाम यो विद्यां निन्दिष्यति। कतरो विद्यां निन्देत्। कतरो विद्यां निन्दिष्यति॥ क्रियातिपत्तौ सत्यां लृङपि भवति वोताप्यो. (३।३।१४१) इत्यनेन॥

भाषार्थः—[किंवृत्ते] किंवृत्त उपपद हो, तो गर्हा गम्यमान होने पर धातु से [लिङ्लृटौ] लिङ् तथा लृट् प्रत्यय होते हैं॥ किंवृत्त से यहां सर्वविभक्त्यन्त किम् शब्द, तथा इतर डतम प्रत्ययान्त किम् शब्द लिया जाता है॥ उदा० - को नाम यो विद्यां निन्देत् (कौन है जो विद्या की निन्दा करता है, करेगा, वा की थी)॥ शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जान लें। लिङ् प्रत्यय होने से भूतकाल विवक्षा में क्रियातिपत्ति में वोताप्योः (३।३।१४१) से लृङ् भी होगा, सो 'अनिन्दिष्यत्' भी बनेगा॥ यह सब लकारों का अपवाद है॥

यहां से 'लिङ्लृटौ' की अनुवृत्ति ३।३।१४५ तक जायेगी॥

अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि ॥३।३।१४५॥

अनव···योः ७।२॥ अकिंवृत्ते ७।१॥ अपि अ०॥ स०--अनवक्लृप्तिः, अमर्षः इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः। अनवक्लृप्तिश्च अमर्षश्च अनवक्लृप्त्यमर्षौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०— लिङ्लृटौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—अनवक्लृप्ति अमर्ष इत्येतयोर्गम्यमानयोः किंवृत्तेऽकिंवृत्ते चोपपदे धातोः लिङ्लृटौ प्रत्ययौ भवतः॥ अनवक्लृप्तिः=असंभावना। अमर्षः=अक्षमा॥ उदा०—नावकल्पयामि न संभावयामि न श्रद्दधे तत्र भवान् मांसं भुञ्जीत, मांसं भोक्ष्यते। किंवृत्तेऽपि—को नाम तत्र भवान् मांसं भुञ्जीत नावकल्पयामि। को नाम तत्र भवान् मांसं भोक्ष्यते। अमर्षे—न मर्षयामि तत्र भवान् विद्यां निन्देत्, तत्र भवान विद्यां निन्दिष्यति। किंवृत्तेऽपि—कदाचित् भवान् विद्यां निन्देत् न मर्षयामि, कदाचित् निन्दिष्यति वा। भूतविवक्षायां वोताप्योः (३।३।१४१) इत्यनेन लृङपि भवति॥

भाषार्थः—[अन——···र्षयोः] अनवक्लृप्ति=असम्भावना, अमर्ष=सहन न

करना गम्यमान हो, तो [अकिंवृत्ते] किंवृत्त उपपद न हो [अपि] या किंवृत्त उपपद हो, तो भी धातु से कालसामान्य में सब लकारों के अपवाद लिङ् तथा लृट् प्रत्यय होते हैं ॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में लृङ् भी पक्ष में होगा ॥ उदा०—नावकल्पयामि न सम्भावयामि न श्रद्दधे तत्र भवान् मांसं भुञ्जीत, मांसं भोक्ष्यते (मैं सोच भी नहीं सकता कि मांस खाते हैं) । अमर्ष में — न मर्षयामि तत्र भवान् विद्यां निन्देत् (मैं सहन नहीं कर सकता कि आप विद्या की निन्दा करते हैं) ॥ शेष उदाहरण संस्कृत भाग के अनुसार जान लें । यहां यथासंख्य नहीं होता है ॥

भुज धातु रुधादि गण की है, सो श्नम् होकर 'भु श्नम् ज् सीयुट् सुट् त' बनकर श्नसोरल्लोपः (६।४।१११) से श्नम् के अ का लोप, तथा लिङः सलोपोऽन० (७।२।७९) से दोनों सकारों का लोप होकर 'भुन ज् ईय् त' रहा । लोपो व्यो० (६।१।६४) से ईय् के य् का लोप होकर भुन्जीत बना । नश्चापदा० (८।३।२४) एवं अनुस्वारस्य ययि० (८।४।५७) से न् को ञ् होकर भुञ्जीत बना है ॥

यहां से 'अनवक्लृप्त्यमर्षयोः' की अनुवृत्ति ३।३।१४८ तक जायेगी ॥

किंकिलास्त्यर्थेषु लृट् ॥३।३।१४६॥

किंकिलास्त्यर्थेषु ७।३॥ लृट् १।१॥ स०—अस्ति अर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः, बहुव्रीहिः । किंकिलश्च अस्त्यर्थाश्च किंकिलास्त्यर्थाः, तेषु इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः किंकिल-अस्त्यर्थेषु चोपपदेषु धातोः लृट् प्रत्ययो भवति ॥ 'किंकिल' इति क्रोधद्योतकः समुदायो गृह्यते ॥ उदा०—न संभावयामि किंकिल भवान् धान्यं न दास्यति । न मर्षयामि किंकिल भवान् धान्यं न दास्यति । अस्त्यर्थेषु—न सम्भावयामि न मर्षयामि अस्ति नाम भवान् मां त्यक्ष्यति । विद्यते भवति वा नाम तत्र भवान् मां त्यक्ष्यति ॥

भाषार्थः—अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष गम्यमान हों, तो [किंकिलास्त्यर्थेषु] किंकिल तथा अस्ति अर्थ वाले पदों के उपपद रहते धातु से [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है ॥ अस्ति, भवति, विद्यते यह सब अस्त्यर्थक पद हैं । किंकिल यह क्रोध का द्योतन करने अर्थ में वर्त्तमान समुदायरूप शब्द है ॥ उदा०—न सम्भावयामि किंकिल भवान् धान्यं न दास्यति (मैं सोच भी नहीं सकता कि आप धान्य नहीं देंगे, दिया वा देते हैं) । न सम्भावयामि न मर्षयामि वा अस्ति नाम भवान् मां त्यक्ष्यति (मैं सोच नहीं सकता वा सहन नहीं कर सकता कि आप मुझे छोड़ देंगे) ॥ शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जान लें । उदाहरण में दा तथा त्यज् धातु से लृट् प्रत्यय हुआ है । त्यज् के ज् को कुत्व होकर त्यक् स्य ति, षत्व होकर त्यक्ष्यति बना है ॥

जातुयदोर्लिङ् ॥३।३।१४७॥

जातुयदोः ७।२॥ लिङ् १।१॥ स०—जातुश्च यत् च, जातुयदौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः जातुयदोरुपपदयोः धातोः लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—न संभावयामि जातु भवान् धर्मं त्यजेत्, यद् भवान् धर्मं त्यजेत् । अमर्षे—न मर्षयामि न सहे, जातु भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात्, यद् भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात् । भूते क्रियातिपत्तौ पक्षे लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः अनवक्लृप्ति अमर्ष अभिधेय हो, तो [जातुयदोः] जातु तथा यद् उपपद रहते धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—न संभावयामि जातु भवान् धर्मं त्यजेत् यद् भवान् धर्मं त्यजेत् (मैं सोच नहीं सकता कि आप कभी धर्म छोड़ देंगे) । अमर्ष में—न मर्षयामि न सहे, जातु भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात्, यद् भवान् ब्राह्मणं सदाचारिणं हन्यात् (मैं सहन नहीं कर सकता कि आप सदाचारी ब्राह्मण को मारेंगे) ॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में वोताप्योः से लृङ् भी होगा, सो अत्यक्ष्यत् बनेगा ॥

यहाँ से 'लिङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१५० तक जायेगी ॥

यच्चयत्रयोः ॥३।३।१४८॥

यच्चयत्रयोः ७।२॥ स०—यच्च च, यत्र च यच्चयत्रौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङ्, अनवक्लृप्त्यमर्षयोः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्गम्यमानयोः, यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोः धातोः लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—न संभावयामि यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत् यत्र भवद्विधोऽनृतं वदेत् । न मर्षयामि न सहे, यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत्, यत्र भवद्विधोऽनृतं वदेत् । भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति ॥

भावार्थः—अनवक्लृप्ति अमर्ष गम्यमान हो, तो [यच्चयत्रयोः] यच्च, यत्र ये अव्यय उपपद रहते, धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ भूत क्रियातिपत्ति में पक्ष में लृङ् भी होगा ॥ उदा०—न संभावयामि यच्च भवद्विधोऽनृतं वदेत् (मैं सोच भी नहीं सकता कि आप जैसे झूठ बोल देंगे) ॥ वदेत् की सिद्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के समान जानें ॥

यहाँ से 'यच्चयत्रयोः' की अनुवृत्ति ३।३।१५० तक जायेगी ॥

गर्हायाञ्च ॥३।३।१४९॥

गर्हायाम् ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—यच्चयत्रयोः, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—गर्हायां=निन्दायां गम्यमानायां यच्च, यत्र इत्येतयोरुपपदयोः धातोः लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यच्च भवान् मांसं खादेत्, यत्र भवान् मांसं खादेत्, अहो गर्हितमेतत् । भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः—[गर्हायाम्] गर्हा गम्यमान हो, तो [च] भी यच्च यत्र उपपद रहते धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ पूर्ववत् भूत क्रियातिपत्ति में विकल्प से लृङ् भी होगा ॥ उदा०—यच्च भवान् मांसं खादेत्, यत्र भवान् मांसं खादेत्, अहो गर्हितमेतत् (जो आप मांस खाते हैं, यह बड़ी निन्दित बात है) । खादेत् की सिद्धि परि ३।१।६८ पठेत् के समान जानें ॥

चित्रीकरणे च ॥३।३।१५०॥

चित्रीकरणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—यच्चयत्रयोः, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चित्रीकरणम् आश्चर्यं, तस्मिन् गम्यमाने यच्च यत्र इत्येतयोरुपपदयोः धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यच्च भवान् वेदविद्यां निन्देत्, यत्र भवान् वेदविद्यां निन्देत्, आश्चर्यमेतत्, बुद्धिमान् सज्जनोऽपि सन् । भूते क्रियातिपत्तौ वा लृङपि भविष्यति ॥

भाषार्थः—[चित्रीकरणे] चित्रीकरण=आश्चर्य गम्यमान हो तो [च] भी यच्च, यत्र उपपद रहते धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ॥ भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में लृङ् भी होगा ॥ उदा०—यच्च भवान् वेदविद्यां निन्देत्, यत्र भवान् वेदविद्यां निन्देत्, आश्चर्यमेतत् बुद्धिमान् सज्जनोऽपि सन् (बुद्धिमान् और सज्जन होते हुये भी जो आप वेद विद्या की निन्दा करते हैं, यह आश्चर्य है) ॥

यहां से 'चित्रीकरणे' की अनुवृत्ति ३।३।१५१ तक जायेगी ॥

शेषे लृडयदौ ॥३।३।१५१॥

शेषे ७।१॥ लृट् १।१॥ अयदौ ७।१॥ स०—न यदिः अयदिः तस्मिन्...नञ्-तत्पुरुषः ॥ अनु०—चित्रीकरणे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यच्चयत्राभ्यामन्यो यः स शेषः, तस्मिन्नुपपदे चित्रीकरणे गम्यमाने धातोः लृट् प्रत्ययो भवति, यदि शब्दश्चेत् न प्रयुज्यते ॥ उदा०—अन्धो नाम मार्गे क्षिप्रं यास्यति, बधिरो नाम व्याकरणं पठिष्यति, आश्चर्यमेतत् ॥

भाषार्थः—यच्च यत्र की अपेक्षा से यहां शेष लिया गया है ॥ [अयदौ] यदि

का प्रयोग न हो और [शेषे] यच्च यत्र से भिन्न शब्द उपपद हो, तो चित्रीकरण गम्यमान होने पर धातु से [लृट्] लृट् प्रत्यय होता है ।। उदा०—अन्धो नाम मार्गं क्षिप्रं यास्यति, बधिरो नाम व्याकरणं पठिष्यति, आश्चर्यमेतत् (अन्धा जल्दी-जल्दी मार्ग में चलेगा, तथा बहरा व्याकरण पढ़ेगा, पढ़ता है, अथवा पढ़ा, यह आश्चर्य की बात है) ।।

उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ।।३।३।१५२।।

उताप्योः ७।२।। समर्थयोः ७।२।। लिङ् १।१।। स०—उतश्च अपिश्च, उतापी, तयोः···इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। समानः अर्थो ययोः तौ समर्थौ, तयोः···बहुव्रीहिः ।। अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—उत, अपि इत्येतयोः समर्थयोः=समानार्थयोरुपपदयोः धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—उत कुर्यात्, अपि कुर्यात् । उत पठेत्, अपि पठेत् ।।

भाषार्थः—[उताप्योः] उत, अपि [समर्थयोः] समानार्थक उपपद हों, तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ।। बाढम्=हाँ अर्थ में उत अपि समानार्थक होते हैं, वोताप्योः का अधिकार यहाँ समाप्त हो जाने से अब वह सम्बन्धित नहीं होगा । अत उत् सार्वधातुके (६।४।११०) लगकर कुर्यात् बन गया, शेष पूर्ववत् समझें ।। उदा०—उत कुर्यात् (हाँ करे) । अपि कुर्यात् (हाँ करे) । उत पठेत् (हाँ पढ़े) । अपि पठेत् (हाँ पढ़े) ।।

यहाँ से 'लिङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१५५ तक जायेगी ।।

कामप्रवेदनेऽकच्चिति ।।३।३।१५३।।

कामप्रवेदने ७।१।। अकच्चिति ७।१।। स०—कामस्य=इच्छायाः प्रवेदनं=प्रकाशनं, कामप्रवेदनं, तस्मिन्···षष्ठीतत्पुरुषः । न कच्चित् अकच्चित्, तस्मिन्···नञ्तत्पुरुषः ।। अनु०—लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—कामप्रवेदने=स्वाभिप्रायप्रकाशने गम्यमाने धातोरकच्चित्शब्द उपपदे लिङ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—कामो मे भुञ्जीत भवान्, अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान् ।।

भाषार्थः—[कामप्रवेदने] अपने अभिप्राय का प्रकाशन करना गम्यमान हो और [अकच्चिति] कच्चित् शब्द उपपद में न हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय होता है ।। काम=इच्छा, प्रवेदन=प्रकाशन ।। उदा०—कामो मे भुञ्जीत भवान् (मेरी इच्छा है, कि आप भोजन करें) । अभिलाषो मे भुञ्जीत भवान् ।। ३।३।१४५ सूत्र में भुञ्जीत की सिद्धि देखें ।।

सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे ॥३।३।१५४॥

सम्भावने ७।१॥ अलम् अ० ॥ इति अ० ॥ चेत् अ० ॥ सिद्धाप्रयोगे ७।१॥ स०—न प्रयोगः, अप्रयोगः नञ्तत्पुरुषः । सिद्धोऽप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः (अलम् शब्दः), तस्मिन्...बहुव्रीहिः ॥ अनु०—लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—सम्भावनम्=क्रियासु शक्तेः निश्चयः । अलंशब्दोऽत्र समर्थवाची । सम्भावनम् अलमर्थेन विशेष्यते । अलं पर्याप्तम् इति सम्भावनेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, सिद्धश्चेद् अलमोऽप्रयोगः ॥ यत्र गम्यते चार्थो न चासौ प्रयुज्यते स सिद्धाप्रयोगः ॥ उदा०—अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् । अपि वृक्षं हस्तेन त्रोटयेत् ॥

भाषार्थः—[अलमिति] पर्याप्त विशिष्ट [सम्भावने] सम्भावन अर्थ में वर्त्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय होता है, [चेत्] यदि अलम् शब्द का [सिद्धाप्रयोगे] अप्रयोग सिद्ध हो रहा हो, अर्थात् अलम् समर्थवाची शब्द के प्रयोग के बिना ही समर्थता की प्रतीति हो रही हो। सम्भावना=क्रियाओं में शक्ति के निश्चय को कहते हैं ॥ अलं शब्द यहां समर्थवाची है ॥ जहां किसी अर्थ की प्रतीति तो हो रही हो पर उस शब्द का प्रयोग न हो रहा हो, उसे सिद्ध+अप्रयोग=सिद्धाप्रयोग कहते हैं ॥ उदा०—अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् (यह तो सिर से पर्वत तोड़ सकता है) अपि वृक्षं हस्तेन त्रोटयेत् (यह तो हाथ से वृक्ष तोड़ सकता है) । उदाहरण में अलं शब्द का प्रयोग नहीं है, पर अर्थ की प्रतीति हो रही है, सम्भावना की जा रही है सो भिद् धातु से लिङ् प्रत्यय हो गया है । रुधादिभ्यः श्नम् (३।१।७८) से भिन्द्यात् में श्नम् विकरण होता है ॥

यहाँ से सारे सूत्र की अनुवृत्ति ३।३।१५५ तक जायेगी ॥

विभाषा धातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥३।३।१५५॥

विभाषा १।१॥ धातौ ७।१॥ सम्भावनवचने ७।१॥ अयदि ७।१॥ स०—न यद् अयद्, तस्मिन्...नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे, लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ सम्भावनमुच्यतेऽनेन स सम्भावनवचनः, तस्मिन्...॥ अर्थः—सम्भावनवचने धातावुपपदे यच्छब्दवर्जिते सिद्धाप्रयोगेऽलमर्थे सम्भावने धातोर्विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—सम्भावयामि भुञ्जीत भवान्, अवकल्पयामि भुञ्जीत भवान् । पक्षे लृट्—सम्भावयामि भोक्ष्यते भवान्, अवकल्पयामि भोक्ष्यते भवान् ॥

भाषार्थः—[सम्भावनवचने] सम्भावन अर्थ को कहनेवाला [धातौ] धातु उपपद हों तो [अयदि] यत् शब्द उपपद न होने पर, सम्भावन अर्थ में वर्त्तमान धातु से [विभाषा] विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है, यदि अलम् शब्द का अप्रयोग सिद्ध

हो ॥ सम्भावना भविष्यत् काल विषय वाली होती है, अतः पक्ष में सामान्य भविष्यत् काल का प्रत्यय लृट् हो गया है ॥ उदा०—सम्भावयामि भुञ्जीत भवान् (मैं सम्भावना करता हूं कि आप खावेंगे)। शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जान लें ॥ उदाहरण में सम्भावयामि अवकल्पयामि सम्भावनवचन धातु उपपद हैं, अलम् शब्द का अप्रयोग सिद्ध है ही सो भुज् धातु से लिङ् तथा पक्ष में लृट् प्रत्यय हुआ है ॥

यहाँ से 'विभाषा' की अनुवृत्ति ३।३।१५६ तक जायेगी ॥

हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥३।३।१५६॥

हेतुहेतुमतोः ७।२। लिङ् १।१॥ स०—हेतुश्च हेतुमत् च, हेतुहेतुमती तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—विभाषा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—हेतुः= कारणम्, हेतुमत् = फलम्। हेतुभूते हेतुमति चार्थे वर्त्तमानाद् धातोर्विभषा लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दक्षिणेन चेद यायात्, न शकटं पर्याभवेत्। यदि कमलकमाह्वयेत् न शकटं पर्याभवेत्। पक्षे लृडपि—दक्षिणेन चेद् यास्यति, न शकटं पर्याभविष्यति ॥

भाषार्थः—[हेतुहेतुमतोः] हेतु और हेतुमत् अर्थ में वर्त्तमान धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥ 'भविष्यदधिकारे' इस महाभाष्य के वार्त्तिक से लिङ् प्रत्यय (इस सूत्र से हेतु हेतुमत् में विहित) भविष्यत् काल में ही होता है, अतः पक्ष में लृट् सामान्य भविष्यत् का ही उदाहरण दिया है ॥ उदा०—दक्षिणेन चेद् यायात्, न शकटं पर्याभवेत् (यदि दक्षिण के रास्ते से जाये, तो छकड़ा न टूटे)। यदि कमलकमाह्वयेत् न शकटं पर्याभवेत् (यदि कमलक को बुला ले,) तो छकड़ा न टूटे)। पक्ष में लृट् का उदाहरण संस्कृतानुसार जानें ॥ उदाहरण में दक्षिण से जाना एवं कमलक को बुलाना हेतु है, तथा छकड़े का टूटना हेतुमत् है ॥ सिद्धियाँ पूर्ववत् हैं ॥

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥३।३।१५७॥

इच्छार्थेषु ७।३॥ लिङ्लोटौ १।२॥ स०—इच्छा अर्थो येषां ते, इच्छार्थास्तेषु, बहुव्रीहिः। लिङ् च लोट् च लिङ्लोटौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—इच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०— इच्छामि भुञ्जीत भवान्। इच्छामि भुङ्क्तां भवान्। कामये भुञ्जीत भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान् ॥

भाषार्थः—[इच्छार्थेषु] इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते [लिङ्लोटौ] लिङ् तथा लोट प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—इच्छामि भुञ्जीत भवान् (मैं चाहता हूं

कि आप भोजन करें) । इच्छामि भुङ्क्तां भवान्, कामये भुञ्जीत भवान्, कामये भुङ्क्तां भवान् ॥ भुञ्जीत की सिद्धि ३।३।१४५ सूत्र पर देखें ॥ लोट् लकार में पूर्ववत् सब कार्य होकर 'भुन् ज् त' रहा। टित आत्मने० (३।४।७९) से टि का एत्व होकर 'भुन्ज् ते' बना पुनः आमेतः (३।४।९०) से ए को आम्, चोः कुः से कुत्वादि पूर्ववत् होकर भुङ्क्ताम् बन गया ॥

यहाँ से 'इच्छार्थेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१५९ तक जायेगी ॥

समानकर्त्तृकेषु तुमुन् ॥३।३।१५८॥

समानकर्त्तृकेषु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०—समानः कर्त्ता येषां, ते समानकर्त्तृकास्तेषु, बहुव्रीहिः ॥ अनु० – इच्छार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—समानकर्त्तृकेष्विच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवदत्त इच्छति भोक्तुम् । कामयते भोक्तुम् । वाञ्छति भोक्तुम् । वष्टि भोक्तुम् ॥

भाषार्थः—[समानकर्त्तृकेषु] समान है कर्त्ता जिनका ऐसी इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते धातु से [तुमुन्] तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—देवदत्त इच्छति भोक्तुम् (देवदत्त खाना चाहता है) । कामयते भोक्तुम् (खाना चाहता है) । वाञ्छति भोक्तुम्, वष्टि भोक्तुम् ॥ उदाहरण में इच्छति, कामयते आदि इच्छार्थक धातुएं उपपद हैं, इच्छा करने का कर्त्ता तथा खाने का कर्त्ता भी वही एक देवदत्त है, सो समानकर्त्तृक धातु उपपद है, अतः भुज् धातु से तुमुन् प्रत्यय हो गया है। चोः कुः (८।२।३०) से ज् को ग् होकर तथा खरि च (८।४।५४) से क् होकर भोक्तुम् बना है । कृन्मेजन्तः (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होने से अव्ययादाप्सुपः (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो गया है ॥

यहाँ से 'समानकर्त्तृकेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१५९ तक जायेगी ॥

लिङ् च ॥३।३।१५९॥

लिङ् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—समानकर्त्तृकेषु, इच्छार्थेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—समानकर्त्तृकेष्विच्छार्थेषु धातुषूपपदेषु धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—भुञ्जीय इति इच्छति । अधीयीय इति अभिलषति ॥

भाषार्थः—समानकर्त्तृक इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय [च] भी होता है ॥ उदा०—भुञ्जीय इति इच्छति (खाऊं ऐसा चाहता है) ॥ भुञ्जीय में ३।३।१४५ सूत्र के समान सब कार्य होकर उत्तम पुरुष का इट् आकर इटोऽत् (३।४।१०६) लगकर भुञ्ज् ईय् अ = भुञ्जीय बन गया ॥ अधीयीय की सिद्धि ३।३।१३४ सूत्र पर देखें ॥

यहाँ से 'लिङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१६० तक जायेगी ॥

इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने ॥३।३।१६०॥

इच्छार्थेभ्य: ५।३।। विभाषा १।१।। वर्त्तमाने ७।१।। स०—इच्छा अर्थो येषां ते इच्छार्थास्तेभ्य: बहुव्रीहि: ।। अनु०—लिङ्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—इच्छार्थेभ्यो धातुभ्यो वर्त्तमाने काले विभाषा लिङ् प्रत्ययो भवति ।। वर्त्तमाने काले नित्यं लटि प्राप्ते विकल्पेन लिङ् विधीयते, अत: पक्षे लट् भवति ।। उदा०—इच्छेत्, कामयेत, वाञ्छेत् । पक्षे—इच्छति, कामयते, वाञ्छति ।।

भाषार्थ:—[इच्छार्थेभ्य:] इच्छार्थक धातुओं से [वर्त्तमाने] वर्त्तमान काल में [विभाषा] विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है, पक्ष में वर्त्तमान काल का लट् प्रत्यय भी होता है ।। उदा०—इच्छेत् (चाहता है) ।। सिद्धि परि० ३।१।६८ के पठेत् के समान जानें । कामयते में इतना विशेष है कि, कमेर्णिङ् (३।१।३०) से कम् धातु से णिङ् प्रत्यय तथा वृद्धि आदि होकर 'कामि' धातु बनी । पुन: सब कार्य पूर्ववत् ही होकर तथा गुण, अयादेशादि होकर 'कामय इ त=कामयेत बना । कामयते में भी ऐसा समझें ।।

विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ॥३।३।१६१॥

विधि······प्रार्थनेषु ७।३।। लिङ् १।१।। स०—विधिश्च निमन्त्रणञ्च आमन्त्रणञ्च अधीष्टश्च सम्प्रश्नश्च प्रार्थनञ्च, विधिनि···प्रार्थनानि, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ।। अनु०—धातो: प्रत्यय:, परश्च ।। अर्थ:—विधि:=आज्ञाप्रदानं, प्रेरणम् । निमन्त्रणम्=नियतरूपेण आह्वानं, नियोगकरणम् । आमन्त्रणं=कामचारेण आह्वानम् आगच्छेत् वा न वा । अधीष्ट:=सत्कारपूर्वकमाह्वानम् । सम्यक् प्रश्न:, सम्प्रश्न: । प्रार्थनं=याच्ञा । विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—विधौ—ओदनं पचेत, ग्रामं गच्छेत् । निमन्त्रणे—इहाद्य भवान् भुञ्जीत । इह भवान् आसीत । आमन्त्रणे—इह भवान् भुञ्जीत, इह भवान् आसीत । अधीष्टे—माणवकं मे भवान् उपनयेत । सम्प्रश्ने—किन्नु खलु भो न्यायमधीयीय । प्रार्थने—भवति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय ।।

भाषार्थ:—[विधि······नेषु] विधि=आज्ञा देना । निमन्त्रण=नियत रूप से बुलाना । आमन्त्रण=कामचार से बुलाना, आवे या न आवे । अधीष्ट=सत्कार पूर्वक व्यवहार करना । सम्प्रश्न=अच्छी प्रकार पूछ कर बात कहना, जैसे कि "आप ऐसा करेंगे न"? प्रार्थना=प्रार्थना करके कुछ कहना, इन अर्थों में धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ।। उदा०—विधि में—ओदनं पचेत् (वह चावल पकाये) । ग्राम गच्छेत् (गाँव को जाये) । निमन्त्रण में—इहाद्य भवान् भुञ्जीत (आज आप यहां भोजन करें) । इह भवान् आसीत (आप यहां बैठें) । आमन्त्रण

में—इह भवान् भुञ्जीत, इह भवान् आसीत । अधीष्ट में—माणवकं मे भवान् उपनयेत (मेरे बालक का उपनयन आप करायें) । सम्प्रश्न में किन्नु खलु भो न्यायमधीयीय (क्या मैं न्याय शास्त्र पढ़ूँ) । प्रार्थना में-भवति मे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय (मेरी यह प्रार्थना है, कि मैं व्याकरण पढ़ूँ) ॥ सिद्धियां कई वार पूर्व कर आये हैं. उसी प्रकार यहां भी जानें ॥

यहाँ से 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१६२ तक जायेगी ॥

लोट् च ॥३।३।१६२॥

लोट् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—विधि प्रार्थनेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—विध्यादिष्वर्थेषु धातोर्लोट् प्रत्ययः परश्च भवति ॥ उदा०—विधौ—वाराणसीं गच्छतु भवान्, भोजनं करोतु । निमन्त्रणे-अद्येह भुङ्क्तां भवान् । आमन्त्रणे-इह भवान् भुङ्क्ताम् । अधीष्टे-अधीच्छामि इह भवान् मासं निवसतु । सम्प्रश्ने-किं भवान् व्याकरणं पठतु ? प्रार्थने-न्यायं पाठयतु भवान्, वेदं पाठयतु भवान् ॥

भाषार्थः—विधि आदि अर्थों में धातु से [लोट्] लोट् प्रत्यय [च] भी होता है ॥ उदा०—विधि में—वाराणसीं गच्छतु भवान् (आप वाराणी जायें) भोजनं करोतु (आप भोजन करें) । निमन्त्रण में—अद्येह भुङ्क्तां भवान् (आज आप यहां खायें) । आमन्त्रण में—इह भवान् भुङ्क्ताम् (यहाँ आप खायें) । अधीष्ट में—अधीच्छामि इह भवान् मासं निवसतु (मेरी इच्छा है कि आप यहां महीने भर रहें)। सम्प्रश्न में—किं भवान् व्याकरणं पठतु (क्या आप व्याकरण पढेंगे ?) । प्रार्थना में—न्यायं पाठयतु भवान् (आप न्याय पढ़ायें यह प्रार्थना है) । वेदं पाठयतु भवान् ॥ भुङ्क्ताम् की सिद्धि ३।३।१५७ सूत्र पर देखें । गच्छतु में गम् शप् ति, पूर्ववत् होकर इषुगमि० (७।३।७७) से छत्व, तथा छे च (६।१।७१) से तुक् आगम होकर 'ग तुक् छ अ ति' रहा । श्चुत्व होकर गच्छ् अ ति, एरुः (३।४।८६) से इ को उ होकर गच्छतु बन गया । इसी प्रकार एरुः लगकर करोतु आदि समझें । पाठयतु में पठ् णिजन्त से लोट् आयेगा यही विशेष है ॥

यहाँ से 'लोट्' की अनुवृत्ति ३।३।१६३ तक जायेगी ॥

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥३।३।१६३॥

प्रैषा···लेषु ७।३॥ कृत्याः १।३॥च अ० ॥ स०—प्राप्तः कालः प्राप्तकालः, कर्मधारयस्तत्पुरुषः । प्रैषश्च, अतिसर्गश्च, प्राप्तकालश्च, प्रैषा कालाः तेषु इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लोट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल इत्येतेष्वर्थेषु धातोः कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया भवन्ति, चकारात् लोट् च

भवति ।। उदा०—भवता कटः करणीयः । कटः कर्त्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा । लोट्—प्रषितो भवान् गच्छतु ग्रामम् । भवानतिसृष्टः गच्छतु ग्रामम् । भवतः प्राप्तकालः ग्रामं गच्छतु ।।

भाषार्थः—[प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु] प्रैष=प्रेरणा करना, अतिसर्ग=कामचारपूर्वक आज्ञा देना, प्राप्तकाल=समय आ जाना, इन अर्थों में धातु से [कृत्याः] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय होते हैं, तथा [च] चकार से लोट् भी होता है ।। कृत्याः (३।१।९५) से तव्य अनीयर् आदि प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती हैं ।। उदा०—भवता कटः करणीयः (आपको चटाई बनानी चाहिये; या आप चटाई बनावें; अथवा आपका चटाई बनाने का समय आ गया है, आप करें) । कटः कर्त्तव्यः, कृत्यः, कार्यो वा ।। लोट्—प्रेषितो भवान् गच्छतु ग्रामम् (हमारी प्रेरणा है कि आप ग्राम को जायें)। भवानतिसृष्टः गच्छतु ग्रामम् (आप गांव को जावें) । भवतः प्राप्तकालः ग्रामं गच्छतु (आपका समय आ गया है, आप गाव को जावें)।। कार्य। में ऋहलोर्ण्यत् (३।१।१२४) से ण्यत्, तथा कृत्यः में विभाषा कृवृषोः (३।१।१२०) से क्यप् हुआ है। तुक् आगम ह्रस्वस्य पिति० (६।१।६६) से हो ही जायेगा ।।

यहाँ से 'प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु' की अनुवृत्ति ३।३।१६५ तक जायेगी ।।

लिङ् चोर्ध्वमौहूर्त्तिके ।।३।३।१६४।।

लिङ् १।१।। च अ० ।। ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके ७।१।। स०—मुहूर्त्ताद् ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वमुहूर्त्तम्, पञ्चमीतत्पुरुषः ।। ऊर्ध्वमुहूर्त्ते भवम् ऊर्ध्वमौहूर्त्तिकं, तस्मिन्, ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके।। अनु०—प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—प्रैषादिष्वर्थेषु गम्यमानेषु ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके काले वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, चकाराद्यथाप्राप्तं कृत्यप्रत्ययाः लोट् च भवन्ति ।। उदा०—मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् ग्रामं गच्छेत् । मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवता खलु कटः करणीयः, कर्त्तव्यः, कार्यः, कृत्यो वा । मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् खलु करोतु कटम् ।।

भाषार्थः—प्रैष अतिसर्ग तथा प्राप्तकाल अर्थ गम्यमान हों, तो (ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके) मुहूर्त्तभर से ऊपर के काल को कहने में धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से यथाप्राप्त कृत्यसंज्ञक एवं लोट् प्रत्यय होते हैं ।। उदा०—मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवान् ग्रामं गच्छेत् (मुहूर्त्तभर के पश्चात् आप ग्राम को जावें) । मुहूर्त्तस्य पश्चाद् भवता खलु कटः करणीयः (मुहूर्त्तभर के पश्चाद् आप चटाई बनावें) ।

शेष उदाहरण संस्कृतानुसार जानें ॥ एक ही उदाहरण में प्रैष अतिसर्ग प्राप्तकाल कोई भी अर्थ विवक्षा से लगाया जा सकता है। हमने एक ही अर्थ दिखा दिया है ॥

यहाँ से 'ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके' की अनुवृत्ति ३।३।१६५ तक जायेगी ॥

स्मे लोट् ॥३।३।१६५॥

स्मे ७।१॥ लोट् १।१॥ अनु०—ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके, प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्मशब्द उपपदे प्रैषादिष्वर्थेषु गम्यमानेषु ऊर्ध्वमौहूर्त्तिके काले वर्त्तमानाद् धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऊर्ध्वं मुहूर्त्ताद् भवान् कटं करोतु स्म, ग्रामं गच्छतु स्म ॥

भाषार्थः—प्रैषादि अर्थ गम्यमान हों, तो मुहूर्त्तभर से ऊपर के काल के कहने में [स्मे] स्म शब्द उपपद रहते धातु से [लोट्] लोट् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ऊर्ध्वं मुहूर्त्ताद् भवान् कटं करोतु स्म (मुहूर्त्तभर के पश्चात् आप चटाई बनावें), ग्रामं गच्छतु स्म (गांव जावें)॥

यहाँ से 'स्मे लोट्' की अनुवृत्ति ३।३।१६६ तक जायेगी ॥

अधीष्टे च ॥३।३।१६६॥

अधीष्टे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—स्मे लोट्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अधीष्टे गम्यमाने स्मशब्द उपपदे धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—अधीच्छामि भवान् माणवकम् अध्यापयतु। अङ्ग स्म राजन् अग्निहोत्रं जुहुधि ॥

भाषार्थः—[अधीष्टे] अधीष्ट=सत्कार गम्यमान हो, तो [च] भी स्म शब्द उपपद रहते धातु से लोट प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अधीच्छामि भवान् माणवकम् अध्यापयतु (मैं सत्कारपूर्वक इच्छा करता हूं कि आप बालक को पढ़ावें)। अङ्ग स्म राजन् अग्निहोत्रं जुहुधि (हे राजन् ! आप अग्निहोत्र का अनुष्ठान करें) ॥

कालसमयवेलासु तुमुन् ॥३।३।१६७॥

कालसमयवेलासु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०—कालश्च समयश्च वेला च काल…वेलाः, तासु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—काल समय वेला इत्येतषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कालो भोक्तुम्। समयो भोक्तुम्। वेला भोक्तुम् ॥

भाषार्थः—[कालसमयवेलासु] काल, समय, वेला ये शब्द उपपद रहते धातु से [तुमुन्] तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कालो भोक्तुम् (खाने का समय हो गया है)। समयो भोक्तुम्। वेला भोक्तुम् ॥

यहाँ से 'कालसमयवेलासु' की अनुवृत्ति ३।३।१६८ तक जायेगी ॥

लिङ् यदि ॥३।३।१६८॥

लिङ् १।१॥ यदि ७।१॥ अनु०—कालसमयवेलासु, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालादिषूपपदेषु यच्छब्दे चोपपदे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—कालो यद् भुञ्जीत भवान्। समयो यद् भुञ्जीत भवान्। वेला यद् भुञ्जीत भवान् ॥

भाषार्थः—काल, समय, वेला शब्द, और [यदि] यत् शब्द भी उपपद हो, तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—कालो यद् भुञ्जीत भवान् (समय है कि आप भोजन करें)। समयो यद् भुञ्जीत भवान्। वेला यद् भुञ्जीत भवान् ॥

यहाँ से 'लिङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१६९ तक जायेगी ॥

अर्हे कृत्यतृचश्च ॥३।३।१६९॥

अर्हे ७।१॥ कृत्यतृचः १।३॥ च अ० ॥ स०—कृत्याश्च तृच् च कृत्यतृचः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अर्हे=योग्ये कर्त्तरि वाच्ये गम्यमाने वा धातोः कृत्यतृचः प्रत्यया भवन्ति, चकाराद् लिङ् च ॥ उदा०—भवता खलु पठितव्या विद्या, पाठ्या, पठनीया वा। तृच्—पठिता विद्याया भवान्। भवान् विद्यां पठेत् ॥

भाषार्थः—[अर्हे] अर्ह=योग्य कर्त्ता वाच्य हो या गम्यमान हो, तो धातु से [कृत्यतृचः] कृत्यसंज्ञक तथा तृच् प्रत्यय हो जाते हैं, तथा [च] चकार से लिङ् भी होता है ॥ उदा०—कृत्य—भवता खलु पठितव्या विद्या (आप विद्या पढ़ने के योग्य हैं)। तृच्—पठिता विद्याया भवान् (आप विद्या पढ़ने के योग्य हैं)। भवान् विद्यां पठेत् ॥ पठिता की सिद्धि परि० १।१।२ के 'चेता' के समान जानें। शेष सिद्धियाँ पूर्वसूत्रों के अनुसार हैं ॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः ॥३।३।१७०॥

आवश्यकाधमर्ण्ययोः ७।२॥ णिनिः १।१॥ स०—आवश्यकञ्च आधमर्ण्यञ्च आवश्यकाधमर्ण्ये, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अवश्यं भाव आवश्यकम्, द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च (५।१।१३२) इति वुञ् ॥ अर्थः—अवश्यं-भावविशिष्टे आधमर्ण्यविशिष्टे च कर्त्तरि वाच्ये धातोर्णिनिः प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—धर्मोपदेशी, प्रातःस्नायी, अवश्यङ्कारी। आधमर्ण्ये—शतं दायी, सहस्रं दायी, निष्कं दायी ॥

भाषार्थः—[आवश्यकाधमर्ण्ययोः] आवश्यक और आधमर्ण्य=ऋण विशिष्ट कर्त्ता वाच्य हो, तो धातु से [णिनिः] णिनि प्रत्यय होता है ॥ उदा०—धर्मोपदेशी (अवश्य ही धर्म का उपदेश करनेवाला), प्रातःस्नायी (नित्य प्रातः स्नान करनेवाला),

अवश्यङ्कारी (अवश्य करनेवाला)। आधमर्ण्य में—शतं दायी (सौ रुपये का ऋणी), सहस्रं दायी, निष्कं दायी (एक प्रकार के सिक्के का ऋणी)॥

उदाहरण में णिनि प्रत्यय होकर सौ च (६।४।१३) से दीर्घ, हलङ्याब्भ्यो० (६।१।६६) से सु का लोप, तथा नलोपः प्रा०(८।२।७)से नकार लोप हो जायेगा। दायी में आतो युक् चिण्कृतोः (७।३।३३) से युक् आगम भी होता है। सहस्रं शतं आदि में कर्त्तृकर्मणोः कृति (२।३।६५) से कर्म में षष्ठी प्राप्त थी। उसका अकेनोर्भ० (२।३।७०) से निषेध हो गया, तो कर्म में द्वितीया यथाप्राप्त हो गई है। षष्ठी विभक्ति न होने से षष्ठीसमास भी नहीं हुआ॥

यहाँ से 'आवश्यकाधमर्ण्ययोः' की अनुवृत्ति ३।३।१७१ तक जायेगी॥

कृत्याश्च ॥३।३।१७१॥

कृत्याः १।३॥ च अ० ॥ अनु०—आवश्यकाधमर्ण्ययोः धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आवश्यकाधमर्ण्यविशिष्टेऽर्थे धातोः कृत्यसंज्ञकाः प्रत्यया अपि भवन्ति ॥ उदा०—भवता खलु अवश्यं कटः कर्त्तव्यः, करणीयः, कार्यः, कृत्यः। आधमर्ण्ये—भवता शतं दातव्यम्, सहस्रं देयम्॥

भाषार्थः—आवश्यक और आधमर्ण्यविशिष्ट अर्थ हों, तो धातु से [कृत्याः] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय [च] भी हो जाते हैं॥ उदा०—भवता खलु अवश्यं कटः कर्त्तव्यः (आपको अवश्य चटाई बनानी चाहिये)। आधमर्ण्य में—भवता शतं दातव्यम् (आप को सौ रुपये देने हैं)॥

यहाँ से 'कृत्याः' की अनुवृत्ति ३।३।१७२ तक जायेगी॥

शकि लिङ् च ॥३।३।१७२॥

शकि ७।१॥ लिङ् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—कृत्याः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शक्यार्थविशिष्टे धात्वर्थे धातोर्लिङ् प्रत्ययो भवति, चकारात् कृत्याश्च ॥ उदा०—भवान् शत्रुं जयेत्। भवता शत्रुर्जेतव्यः॥

भाषार्थः—[शकि] शक्यार्थ गम्यमान हो, तो धातु से [लिङ्] लिङ् प्रत्यय होता है, तथा [च] चकार से कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भी होते हैं॥ उदा०—भवान् शत्रुं जयेत् (आप शत्रु को जीत सकते हैं)। भवता शत्रुर्जेतव्यः (आपके द्वारा शत्रु जीता जा सकता है)॥

आशिषि लिङ्लोटौ ॥३।३।१७३॥

आशिषि ७।१॥ लिङ्लोटौ १।२॥ स०—लिङ्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशीर्विशिष्टेऽर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्लिङ्लोटौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा०—चिरं जीव्याद् भवान्। चिरं जीवतु भवान्॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वादविशिष्ट अर्थ में वर्त्तमान धातु से [लिङ्-लोटौ] लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—चिरं जीव्याद् भवान् (आप दीर्घ काल तक जीवें)। चिरं जीवतु भवान् ॥ जीव् यासुट् सुट् तिप्=जीव् यास् स् त् रहा। स्कोः संयोगाद्योरन्ते च (८।२।२९) से यास् के स् का लोप हुआ। पुनः इसी सूत्र से सुट् के स् का लोप होकर जीव्यात् बन गया ॥ जीवतु की सिद्धि सूत्र (३।३।१६२) के समान ही जानें ॥

यहाँ से 'आशिषि' की अनुवृत्ति ३।३।१७४ तक जायेगी ॥

क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् ॥३।३।१७४॥

क्तिच्क्तौ १।२॥ च अ० ॥ संज्ञायाम् ७।१॥ स०—क्तिच्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—आशिषि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आशिषि विषये धातोः क्तिच्क्तौ प्रत्ययौ भवतः, समुदायेन चेत् संज्ञा गम्यते ॥ उदा०—तनुतात् (लोट्)= तन्तिः, सनुतात्=सातिः, भवतात्=भूतिः। क्त—देवा एनं देयासुः (लिङ्)= देवदत्तः ॥

भाषार्थः—आशीर्वाद विषय में धातु से [क्तिच्क्तौ] क्तिच् और क्त प्रत्यय [च] भी होते हैं, यदि समुदाय से [संज्ञायाम्] संज्ञा प्रतीत हो ॥

माङि लुङ् ॥३।३।१७५॥

माङि ७।१॥ लुङ् १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ मण्डूकप्लुतगत्या 'लिङ्लोटौ' इत्यप्यनुवर्त्तते ॥ अर्थः—माङ्युपपदे धातोर्लुङ् लिङ्लोट् च प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—मा कार्षीत्। मा हार्षीत्। लिङ्—मा वदेः (विदुर० ३।२५)। लोट—मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि (गी० अ० २। श्लोक ४७) ॥

भाषार्थः—[माङि] माङ् शब्द उपपद हो, तो धातु से [लुङ्] लुङ् लिङ् लोट् प्रत्यय भी होते हैं ॥ उदा०—मा कार्षीत् (मत करे)। मा हार्षीत्। लिङ्—मा वदेः (मत बोले)। लोट्—मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि (तेरा अकर्म में सङ्ग न हो)॥ न माङ्योगे (६।४।७४) से कार्षीत् हार्षीत् में अट् का आगम नहीं हुआ है। शेष सिद्धि परि० १।१।१ में देखें। वदेः की सिद्धि यासुट् आदि होकर पूर्ववत् ही जानें। अस्तु की सिद्धि अस् शप् तिप् होकर एरुः (३।४।८६), तथा अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२।४।७२) लगकर जानें ॥

यहाँ से 'माङि लुङ्' की अनुवृत्ति ३।३।१७६ तक जायेगी ॥

स्मोत्तरे लङ् च ॥३।३।१७६॥

स्मोत्तरे ७।१॥ लङ् १।१॥ च अ० ॥ स०—स्मशब्द उत्तरम् (=अधिकं)

यस्य स स्मोत्तरः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—माङि लुङ्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्मशब्दोत्तरे माङ्युपपदे धातोर्लङ् प्रत्ययो भवति, चकाराल्लुङ् च ॥ उदा०—मा स्म करोत्। मा स्म कार्षीत् । मा स्म हरत्। मा स्म हार्षीत् ॥

भाषार्थः—[स्मोत्तरे] स्म शब्द उत्तर=अधिक है जिस से, उस माङ् शब्द के उपपद रहते धातु से [लङ्] लङ्, तथा [च] चकार से लुङ् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—मा स्म करोत् (वह न करे) । मा स्म कार्षीत् । मा स्म हरत् (वह मत ले जावे) । मा स्म हार्षीत् ॥ सिद्धियों में अट् आगम का अभाव भी पूर्ववत् ही जानें ॥ उत्तर शब्द यहाँ 'अधिक' अर्थ का वाचक है । अतः माङ् से पूर्व स्म का प्रयोग होने पर भी यह विधि होती है ॥

॥ इति तृतीयः पादः ॥

चतुर्थः पादः

धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः ॥३।४।१॥

धातुसम्बन्धे ७।१॥ प्रत्ययाः १।३॥ धातुशब्देनात्र धात्वर्थो लक्ष्यते ॥ स०—धात्वोः (=धात्वर्थयोः) सम्बन्धो धातुसम्बन्धः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अर्थः—धात्वर्थसम्बन्धे सति अयथाकालोक्ताः अपि प्रत्ययाः साधवो भवन्ति ॥ उदा०—अग्निष्टोमयाजी अस्य पुत्रो जनिता । कृतः कटः श्वो भविता ॥

भाषार्थः—[धातुसम्बन्धे] दो धातुओं के अर्थ का सम्बन्ध होने पर भिन्न काल में विहित [प्रत्ययाः] प्रत्यय भी कालान्तर में साधु होते हैं ॥ धातु शब्द से यहाँ धात्वर्थ का ग्रहण किया गया है ॥ वाक्य में साध्य होने के कारण क्रिया की प्रधानता होती है, और कारकों की गौणता होती है । अतः क्रिया को कहनेवाले तिङन्त की प्रधानता, और सुबन्तों की गौणता होती है । इस प्रकार तिङन्त विशेष्य तथा सुबन्त विशेषण बन जाते हैं । और सुबन्त में आये हुए प्रत्यय अयथाकाल होने पर भी तिङन्त के काल में साधु माने जाते हैं ॥ उदाहरण 'अग्निष्टोमयाजी' में यज धातु से भूतकाल में करणे यजः (३।२।८५) से 'णिनि' प्रत्यय हुआ है (वहाँ 'भूते' ३।२।८४ की अनुवृत्ति है) । जनिता में जन धातु से अनद्यतन भविष्यत्काल में लुट्

(३।३।१५) प्रत्यय हुआ है। सो णिनि तथा लुट् भिन्नकालोक्त प्रत्यय हैं, जो कि इस सूत्र से साधु माने गये हैं। अग्निष्टोमयाजी तथा जनिता का विशेषण विशेष्यभाव से यहाँ धात्वर्थ सम्बन्ध है। सो भूतकालोक्त णिनिप्रत्ययान्त अग्निष्टोमयाजी (विशेषण होने से) अपने भूतकाल को छोड़कर 'जनिता' के भविष्यत्काल को ही कहने लगा। अतः अर्थ हुआ—"अग्निष्टोम यज्ञ करेगा, ऐसा पुत्र उसका होगा।" इसी प्रकार कृतः में क्त भूतकाल (३।२।८४) में, तथा भविता में लुट् भविष्यत्काल में है। विशेषण-विशेष्यभाव से दोनों का धात्वर्थ सम्बन्ध है। अतः भिन्नकालोक्त क्त और लुट् भी साधु माने गये। कृतः अपना भूतकाल छोड़कर भविता के भविष्यत्काल को ही कहने लगा। सो अर्थ हुआ—"चटाई बनी यह बात कल होगी"॥

यहाँ से 'धातुसम्बन्धे' की अनुवृत्ति ३।४।६ तक जायेगी॥

क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः ॥३।४।२॥

क्रियासमभिहारे ७।१॥ लोट् १।१॥ लोटः ६।१॥ हिस्वौ १।२॥ वा अ० ॥ च अ० ॥ तध्वमोः ६।२॥ समभिहरणं समभिहारः, भावे (३।३।१८) इत्यनेन घञ् ॥ स०—क्रियायाः समभिहारः क्रियासमभिहारः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः। हि च स्व च हिस्वौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः। त च ध्वम् च तध्वमौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—क्रियासमभिहारे गम्यमाने धात्वर्थसम्बन्धे सर्वस्मिन् काले धातोर्लोट् प्रत्ययो भवति, तस्य च लोटः स्थाने हिस्वौ आदेशौ भवतः। तध्वम्भाविनस्तु लोटः स्थाने वा हिस्वावादेशौ भवतः, पक्षे तध्वमावेव तिष्ठतः॥ उदा०—स भवान् लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इतीमौ लुनीतः। ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इतीमे लुनन्ति। त्वं लुनीहि लुनीहि इति लुनासि। युवां लुनीहि लुनीहि इति युवां लुनीथः। यूयं लुनीहि लनीहि इति यूयं लुनीथ॥ तध्वम्विषये—लोट् मध्यमबहुवचनविषये हिस्वौ वा भवतः। अतः पक्षे—'यूयं लुनीत लुनीत इति यूयं लुनीथ' इत्यवतिष्ठते। अहं लुनीहि लुनीहि इत्येवाहं लुनामि। आवां लुनीहि लुनीहि इति लुनीवः। वयं लुनीहि लुनीहि इति लुनीमः॥ भूतविषये—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति अलावीत्। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्टाम्। ते भवन्तो लुनीहि लुनीहि इति अलाविषुः। त्वं लुनीहि लुनीहि इति अलावीः। युवां लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्टम्। यूयं लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्ट॥ तध्वम् विषये हिस्वौ वा भवतः। अतः पक्षे 'त' अवतिष्ठते—यूयं लुनीत लुनीत इति यूयम् अलाविष्ट। अहं लुनीहि लुनीहि इति अलाविषम्। आवां लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्व। वयं लुनीहि लुनीहि इति अलाविष्म॥ भविष्यद्विषये— स भवान् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यति। तौ भवन्तौ लुनीहि लुनीहि इति लविष्यतः। ते भवन्तो

लुनीहि लुनीहि इति लविष्यन्ति । त्वं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यसि । युवाम् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यथः । यूयं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यथ ॥ तध्वम् विषये पक्षे 'त' अवतिष्ठते—यूयं लुनीत लुनीत इति लविष्यथ । अहं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यामि । आवां लुनीहि लुनीहि इति लविष्यावः । वयं लुनीहि लुनीहि इति लविष्यामः ॥ **स्वादेशविषये**—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीते । तौ भवन्तौ अधीष्व अधीष्व इतीमावधीयाते । ते भवन्तोऽधीष्व अधीष्व इतीमे अधीयते। त्वमधीष्व अधीष्व इत्यधीषे । युवामधीष्व अधीष्व इत्यधीयाथे । यूयम् अधीष्व अधीष्व इति अधीध्वे । तध्वम्विषये हिस्वौ विकल्प्येते, अतोऽत्र पक्षे ध्वम्—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अधीध्वे । अहमधीष्व अधीष्व इत्यधीये । आवामधीष्व अधीष्व इत्यधीवहे । वयमधीष्वाऽधीष्व इत्यधीमहे । **भूतविषये**—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्यगीष्ट । एवं सर्वत्र सर्वेषु पुरुषेषु वचनेषु चोदाहार्यम् । ध्वम्विषये पक्षे—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अध्यगीढ्वम् । **भविष्यद्विषये**—स भवान् अधीष्व अधीष्व इति अध्येष्यते । एवं सर्वत्र सर्वेषु पुरुषेषु वचनेषु चोदाहार्यम् । ध्वम्विषये पक्षे—यूयमधीध्वमधीध्वमिति अध्येष्यध्वे ॥

भाषार्थः—[क्रियासमभिहारे] **क्रियासमभिहार=क्रिया का पौनःपुन्य गम्यमान हो, तो धातु से धात्वर्थ सम्बन्ध होने पर सब कालों में** [लोट्] **प्रत्यय हो जाता है, और उस** [लोटः] **लोट् के स्थान में (सब पुरुषों तथा वचनों में)** [हिस्वौ] **हि और स्व आदेश नित्य होते हैं,** [च] **तथा** [तध्वमोः] **त ध्वम् भावी लोट् के स्थान में** [वा] **विकल्प से हि स्व आदेश होते हैं, पक्ष में त ध्वम् ही रहते हैं ॥**

यहाँ परस्मैपदी धातुओं के लोट् को 'हि' आदेश, तथा आत्मनेपदी धातुओं के लोट् को स्व आदेश होता है । सो कैसे ? यह व्याख्यान से द्वितीयावृत्ति आदि में पता लगेगा ॥

तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः (३।४।१०१) **से थस् को त परस्मैपद में होता है । उस 'त' का प्रकृत सूत्र में ग्रहण है । सो इस सूत्र से 'त' को परस्मैपद में विकल्प से हि आदेश होगा । पक्ष में 'त' का रूप भी रहेगा । ध्वम् आत्मनेपद का प्रत्यय है, सो आत्मनेपद में विकल्प से 'स्व' आदेश होकर पक्ष में ध्वम् का रूप भी रहेगा ॥ क्रियासमभिहारता दिखाने के लिए यहाँ सर्वत्र द्वित्व करके 'लुनीहि, लुनीहि' ऐसा दिखाया है । लुनीहि लुनीहि या अधीष्व अधीष्व के पश्चात् 'इत्येवायं लुनाति' या इत्येवायमधीते' इत्यादि का अनुप्रयोग यह दर्शाने के लिये किया गया है कि लुनीहि लुनीहि आदि किस काल किस पुरुष या किस वचन के प्रयोग हैं, तथा धात्वर्थ का कैसे सम्बन्ध है ॥** उदा०—स भवान् लुनीहि लुनीहि इत्येवायं लुनाति **(वह आप बार बार काटते हैं) । इसी प्रकार सब पुरुषों एवं वचनों में संस्कृतभाग के अनुसार**

उदाहरण जानें ।। भूतविषय में—स भवान् लुनीहि लुनीहि इत्यलावीत् (उस आपने बार बार काटा) । इसी प्रकार सब पुरुषों एवं वचनों में पूर्ववत् जानें ॥ भविष्यद्विषय में—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति लविष्यति (वह आप बार बार काटेंगे)। इसी प्रकार औरों में जानें ॥

स्व आदेश विषय में—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्येवायमधीते (वह आप बार-बार पढ़ते हैं) । इसी प्रकार औरों में जान लें ।। भूतविषय में—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्यगीष्ट (उस आपने बार बार पढ़ा) । इसी प्रकार पूर्ववत् औरों में जानें ।। भविष्यद्विषय में—स भवान् अधीष्व अधीष्व इत्यध्येष्यते (वह आप बार बार पढ़ेंगे) ।।

यह लोट् प्रत्यय सब लकारों का अपवाद है । अतः सब लकारों के सब पुरुषों के सब वचनों में इनके उदाहरण समझने चाहियें । सम्पूर्ण उदाहरण दिखाना कठिन है । हि स्व आदेश होकर रूप तो एक ही जैसे बनेंगे, सो समझ लें ।। सिद्धि में भी कुछ विशेष नहीं है । 'लू लोट्' लोट् को हि आदेश होकर 'लू हि' रहा । शेष सिद्धि परि० १।३।१४ में देख लें । अधि इङ् स्व, आदेशप्रत्यययो: (८।३।५९) से षत्व, एवं सवर्ण दीर्घ होकर अधीष्व बन गया ।।

यहां से 'लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः' की अनुवृत्ति ३।४।३ तक जायेगी ।।

समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ।।३।४।३।।

समुच्चये ७।१।। अन्यतरस्याम् अ० ।। अनु०—लोट् लोटो हिस्वौ वा च तध्वमोः, धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—समुच्चीयमानक्रियावचनाद् धातोः धातुसम्बन्धे लोट् प्रत्ययो विकल्पेन भवति, तस्य च लोटः स्थाने हिस्वावादेशौ भवतः, तध्वंभाविनस्तु वा हिस्वौ भवतः ।। उदा०—भ्राष्ट्रमट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवायमटति । एवं सर्वेषु पुरुषेषु वचनेषु चोदाहार्यम् । तभाविनस्तु मध्यमपुरुषबहुवचनपक्षे—भ्राष्ट्रमटत, मठमटत, खदूरमटत, स्थाल्यपिधानमटत इत्येवं यूयमटथ । अन्यतरस्यां ग्रहणेन पक्षे सर्वे लकारा: स्वस्वविषये भवन्ति । तद्यथा—भ्राष्ट्रमटति, मठमटति, खदूरमटति, स्थाल्यपिधानमटति इत्येवायमटति । भविष्यद्विषये—भ्राष्ट्रमट,मठमट,खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवायमटिष्यति । पक्षे—भ्राष्ट्रमटिष्यति, मठमटिष्यति इत्यादयः प्रयोगा ज्ञेयाः । एवं भूतविषयेऽपि बोद्धव्यम् ।।

स्वादेशविषये—छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरुक्तमधीष्व इत्येवायमधीते ।

एवं सर्वेषु लकारेषु सर्वेषु पुरुषेषु सर्वेषु च वचनेषूदाहार्यम् । अन्यतरस्यां ग्रहणेन पक्षे सर्वे लकारा भवन्ति । तेन छन्दोऽधीते, व्याकरणमधीते, निरुक्तमधीते इत्येवायमधीते इत्यादयोऽपि बोद्धव्याः ।। ध्वम्विषयेऽपि पक्षे–छन्दोऽधीध्वम्, व्याकरणमधीध्वम्, निरुक्तमधीध्वम् इत्येवं यूयमधीध्वे इत्यादयः सर्वेषु लकारेषु ज्ञेयाः । एवं वेदानधीष्व, गुरुं सेवस्व, मृदु वद, प्रातः स्नाहि इत्येवायं करोति, करिष्यति, अकार्षीद् वा इत्यादिकमपि ज्ञेयम् ।।

भाषार्थः––[समुच्चये] समुच्चीयमान क्रियाओं को कहनेवाली धातु से लोट् प्रत्यय [अन्यतरस्याम्] विकल्प से होता है, और उस लोट् के स्थान में हि और स्व आदेश होते हैं, पर त ध्वम् भावी लोट् को विकल्प से हि स्व आदेश होते हैं । पक्ष में त ध्वम् की ही श्रुति होती है ।।

जहाँ अनेक क्रियाओं को कहा जाये कि यह भी कर, वह भी कर, वह क्रियाओं का समुच्चय होता है ।। हि आदेश परस्मैपद में, तथा स्व आदेश आत्मनेपद में होगा । यह सब पूर्ववत् ही जानें ।। उदा०—भ्राष्ट्रमट, मठमट, खदूरमट, स्थाल्यपिधानमट इत्येवायमटति (भाड़ पर जाता है, मठ को जाता है, कमरे में जाता है, बटलोई के ढक्कन तक जाता है) । इसी प्रकार सारे उदाहरण संस्कृतभाग के अनुसार जान लें ।। स्व आदेश विषय में—छन्दोऽधीष्व, व्याकरणमधीष्व, निरुक्तमधीष्व इत्येवायमधीते (वेद पढ़ता है, व्याकरण पढ़ता है, निरुक्त पढ़ता है, यह सब पढ़ता है) । इसी प्रकार अन्य उदाहरण जान लें ॥ विकल्प से लोट् विधान करने से यहाँ पक्ष में सब लकार होंगे । लोट् भी कालत्रय में होता है । ये सब उदाहरण स्वयं जान लेने चाहियें, विस्तारभय से सारे नहीं दिखाये ।।

सिद्धि में अट धातु से आये लोट् प्रत्यय को 'हि' आदेश होकर, पुनः अतो हेः (६।४।१०५) से लुक् हो गया है ।।

यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥३।४।४॥

यथाविधि अ० ।। अनुप्रयोगः १।१।। पूर्वस्मिन् ७।१।। अनु०—धातोः ।। अर्थः—पूर्वस्मिन् लोड्विधाने यथाविधि=यस्माद् धातोर्लोड् विधीयते, तस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्त्तव्यः ।। उदा०—स भवान् लुनीहि लुनीहि इति लुनाति, इत्यत्र 'लुनातीति' अनुप्रयुज्यते । पर्यायवाची छिनत्तीति नानुप्रयुज्यते । एवं सर्वत्र ।।

भाषार्थः—[पूर्वस्मिन्] पूर्व के लोट्विधायक क्रियासम० (३।४।२) सूत्र में [यथाविधि]यथाविधि अर्थात् जिस धातु से लोट् विधान किया हो, पश्चात् उसी धातु का [अनुप्रयोगः] अनुप्रयोग होता है ।। यथा लुनीहि में लू धातु से लोट् विहित

है, तो पश्चात् लुनाति का ही अनुप्रयोग होगा, पर्यायवाची 'छिनत्ति' का नहीं। ऐसा सर्वत्र जानें ॥

यहाँ से 'अनुप्रयोग:' की अनुवृत्ति ३।४।५ तक जायेगी ॥

समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥३।४।५॥

समुच्चये ७।१॥ सामान्यवचनस्य ६।१॥ स०—उच्यतेऽनेनेति वचनः, सामान्यस्य वचनः सामान्यवचनः, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—अनुप्रयोगः, धातोः ॥ अर्थः—समुच्चये सामान्यवचनस्य धातोरनुप्रयोगः कर्त्तव्यः ॥ उदा० – ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्यभ्यवहरति। वेदानधीष्व, सत्यं वद, अग्निहोत्रं जुहुधि, सत्पुरुषान् सेवस्व, एवं धर्मं करोति करिष्यति अकार्षीद् वा ॥

भाषार्थ:—[समुच्चये] समुच्चय में अर्थात् समुच्चयेऽन्य० (३।४।३) से जहाँ लोट् विधान किया है, वहाँ [सामान्यवचनस्य] सामान्यवचन धातु का अनुप्रयोग होता है ॥ समुच्चय होने से उदाहरण में भुङ्क्ष्व पिब इत्यादि सभी धातुओं का अनुप्रयोग होना चाहिये था, सामान्यवचन (अर्थात् किसी एक ऐसी धातु का अनुप्रयोग जिसमें समुच्चीयमान सारी धातुओं का अर्थ हो) धातु का अनुप्रयोग विधान कर दिया है ॥ उदा०—ओदनं भुङ्क्ष्व, सक्तून् पिब, धानाः खाद इत्यभ्यवहरति (चावल खाता है, सत्तू पीता है, धान खाता है, यह सब खाता है)। वेदानधीष्व, सत्यं वद, अग्निहोत्रं जुहुधि सत्पुरुषान् सेवस्व, एवं धर्मं करोति, करिष्यति, अकार्षीद् वा (वेद पढ़ता है, सत्य बोलता है, हवन करता है, सत्पुरुषों का सेवन करता है, इस प्रकार धर्म करता है, करेगा, या किया) ॥ उदाहरण में अभ्यवहरति का अर्थ–खाना, पीना, चूसना, चाटना आदि सभी सामान्यरूप से है, सो उसका अनुप्रयोग कर दिया, तो भुङ्क्ते पिबति इत्यादि के अलग-अलग अनुप्रयोग की आवश्यकता नहीं रही। इसी प्रकार करोति क्रिया सामान्य है। वह सभी क्रियाओं में रहती है, सो अधीते वदति का अलग-अलग अनुप्रयोग न करके करोति सामान्य का अनुप्रयोग कर दिया ॥

छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥३।४।६॥

छन्दसि ७।१॥ लुङ्लङ्लिटः १।३॥ स०—लुङ्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातुसम्बन्धे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अन्यतरस्यामिति चानुवर्त्तते मण्डूकप्लुतगत्या ॥ अर्थः—वेदविषये धात्वर्थसम्बन्धे धातोरन्यतरस्यां कालसामान्ये लुङ् लङ् लिट् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—देवो देवेभिरागमत् (ऋ० १।१।५), अत्र वर्त्तमाने लुङ्। लङ्—शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः(यजु० १६।८)। लिट्—अहम्नहिमन्व-

पस्ततर्द (ऋ० १।३२।१)। ततर्द इत्यत्र वर्त्तमानकाले लिट्। त्वष्टाऽस्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष (ऋ० १।३२।२)। अत्रापि वर्त्तमानकाले लिट्। पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति (अथ० १०।८।३२)। ममार इत्यत्रापि वर्त्तमानकाले लिट्। अद्या ममार स ह्यः समान (ऋ० १०।५५।५)। पक्षे—अद्य म्रियते। स दाधार पृथिवीम् (यजु० १३।४)॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में धात्वर्थ सम्बन्ध होने पर विकल्प से [लुङ्लङ्लिटः] लुङ्, लङ् तथा लिट् प्रत्यय होते हैं॥ लुङ् सामान्य भूत, लङ् अनद्यतनभूत, तथा लिट् परोक्षभूतकाल में होते हैं, परन्तु वेद में ये लकार सामान्य काल में विकल्प से हो जाते हैं॥

विशेषः—वेद के अर्थ समझने में यह सूत्र विशेष महत्त्व का है। लुङ् लङ् लिट् लकार देखकर भूतकाल का ही अर्थ वेद में नहीं लिया जा सकता। परन्तु ऊपर दिये उदाहरणों के समान वर्त्तमान भविष्यत् भूत सभी अर्थ निकलते हैं॥

यहाँ से 'छन्दसि' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायेगी॥

लिङर्थे लेट्॥३।४।७॥

लिङर्थे ७।१॥ लेट् १।१॥ स०—लिङोऽर्थः लिङर्थः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः॥ अनु०—छन्दसि, धातोः प्रत्ययः, परश्च। अत्राप्यन्यतरस्यामभिसम्बध्यते॥ अर्थः—छन्दसि विषये धातोर्लिङर्थेऽन्यतरस्यां लेट् प्रत्ययो भवति॥ हेतुहेतुमद्भावो विध्यादयश्च (३।३।१५६, १६१) लिङोऽर्थाः॥ उदा०—जोषिषत्, तारिषत्, मन्दिषत्। धियो यो नः प्रचोदयात् (ऋ० ३।६२।१०)। सविता धर्मं साविषत् (यजु० ६।५; १८।३०)॥

भाषार्थः—वेदविषय में [लिङर्थे] लिङ् के अर्थ में धातु से विकल्प से [लेट्] लेट् प्रत्यय होता है, और वह परे होता है॥

लेट् लकार में सिद्धि विस्तार से परि० ३।१।३४ में देखें। प्र पूर्वक 'चुद प्रेरणे' ण्यन्त धातु से लेट् में प्रार्थना अर्थ में पूर्ववत् प्रचोदयात् की सिद्धि जानें। 'षू प्रेरणे' से साविषत् बनेगा॥

यहाँ से 'लेट्' की अनुवृत्ति ३।४।८ तक जायेगी॥

उपसंवादाशङ्कयोश्च॥३।४।८॥

उपसंवादाशङ्कयोः ७।२॥ च अ०॥ स०—उपसंवादश्च आशङ्का च उपसंवादाशङ्के, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—लेट्, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—उपसंवादः=पणबन्धः, व्यवहारे परस्परं भाषणम्। कारणं दृष्ट्वा कार्यस्य

अनुमानम् आशङ्का । उपसंवादे आशङ्कायाञ्च गम्यमानायां छन्दसि विषये धातोर्लेट् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा (यजु० ३।५०)। आशङ्कायाम्—नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (ऋ० खिल० १०।१०६।१)॥

भाषार्थः—[उपसंवादाशङ्कयोः] उपसंवाद तथा आशङ्का गम्यमान हों, तो [च] भी धातु से वेदविषय में लेट् प्रत्यय होता है ॥ उपसंवाद=पणबन्ध को कहते हैं, अर्थात् 'तू ऐसा करे तो मैं भी ऐसा करूं' ऐसा व्यवहार में परस्पर कहना ॥ उदा०—निहारञ्च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा (तू मुझको क्रेतव्य वस्तु दे, तो मैं तुझको भी दूं) ॥ हरासि=हर प्रयच्छ [मे] मह्यम् [निहारम्] पदार्थ-मूल्यम् [नि] नितराम् [हराणि] प्रयच्छानि ॥ (देखो—द० भा० यजु० ३।५०)॥ आशङ्का में—नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (कुटिल आचरण करते हुए कहीं हम नरक में न जा गिरें)॥ निहारञ्च हरासि मे उदाहरण में उपसंवाद गम्यमान है। अतः हृ धातु से लेट् लकार हो गया है ॥ सिद्धि परि० ३।१।३४ में पठासि के समान जानें ॥ इसी प्रकार नेज्जिह्मायन्तो (नि० १।११)=कुटिल आचरण से नरकपात की आशङ्का हो रही है। सो पत धातु से लेट् लकार होकर 'पताम' बन गया है । सिद्धि उत्तम पुरुष में पूर्ववत् समझें ॥

तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैकध्यैन्-
शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः ॥३।४।९॥

तुमर्थे ७।१॥ से···वेनः १।३॥ स०—तुमुनः अर्थः तुमर्थः, षष्ठीतत्पुरुषः । सेसेन० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये तुमर्थे धातोः से, सेन्, असे, असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ तुमर्थो भावः ॥ उदा०—से—वक्षे रायः। सेन्—ता वामेषे रथानाम् (ऋ० १।६६।३)। असे, असेन्—क्रत्वे दक्षाय जीवसे (अथ० ६।१९।२)। जीवसे, स्वरे विशेषः । क्से—प्रेषे भगाय (यजु० ५।७)। कसेन्—गवामिव श्रियसे (ऋ० ५।५९।३)। अध्यै, अध्यैन्—कर्मण्युपाचरध्यै । उपाचरध्यै । स्वरे विशेषः। कध्यै—इन्द्राग्नी आहुवध्यै (यजु० ३।१३)। कध्यैन्—श्रियध्यै । शध्यै—पिबध्यै (ऋ० ७।९२।२)। शध्यैन्—सह मादयध्यै (यजु० ३।१३) तवै—सोममिन्द्राय पातवै । तवेङ्—दशमे मासि सूतवे (ऋ० १०।१८४।३)। तवेन्—स्वर्देवेषु गन्तवे (यजु० १५।५५), कर्त्तवे, हर्त्तवे ॥

भाषार्थः—वेदविषय में [तुमर्थे] तुमर्थ में धातु से [सेसे···तवेनः] से, सेन् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ तुमुन् प्रत्यय भाव में होता है, सो तुमर्थ का अर्थ हुआ भाव । अतः भाव में ये सब प्रत्यय होंगे । सिद्धियां सब परि० १।३।३८ के जीवसे के समान

जान लें ॥ से, सेन्, अध्यै, अध्यैन् आदि प्रत्ययों में केवल स्वर का भेद है। नित् करने से ञ्नित्यादिर्नित्यम् (६।१।१९१) से आद्युदात्त होगा। अन्यत्र प्रत्ययस्वर (३।१।३) होगा। षूङ् धातु से सूतवे प्रयोग में तवेङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुणाभाव भी होगा ॥

यहाँ से 'तुमर्थे' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायेगी ॥

प्रयै रोहिष्यै अव्यथिष्यै ॥३।४।१०॥

प्रयै अ० ॥ रोहिष्यै अ० ॥ अव्यथिष्यै अ० ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै इत्येते शब्दास्तुमर्थे छन्दसि विषये निपात्यन्ते ॥ प्रयै इति प्र पूर्वाद् या धातोः कै प्रत्ययो निपात्यते, प्रयातुं=प्रयै (ऋ० १।१४२।६)। रोहिष्यै इति रुह धातोः इष्यै प्रत्ययः, रोढुं=रोहिष्यै। अव्यथिष्यै इति नञ्पूर्वाद् व्यथ धातोः इष्यै प्रत्ययः, अव्यथितुम्=अव्यथिष्यै ॥

भाषार्थः—[प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै] प्रयै, रोहिष्यै, अव्यथिष्यै ये शब्द वेदविषय में तुमर्थ में निपातन किये जाते हैं॥ प्र पूर्वक या धातु से कै प्रत्यय निपातन करके प्रयै बनाया है। 'कै' के कित् होने से या धातु के 'आ' का लोप भी आतो लोप इटि च (६।४।६४) से हो जायेगा। रुह धातु से 'इष्यै' प्रत्यय करके रोहिष्यै बना है। नञ् पूर्वक व्यथ धातु से इष्यै प्रत्यय करके अव्यथिष्यै रूप बना है। सर्वत्र कृन्मे० (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर पूर्ववत् सु का लुक् होगा ॥

दृशे विख्ये च ॥३।४।११॥

दृशे अ० ॥ विख्ये अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—दृशे विख्ये इत्येतौ शब्दौ तुमर्थे निपात्येते वैदिके प्रयोगे ॥ 'दृशे' इत्यत्र दृश् धातोः के प्रत्ययः। दृशे विश्वाय सूर्यम् (यजु० ७।४१)। विख्ये' इत्यत्र विपूर्वात 'ख्यां' धातोः के प्रत्ययः। विख्ये त्वा हरामि ॥

भाषार्थः—[दृशे विख्ये] दृशे विख्ये ये दो शब्द [च] भी वेदविषय में तुमुन् के अर्थ में निपातन किये जाते हैं। दृशिर् एवं वि पूर्वक ख्या धातु से 'के' प्रत्यय निपातन करके दृशे विख्ये ये शब्द सिद्ध होंगे ॥ ख्या का आकार लोप पूर्ववत् ही होगा। पूर्ववत् अव्यय संज्ञा होकर सु का लुक् भी सिद्धि में जानें ॥ द्रष्टुम् के अर्थ में दृशे, तथा विख्यातुम् के अर्थ में विख्ये बना है ॥

शकि णमुल्कमुलौ ॥३।४।१२॥

शकि ७।१॥ णमुलमुलौ १।२॥ स०—णमु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शक्नोति धातावुपपदे तुमर्थे छन्दसि

विषये धातोर्णमुल्कमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्, विभक्तुमित्यर्थः । कमुल्—अपलुपं नाशक्नुवन्, अपलोप्तुमित्यर्थः ॥

भाषार्थः—[शकि] शक्नोति धातु उपपद हो, तो वेदविषय में तुमर्थ में धातु से [णमुल्कमुलौ] णमुल् तथा कमुल प्रत्यय होते हैं ॥ णमुल में णित् वृद्धि के लिये, तथा कमुल् में कित् गुण-वृद्धि के प्रतिषेधार्थ है ॥ वि पूर्वक भज धातु से णमुल् होकर विभज् णमुल् = विभाज् अम् = विभाजम्, तथा अप पूर्वक लुप धातु से अपलुपं बना है ॥ सिद्धि में पूर्ववत् मकारान्त मानकर अव्यय संज्ञा होकर 'सु' का लुक् होगा ॥

ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥३।४।१३॥

ईश्वरे ७।१॥ तोसुन्कसुनौ १।२॥ स०—तोसु० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—तुमर्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—ईश्वरशब्द उपपदे छन्दसि विषये तुमर्थे धातोस्तोसुन्कसुनौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०— ईश्वरोऽभिचरितोः, अभिचरितुमित्यर्थः । ईश्वरो विलिखः, विलेखितुमित्यर्थः । ईश्वरो वितृदः ॥

भावार्थः—[ईश्वरे] ईश्वर शब्द के उपपद रहते तुमर्थ में वेदविषय में धातु से [तोसुन्कसुनौ] तोसुन् कसुन् प्रत्यय होते हैं ॥ कसुन् में कित् गुण वृद्धि प्रतिषेधार्थ है ॥ सिद्धि में क्त्वातोसुन्० (१।१।३९) से अव्यय संज्ञा होकक सु का लुक् पूर्ववत् होगा ॥ अभि चर् तोस् = अभि चर् इट् तोस् = अभिचरितोः बना है । वि लिख् कसुन् = वि लिख् अस् = विलिखः बन गया ॥

कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः ॥३।४।१४॥

कृत्यार्थे ७।१॥ तवैकेन्केन्यत्वनः १।३॥ स०—कृत्यस्य अर्थः कृत्यार्थः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः । तवै च केन् च केन्यश्च त्वन् च तवै···त्वनः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ कृत्यानामर्थौ भावकर्मणी, तयोरेव कृत्य० (३।४।७०) इत्यनेन ॥ अर्थः—छन्दसि विषये कृत्यार्थेऽभिधेये धातोः तवै केन् केन्य त्वन इत्येते प्रत्यया भवन्ति ॥ उदा०—तवै—अन्वेतवै, अन्वेतव्यमित्यर्थः । परिस्तरितवै, परिस्तरितव्यमित्यर्थः । परिधातवै, परिधातव्यमित्यर्थः । केन्—नावगाहे, नावगाहितव्यमित्यर्थः । केन्य—दिदृक्षेण्यः (तै० ब्रा० २।७।६।४), शुश्रूषेण्यः । दिदृक्षितव्यं शुश्रूषितव्यमित्यर्थः । त्वन—कर्त्वं हवि (अथ० १।४।३), कर्त्तव्यमित्यर्थः ॥

भाषार्थः—[कृत्यार्थे] कृत्यार्थ में = तयोरेव कृत्य० (३।४।७०) से भाव कर्म में वेदविषय में धातु से [तवैकेन्केन्यत्वनः] तवै, केन्, केन्य, त्वन् ये चार प्रत्यय होते हैं ॥

विवृक्षेण्यः शुश्रूषेण्यः में दिवृक्ष शुश्रूष सन्नन्त धातुओं से केन्य प्रत्यय होकर, सु आकर रुत्व विसर्जनीय हुआ है। तब केन् प्रत्ययान्त की अव्ययसंज्ञा पूर्ववत् कृन्मेजन्तः (१।१।३८) से होगी ॥ सिद्धियों में कुछ भी विशेष नहीं है ॥

यहाँ से 'कृत्यार्थे' की अनुवृत्ति ३।४।१५ तक जायेगी ॥

अवचक्षे च ॥३।४।१५॥

अवचक्षे अ० ॥ च अ० ॥ अनु०—कृत्यार्थे, छन्दसि, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—छन्दसि विषये कृत्यार्थे अवपूर्वात् चक्षिङ् धातोः शेन प्रत्ययो निपात्यते। अवचक्षे इति (यजु० १७।६३), अवख्यातव्यमित्यर्थः ॥

भाषार्थः—कृत्यार्थ अभिधेय हो, तो वेदविषय में अव पूर्वक चक्षिङ् धातु से शेन प्रत्ययान्त [अवचक्षे] अवचक्षे शब्द [च] भी निपातन किया जाता है ॥ शेन् के शित् होने से उसकी सार्वधातुकसंज्ञा होकर चक्षिङः ख्याञ् (२।४।५४) से चक्षिङ् को ख्याञ् आदेश नहीं होता ॥ पूर्ववत् अव्ययसंज्ञादि होकर सिद्धि जानें ॥

भावलक्षणे स्थेण्कृञ्वदिचरिहुतमिजनिभ्यस्तोसुन् ॥३।४।१६॥

भावलक्षणे ७।१॥ स्थेण्···भ्यः ५।३॥ तोसुन् १।१॥ स०—लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, भावस्य लक्षणं भावलक्षणम्, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः। स्थेण्० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—छन्दसि, तुमर्थे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भावलक्षणे वर्त्तमानेभ्यः स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इत्येतेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये तुमर्थे तोसुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—आ संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति। इण्—पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः (का० सं० ८।३)। कृञ्—पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः। वदि—पुरा प्रवदितोरग्नौ प्रहोतव्यम्। चरि—पुरा प्रचरितोराग्नीध्रे होतव्यम्। हु—आ होतोरप्रमत्तस्तिष्ठति। तमि—आ तमितोरासीत। जनि—आ विजनितोः सम्भवामेति ॥

भाषार्थः—[भावलक्षणे] भाव=क्रिया के लक्षण में वर्त्तमान [स्थेण्···भ्यः] स्था, इण् आदि धातुओं से वेदविषय में तुमर्थ में [तोसुन्] तोसुन् प्रत्यय होता है ॥ उदेतोः की सिद्धि परि० १।१।३९ में दिखा आये हैं। सो सब में वही प्रकार जानना चाहिये॥ सम्पूर्वक स्था धातु से 'संस्थातोः' बना है। 'आ संस्थातोर्वेद्यां सीदन्ति' का अर्थ है यज्ञ की समाप्तिपर्यन्त बैठते हैं। सो समाप्तिपर्यन्त से बैठना क्रिया लक्षित हो रही है। अतः स्था धातु भावलक्षण=क्रिया के लक्षण में वर्त्तमान है। इस प्रकार अन्य उदाहरणों में भी भावलक्षण है ॥

यहाँ से 'भावलक्षणे' की अनुवृत्ति ३।४।१७ तक जायेगी ॥

सृपितृदोः कसुन् ॥३।४।१७॥

सृपितृदोः ६।२॥ कसुन् १।१॥ स०—सृपि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—भावलक्षणे, छन्दसि, तुमर्थे, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—भावलक्षणे वर्त्तमानाभ्यां सृपि तृद इत्येताभ्यां धातुभ्यां छन्दसि विषये तुमर्थे कसुन् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन् (यजु० १।२८)। पुरा जत्रुभ्य आतृदः (ऋ० ८।१।१२) ॥

भाषार्थः—भावलक्षण में वर्त्तमान [सृपितृदोः] सृपि तथा तृद धातुओं से वेदविषय में तुमर्थ में [कसुन्] कसुन् प्रत्यय होता है ॥ परि० १।१।३९ में विसृपः की सिद्धि दिखाई है, सो आतृदः में भी उसी प्रकार जानें। कसुन् में कित्करण गुणप्रतिषेधार्थ है ॥

अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥३।४।१८॥

अलङ्खल्वोः ७।२॥ प्रतिषेधयोः ७।२॥ प्राचाम् ६।३॥ क्त्वा १।१॥ स०—अलं० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रतिषेधवाचिनोः अलं खलु इत्येतयोरुपपदयोः धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन ॥ उदा०—अलं कृत्वा, अलं बाले रुदित्वा। खलु कृत्वा। अन्येषां मते क्त्वा न भवति—अलं करणेन, अलं रोदनेन। खलु करणेन इत्येव भवति ॥

भाषार्थः—[प्रतिषेधयोः] प्रतिषेधवाची [अलङ्खल्वोः] अलं तथा खलु शब्द उपपद रहते [प्राचाम्] प्राचीन आचार्यों के मत में धातु से [क्त्वा] क्त्वा प्रत्यय होता है। अन्यों के मत में नहीं होता ॥ उदा०—अलं कृत्वा (मत कर)। अलं बाले रुदित्वा (हे बालिके, मत रो)। खलु कृत्वा (मत कर)। अन्यों के मत में क्त्वा न होकर अलं करणेन (भाव में ३।३।११५ से ल्युट्) आदि प्रयोग बनेंगे ॥ सिद्धि परि० १।१।३९ के चित्वा जित्वा की तरह जानें ॥

यहाँ से 'क्त्वा' की अनुवृत्ति ३।४।२४ तक जायेगी ॥

उदीचां माङो व्यतीहारे ॥३।४।१९॥

उदीचाम् ६।३॥ माङः ५।१॥ व्यतीहारे ७।१॥ अनु०—क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—व्यतीहारेऽर्थे वर्त्तमानाद् मेङ् धातोः उदीचामाचार्याणां मतेन क्त्वा प्रत्ययो भवति ॥ अपूर्वकालत्वादप्राप्तोऽयं (३।४।२०) क्त्वा विधीयते ॥ उदा०—अपमित्य याचते। अन्येषां मते यथाप्राप्तं—याचित्वा अपमयते इति भवति ॥

भाषार्थः—[व्यतीहारे] व्यतीहार अर्थवाली [माङः] मेङ् धातु से [उदीचाम्] उदीच्य आचार्यों के मत में क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ मेङ् को आदेच उपदेशे० (६।१।४४) से आत्व करके, सूत्र में 'माङ्' निर्देश किया है ॥

समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले (३।४।२१) से पूर्वकालिक क्त्वा प्रत्यय प्राप्त था। अपूर्वकालिक क्रिया से भी क्त्वा हो जाये, अतः यह सूत्र बनाया है ॥ उदाहरण में 'भिक्षुक पहले मांगता है, पश्चात् परस्पर विनिमय करता है', सो विनिमय क्रिया अपूर्वकालिक है ॥ उदीचाम् कहा है, अतः अन्य आचार्यों के मत में यथाप्राप्त पूर्वकालिक धातु से भी क्त्वा होकर याचित्वा अपमयते बनेगा। अर्थ इसका पूर्ववत् ही होगा ॥ अपमित्य में मयतेरिदन्यतरस्याम् (६।४।७०) से 'मा' के आ को इत्व हुआ है। शेष सिद्धि परि० १।१।५५ के प्रकृत्य के समान जानें ॥

परावरयोगे च ॥३।४।२०॥

परावरयोगे ७।१॥ च अ० ॥ स०—परश्च अवरश्च परावरौ, ताभ्यां योगः परावरयोगः, तस्मिन्, द्वन्द्वगर्भस्तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परेणावरस्य (=पूर्वस्य) योगे गम्यमाने, अवरेण च (=पूर्वेण च) परस्य योगे गम्यमाने धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—परेण—अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः। अवरेण—अतिक्रम्य तु पर्वतं नदी स्थिता ॥

भाषार्थः—[परावरयोगे] जब पर का अवर (=पूर्व) के साथ, या पूर्व का पर के साथ योग गम्यमान हो, तो [च] भी धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ उदा०—अप्राप्य नदीं पर्वतः स्थितः (पर भाग में स्थित नदी से पूर्व पर्वत स्थित है)। अवर के द्वारा—अतिक्रम्य तु पर्वतं नदी स्थिता (पर्वत के पश्चात् पर भाग में नदी स्थित है) ॥ प्र पूर्वक आप्लृ तथा अति पूर्वक क्रम धातु से क्त्वा प्रत्यय होकर प्राप्य एवं अतिक्रम्य की सिद्धि पूर्ववत् जानें। प्राप्य बनाकर पुनः नञ् समास होकर अप्राप्य बनेगा ॥

समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले ॥३।४।२१॥

समानकर्त्तृकयोः ७।२॥ पूर्वकाले ७।१॥ स०—समानः कर्त्ता ययोः तौ समानकर्त्तृकौ, तयोः, बहुव्रीहिः। पूर्वश्चासौ कालश्च पूर्वकालः, तस्मिन्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—समानकर्त्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले धात्वर्थे वर्त्तमानाद् धातोः क्त्वा प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति, पीत्वा व्रजति, स्नात्वा भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[समानकर्त्तृकयोः] समान अर्थात एक कर्त्ता है जिन दो क्रियाओं

का, उनमें जो [पूर्वकाले] पूर्वकाल में वर्त्तमान धातु है उससे क्त्वा प्रत्यय होता है ॥ उदा०—देवदत्तो भुक्त्वा व्रजति (देवदत्त खाकर जाता है) । पीत्वा व्रजति (पीकर जाता है) । स्नात्वा भुङ्क्ते (स्नान करके खाता है) ॥ उदाहरण में जाने क्रिया का तथा खाने क्रिया का कर्त्ता देवदत्त ही है । सो भुज् एवं व्रज समानाकर्त्तृक धातुएँ हैं । एवं पहले खाता है पीछे जाता है, अतः भुज धातु पूर्वकालिक है । सो इससे क्त्वा प्रत्यय हो गया है । इसी प्रकार सब में समझें । सिद्धियाँ परि० १।१।३६ में देखें । भुक्त्वा में चोः कुः (८।२।३०) से ज् को कुत्व हुआ है, तथा पीत्वा में घुमास्थागापा० (६।४।६६) से 'पा' के आ को ईत्व हुआ है ॥

यहाँ से "समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले" की अनुवृत्ति ३।४।२६ तक जायेगी ॥

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥३।४।२२॥

आभीक्ष्ण्ये ७।१॥ णमुल् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—आभीक्ष्ण्ये गम्यमाने समानकर्त्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले धात्वर्थे वर्त्तमानाद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति, चकारात् क्त्वा च ॥ उदा०—भोजम् भोजं व्रजति । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति ॥

भाषार्थः—[आभीक्ष्ण्ये] आभीक्ष्ण्ये=पौनःपुन्य अर्थ में समानाकर्त्तृक दो धातुओं में जो पूर्वकालिक धातु उससे [णमुल्] णमुल् प्रत्यय होता है, [च] चकार से क्त्वा भी होता है ॥ उदा०—भोजम् भोजं व्रजति (खा-खा कर जाता है) । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । सिद्धि पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से 'आभीक्ष्ण्ये' की अनुवृत्ति ३।४।२३ तक, तथा 'णमुल्' की अनुवृत्ति ३।४।२४ तक जायेगी ॥

न यद्यनाकाङ्क्षे ॥३।४।२३॥

न अ० ॥ यदि ७।१॥ अनाकाङ्क्षे ७।१॥ स०—आकाङ्क्षतीति आकाङ्क्षम्, पचाद्यच् प्रत्ययः । न आकाङ्क्षम् अनाकङ्क्षम्, तस्मिन्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—आभीक्ष्ण्ये, णमुल्, समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—समानकर्त्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले वर्त्तमानाद् धातोः यच्छब्द उपपदे क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ न भवतोऽनाकाङ्क्षे वाच्ये ॥ उदा०—यदयं भुङ्क्ते ततः पठति । यदयमधीते ततः शेते ॥

भाषर्थः—समानकर्त्तावाले धातुओं में से पूर्वकालिक धात्वर्थ में वर्त्तमान धातु से [यदि] यद् शब्द के उपपद होने पर क्त्वा णमुल् प्रत्यय [न] नहीं होते हैं, यदि [अनाकाङ्क्षे] अन्य वाक्य की आकाङ्क्षा न रखनेवाला वाक्य अभिधेय हो ॥ उदा०—यदयं भुङ्क्ते ततः पठति (यह बार बार पहले खाता है, पीछे पढ़ता है) ।

यवयमधीते ततः शेते (यह पहले बार बार पढ़ता है, तब सोता है) ॥ यहाँ भोजन पठन क्रियावाला वाक्य अन्य किसी वाक्य को आकाङ्क्षा नहीं रखता है। इसी प्रकार अध्ययन-शयनवाला वाक्य भी अनाकाङ्क्ष है ॥

विभाषाऽग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥३।४।२४॥

विभाषा १।१॥ अग्रेप्रथमपूर्वेषु ७।३॥ स०—अग्रे च प्रथमश्च पूर्वश्च अग्रेप्रथमपूर्वाः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले, क्त्वा, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अग्रे प्रथम पूर्व इत्येतेषूपपदेषु समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले धातोर्विभाषा क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—अग्रे भोजं व्रजति। अग्रे भुक्त्वा व्रजति। प्रथमं भोजं व्रजति। प्रथमं भुक्त्वा व्रजति। पूर्वं भोजं व्रजति। पूर्वं भुक्त्वा व्रजति ॥ विभाषाग्रहणात् पक्षे लडादयोऽपि भवन्ति—अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति। प्रथमं भुङ्क्ते ततो व्रजति। पूर्वं भुङ्क्ते ततो व्रजति ॥

भाषार्थः—[अग्रेप्रथमपूर्वेषु] अग्रे प्रथम पूर्व उपपद हों, तो समानकर्त्तृक पूर्वकालिक धातु से [विभाषा] विकल्प से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं। पक्ष में लडादि लकार होते हैं ॥ उदा०—अग्रे भोजं व्रजति (आगे खाकर जाता है)। अग्रे भुक्त्वा व्रजति इत्यादि संस्कृतभाग के अनुसार सारे उदाहरण जानें ॥

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् ॥३।४।२५॥

कर्मणि ७।१॥ आक्रोशे ७।१॥ कृञः ५।१॥ खमुञ् १।१॥ अनु०—समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्मण्युपपदे आक्रोशे गम्यमाने समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले कृञ् धातोः खमुञ् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चोरङ्कारमाक्रोशति। दस्युङ्कारमाक्रोशति ॥

भाषार्थः—[कर्मणि] कर्म उपपद रहते [आक्रोशे] आक्रोश गम्यमान हो, तो समानकर्तृक पूर्वकालिक [कृञः] कृञ् धातु से [खमुञ्] खमुञ् प्रत्यय होता है। प्रत्यय के खित् होने से अरुर्द्विषद० (६।३।६५) से मुम् आगम होकर चोर मुम् कार् अम्=चोरङ्कारमाक्रोशति (चोर है, ऐसा कहकर चिल्लाता है)। दस्युङ्कारमाक्रोशति बन गया है ॥

यहाँ से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।४।२८ तक जायेगी ॥

[1]स्वादुमि णमुल् ॥३।४।२६॥

स्वादुमि ७।१॥ णमुल् १।१॥ अनु०—कृञः, समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले, धातोः,

---

१. यहाँ 'स्वादु' शब्द को वोतो गुणवचनात् (४।१।४४) से ङीष् प्रत्यय प्राप्त था। वह न हो जाये, इसलिये मकारान्त निपातन करके 'स्वादुम्' शब्द माना है ॥

प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—स्वाद्वर्थेषु शब्देषूपपदेषु समानकर्त्तृकयोः पूर्वकाले कृञ्धातो-र्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते । सम्पन्नङ्कारं भुङ्क्ते । लवण-ङ्कारं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[स्वादुमि] स्वादुवाची शब्दों के उपपद रहते समानकर्त्तृक पूर्व-कालिक कृञ् धातु से [णमुल्] णमुल् प्रत्यय होता है ॥ सिद्धि परि० १।१।३८ में देखें ॥

यहाँ से 'णमुल्' की अनुवृत्ति ३।४।५८ तक जायेगी ॥

अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥३।४।२७॥

अन्य··त्थंसु ७।३॥ सिद्धाप्रयोगः १।१॥ चेत् अ० ॥ स०—अन्यथा च एवं च कथं च इत्थं च अन्य···त्थमः, तेषु, इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ न प्रयोगः अप्रयोगः, नञ्तत्पुरुषः । सिद्धः अप्रयोगो यस्य स सिद्धाप्रयोगः, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—णमुल्, कृञः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अन्यथा एवं कथम् इत्थम् इत्येतेषूपपदेषु कृञ्धातो-र्णमुल् प्रत्ययो भवति सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतिर्भवेत् ॥ उदा०—अन्यथाकारं भुङ्क्ते । एवंकारं भुङ्क्ते । कथङ्कारं भुङ्क्ते । इत्थंकारं भुङ्क्ते ॥

भाषार्थः—[अन्य त्थंसु] अन्यथा एवं कथं इत्थम् शब्दों के उपपद रहते कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, [चेत्] यदि कृञ् का [सिद्धाप्रयोगः] अप्रयोग सिद्ध हो ॥ उदा०—अन्यथाकारं भुङ्क्ते (बिगाड़ कर खाता है) । एवंकारं भुङ्क्ते (इस प्रकार खाता है) । कथंकारं भुङ्क्ते (किस प्रकार खाता है) । इत्थंकारं भुङ्क्ते (इस प्रकार खाता है) ॥ यहाँ उदाहरणों में अन्यथा भुङ्क्ते का जो अर्थ है, वही अन्यथाकार भुङ्क्ते का है । अर्थात् अभीष्ट अर्थ बिना कृञ् धातु (कार) के प्रयोग के ही कहा जा रहा है । अतः यहाँ कृञ् का प्रयोग भी अप्रयोग के समान है । इस प्रकार सिद्ध कृञ् के प्रयोग को यहाँ सिद्धाप्रयोग कहा है । उदाहरणों में सर्वत्र कृन्मेजन्तः (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा होगी ॥

यहाँ से 'सिद्धाप्रयोगः' की अनुवृत्ति ३।४।२८ तक जायेगी ॥

यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥३।४।२८॥

यथातथयोः ७।२॥ असूयाप्रतिवचने ७।१॥ स०—यथा च तथा च यथातथौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः । असूयया = निन्दया प्रतिवचनं = प्रत्युत्तरम् असूयाप्रतिवचनम्, तस्मिन्, तृतीयातत्पुरुषः ॥ अनु०—सिद्धाप्रयोगः, णमुल्, कृञः, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—असूयाप्रतिवचने गम्यमाने यथातथयोरुपपदयोः कृञो णमुल् प्रत्ययो भवति, सिद्धाप्रयोगश्चेत् करोतिर्भवति ॥ उदा०—यथाकारमहं भोक्ष्ये, तथाकारं किं तवानेन ॥

भाषार्थ:—[यथातथयोः] यथा तथा शब्द उपपद रहते [असूयाप्रतिवचने] असूयाप्रतिवचन=निन्दा से प्रत्युत्तर गम्यमान हो, तो कृञ् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है, यदि कृञ् का अप्रयोग सिद्ध हो ॥

उदाहरण में जो यथा भोक्ष्ये का अर्थ है, वही यथाकारं भोक्ष्ये का है। अतः कृञ् का अप्रयोग सिद्ध है। किसी ने किसी से पूछा कि तुम कैसे खाते हो? तो उसने निन्दा से उत्तर दिया कि यथाकारमहं भोक्ष्ये तथाकारं किं तवानेन? (मैं जैसे खाता हूं, वैसे खाता हूं, इससे तुमको क्या?)। सो यहां असूयाप्रतिवचन है ॥

कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥३।४।२९॥

कर्मणि ७।१॥ दृशिविदोः ६।२॥ साकल्ये ७।१॥ स०—दृशि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—साकल्ये=सम्पूर्णताविशिष्टे कर्मण्युपपदे दृशि विद इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यवनदर्शं हन्ति। ब्राह्मणवेदं भोजयति ॥

भाषार्थ:—[साकल्ये] साकल्य=सम्पूर्णताविशिष्ट [कर्मणि] कर्म उपपद हो, तो [दृशिविदोः] दृशिर् तथा विद धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ यवनदर्शं, ब्राह्मणवेदं में "जिन-जिन (सब) यवनों को देखता है मारता है। एवं जिन-जिन ब्राह्मणों को जानता है खिलाता है" यह अर्थ होने से यवन तथा ब्राह्मण साकल्यविशिष्ट कर्म हैं, सो णमुल् हुआ है ॥ सिद्धि सारी परि० १।१।३८ की तरह जानें ॥

यहां से 'कर्मणि' की अनुवृत्ति ३।४।३६ तक जायेगी ॥

यावति विन्दजीवोः ॥३।४।३०॥

यावति ७।१॥ विन्दजीवोः ६।२॥ स०—विन्द० इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—यावच्छब्द उपपदे विन्द जीव इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—यावद्वेदं भोजयति। यावज्जीवमधीते ॥

भाषार्थ:—[यावति] यावत् शब्द उपपद रहते [विन्दजीवोः] 'विद्लृ लाभे' एवं 'जीव प्राणधारणे' धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यावद्वेदं भोजयति (जितना पाता है, उतना खिलाता है)। यावज्जीवमधीते (मरणपर्यन्त पढ़ता है) ॥

चर्मोदरयोः पूरेः ॥३।४।३१॥

चर्मोदरयोः ७।२॥ पूरेः ५।१॥ स०—चर्म० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—चर्म उदर इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोर्ण्यन्तात् 'पूरी आप्यायने' इत्यस्माद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—चर्मपूरं स्तृणाति। उदरपूरं भुङ्क्ते ॥

भावार्थ:—[चर्मोदरयोः] चर्म तथा उदर कर्म उपपद रहते [पूरेः] पूरी ण्यन्त धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।। पूरी का पूर् रूप शेष रह जाता है। तत्पश्चात् णिच् लाकर 'पूरि' ऐसे ण्यन्त का इस सूत्र में ग्रहण है ।। उदा०—चर्मपूरं स्तृणाति (सब चमड़े को ढांपता है)। उदरपूरं भुङ्क्ते (पेट भरकर खाता है) ।।

यहाँ से 'पूरेः' की अनुवृत्ति ३।४।३२ तक जायेगी ।।

वर्षप्रमाण ऊलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ।।३।४।३२।।

वर्षप्रमाणे ७।१।। ऊलोपः १।१।। च अ० ।। अस्य ६।१।। अन्यतरस्याम् अ० ।। स०—वर्षस्य प्रमाणं वर्षप्रमाणं, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः। ऊकारस्य लोप ऊलोपः, षष्ठीतत्पुरुषः ।। अनु०—पूरेः, कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—वर्षप्रमाणे गम्यमाने कर्मण्युपपदे ण्यन्तात् पूरीधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति, तस्य च पूरेर्विकल्पेन ऊकारलोपो भवति ।। उदा०—गोष्पदप्रं वृष्टो देवः, गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः, सीतापूरं वृष्टो देवः ।।

भावार्थः—[वर्षप्रमाणे] वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो (कि कितनी वर्षा हुई है), तो कर्म उपपद रहते ण्यन्त पूरी धातु से णमल् प्रत्यय होता है, [च] तथा [अस्य] इस पूरी धातु के [ऊलोपः] ऊकार का लोप [अन्यतरस्याम्] विकल्प से होता है ।। उदा०—गोष्पदप्रं वृष्टो देवः(भूमि में गाय के खुर के द्वारा हुए गड्ढे के भरने जितनी वर्षा हुई), गोष्पदपूरं वृष्टो देवः। सीताप्रं वृष्टो देवः (हल की फाली से हुये गड्ढे के भरने जितनी वर्षा हुई), सीतापूरं वृष्टो देवः ।। 'गोष्पद' तथा 'सीता' कर्म पूरी धातु के उपपद हैं, वर्षा का प्रमाण कहा ही जा रहा है। सो उदाहरण में णमुल् प्रत्यय, तथा पक्ष में पूरी के ऊकार का लोप होकर गोष्पद पूर् अम्=गोष्पदप्रं बना है, पक्ष में ऊकारलोप न होकर गोष्पदपूरं बनेगा ।।

यहाँ से 'वर्षप्रमाणे' की अनुवृत्ति ३।४।३३ तक जायेगी ।।

चेले क्नोपेः ।।३।४।३३।।

चेले ७।१।। क्नोपेः ५।१।। अनु०—वर्षप्रमाणे, कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ।। अर्थः—चेलार्थेषु कर्मसूपपदेषु वर्षप्रमाणे गम्यमाने 'क्नूयी शब्दे उन्दे च' इत्यस्माद् ण्यन्ताद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ।। उदा०—चेलक्नोपं वृष्टो देवः, वस्त्रक्नोपं, वसनक्नोपम् ।।

भावार्थः—[चेले] चेलवाची कर्म उपपद हों, तो वर्षा का प्रमाण गम्यमान होने पर [क्नोपेः] क्नूयी ण्यन्त धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ।। क्नोपि ण्यन्त निर्देश सूत्र में है, अतः ण्यन्त क्नोपि धातु से णमुल् प्रत्यय होता है। अर्तिह्री० (७।३।३६) से पुक् आगम, पुगन्त० (७।३।८६) से गुण, तथा लोपो व्योर्वलि (६।१।६४) से

यकार लोप होकर क्नोपि धातु बना है ॥ उदा०—चेलक्नोपं वृष्टो देवः (कपड़ा गीला हो गया, इतनी वर्षा हुई), वस्त्रक्नोपं, वसनक्नोपम् ॥

निमूलसमूलयोः कषः ॥३।४।३४॥

निमूलसमूलयोः ७।२॥ कषः ५।१॥ स०—निमू० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—निमूल समूल इत्येतयोः कर्मणोरुपपदयोः कषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—निमूलकाषं कषति । समूलकाषं कषति ॥

भाषार्थः—[निमूलसमूलयोः] निमूल तथा समूल कर्म उपपद रहते [कषः] कष धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—निमूलकाषं कषति (जड़ को छोड़कर काटता है)। समूलकाषं कषति (जड़समेत काटता है) ॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः ॥३।४।३५॥

शुष्कचूर्णरूक्षेषु ७।३॥ पिषः ५।१॥ स०—शुष्कश्च चूर्णश्च रूक्षश्च शुष्कचूर्णरूक्षाः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—शुष्क चूर्ण रूक्ष इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु पिष्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शुष्कपेषं पिनष्टि । चूर्णपेषं पिनष्टि । रूक्षपेषं पिनष्टि ॥

भाषार्थः—[शुष्कचूर्णरूक्षेषु] शुष्क चूर्ण तथा रूक्ष कर्म उपपद रहते [पिषः] 'पिष्लृ सञ्चूर्णने' धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शुष्कपेषं पिनष्टि (सूखे को पीसता है)। चूर्णपेषं पिनष्टि (चूर्ण को पीसता है)। रूक्षपेषं पिनष्टि (रूखे को पीसता है) ॥

समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ्ग्रहः ॥३।४।३६॥

समूलाकृतजीवेषु ७।३॥ हन्कृञ्ग्रहः ५।१॥ स०—समू० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः । हन् च कृञ् च ग्रह् च हन्कृञ्ग्रह्, तस्मात्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्मणि, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—समूल अकृत जीव इत्येतेषु कर्मसूपपदेषु यथासङ्ख्यं हन् कृञ् ग्रह् इत्येतेभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—समूलघातं हन्ति । अकृतकारं करोति । जीवग्राहं गृह्णाति ॥

भाषार्थः—[समूलाकृतजीवेषु] समूल अकृत तथा जीव कर्म उपपद हों, तो यथासङ्ख्य करके [हन्कृञ्ग्रहः] हन् कृञ् तथा ग्रह धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—समूलघातं हन्ति (मूल समेत मारता है)। अकृतकारं करोति (न किये को करता है)। जीवग्राहं गृह्णाति (जीव को ग्रहण करता है) । परि० ३।२।५१ के शीर्षघाती के समान समूलघातं की सिद्धि जानें, । अन्तर केवल इतना है कि यहाँ णमुल् प्रत्यय हुआ है, तथा शीर्षघाती में णिनि हुआ है ॥

करणे हनः ॥३।४।३७॥

करणे ७।१॥ हनः ५।१॥ **अनु०** —णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—करणे कारक उपपदे हन्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—पाणिभ्याम् उपहन्ति=पाण्युपघातं वेदिं हन्ति । पादोपघातं वेदिं हन्ति॥

भाषार्थः-- [करणे] करण कारक उपपद हो, तो [हनः] हन् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०--पाण्युपघातं वेदिं हन्ति (हाथ से वेदि को कूटता है)। पादोपघातं वेदिं हन्ति (पैर से वेदि को कूटता है) ॥ सिद्धि परि० ३।२।५१ के समान जानें ॥

यहाँ से 'करणे' की अनुवृत्ति ३।४।४० तक जायेगी ॥

स्नेहने[1] पिषः ॥३।४।३८॥

स्नेहने ७।१॥ पिषः ५।१॥ **अनु०**--करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—स्नेहनवाचिनि करण उपपदे पिष्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति । **उदा०**—उदकेन पिनष्टि=उदपेषं पिनष्टि । तैलपेषं पिनष्टि ॥

भाषार्थः--[स्नेहने] स्नेहनवाची करण उपपद हो, तो [पिषः] पिष् धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०--उदपेषं पिनष्टि (जल से पीसता है)। तैलपेषं पिनष्टि (तेल से पीसता है) ॥

उदपेषं में पेषंवासवाहनधिषु च (६।३।५६) से उदक को उद भाव हो गया है ॥

हस्ते वर्त्तिग्रहोः ॥३।४।३९॥

हस्ते ७।१॥ वर्त्तिग्रहोः ६।२॥ स०—वर्त्ति० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**--करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—हस्तवाचिनि करण उपपदे वर्त्ति ग्रह इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—हस्तेन वर्त्तयति=हस्तवर्त्तं वर्त्तयति, करवर्त्तम् । हस्तग्राहं गृह्णाति, करग्राहं गृह्णाति ॥

भाषार्थः--[हस्ते] हस्तवाची करण उपपद हो, तो [वर्त्तिग्रहोः] वर्त्ति तथा ग्रह धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—हस्तवर्त्तं वर्त्तयति (हाथ से करता

---

१. स्नेहन द्रव पदार्थ=बहनेवाली वस्तु को कहते हैं । यथा—पानी तेल एवं गलाया हुआ लोहा सोना चाँदी आदि ॥

है), करवर्त्तम् । हस्तग्राहं गृह्णाति (हाथ से ग्रहण करता है), करग्राहम् ॥ वृतु का वर्त्ति यहाँ णिजन्त निर्देश है, अतः ण्यन्त से ही प्रत्यय होगा । पुनः णेरनिटि (६।४।५१) से णि का लोप हो जायेगा ॥

स्वे पुषः ॥३।४।४०॥

स्वे ७।१॥ पुषः ५।१॥ अनु०—करणे, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—स्ववाचिनि करण उपपदे पुषधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—स्वपोषं पुष्णाति, आत्मपोषं, गोपोषं, धनपोषं, रैपोषम् ॥

भाषार्थः—[स्वे] स्ववाची करण उपपद रहते [पुषः] पुष धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ स्व शब्द यहाँ अपना आत्मीय ज्ञाति तथा धन का पर्यायवाची है ॥ पित्पर्यायवच० (वा० १।१।६७) इस वार्त्तिक से स्व के स्वरूप पर्यायों तथा स्वविशेष का यहां ग्रहण है ॥ उदा०—स्वपोषं पुष्णाति (अपने द्वारा पुष्ट करता है), आत्मपोषं, गोपोषं, धनपोषम्, रैपोषम् ॥

अधिकरणे बन्धः ॥३।४।४१॥

अधिकरणे ७।१॥ बन्धः ५।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अधिकरणवाचिनि शब्द उपपदे बन्धधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—चक्रे बध्नाति = चक्रबन्धं बध्नाति, कूटबन्धं बध्नाति, मुष्टिबन्धं बध्नाति, चोरकबन्धं बध्नाति ॥

भाषार्थः—[अधिकरणे] अधिकरणवाची शब्द उपपद हों, तो [बन्धः] बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—चक्रबन्धं बध्नाति (चक्र = पहिये में बांधता है)। कूटबन्धं बध्नाति (लोहे के मुद्गर में बांधता है)। मुष्टिबन्धं बध्नाति (मुट्ठी में बांधता है)। चोरकबन्धं बध्नाति (चोरक बन्धविशेष में बांधता है)॥

यहाँ से 'बन्धः' की अनुवृत्ति ३।४।४२ तक जायेगी ॥

संज्ञायाम् ॥३।४।४२॥

संज्ञायाम् ७।१॥ अनु०—बन्धः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—संज्ञायां विषये बन्धधातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—क्रौञ्चबन्धं बध्नाति, मयूरिकाबन्धं, अट्टालिकाबन्धम् ॥

भाषार्थः—[संज्ञायाम्] संज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ पूर्व सूत्र से अधिकरण उपपद रहते प्राप्त था, यहाँ कारकसामान्य उपपद रहते भी कह दिया ॥ 'क्रौञ्चबन्ध' आदि बन्धविशेषों के नाम हैं ॥ सिद्धियां सब परि० १।१।३८ के समान जानें ॥

कर्त्रोर्जीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥३।४।४३॥

कर्त्रोः ७।२॥ जीवपुरुषयोः ७।२॥ नशिवहोः ६।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कर्त्तृवाचिनोः जीवपुरुषयोरुपपदयोः यथासङ्ख्यं नशि वह इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—जीवो नश्यति= जीवनाशं नश्यति । पुरुषवाहं वहति ॥

भाषार्थः—[कर्त्रोः] कर्त्तावाची [जीवपुरुषयोः] जीव तथा पुरुष शब्द उपपद हों,तो यथासङ्ख्य करके[नशिवहोः]नश तथा वह धातुओं से णमुल प्रत्यय होता है ॥ उदा०—जीवनाशं नश्यति (जीव नष्ट होता है)। पुरुषवाहं वहति (पुरुष वहन करता है) ॥

यहाँ से 'कर्त्रोः' की अनुवृत्ति ३।४।४५ तक जायेगी ॥

ऊर्ध्वे शुषिपूरोः ॥३।४।४४॥

ऊर्ध्वे ७।१॥ शुषिपूरोः ६।२॥ स०—शुषि० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्त्रोः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः -कर्त्तृवाचिनि ऊर्ध्वशब्द उपपदे शुषि पूरी इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—ऊर्ध्वशोषं शुष्यति । ऊर्ध्वपूरं पूर्य्यते ॥

भाषार्थः—कर्त्तावाची [ऊर्ध्वे] ऊर्ध्व शब्द उपपद हो, तो [शुषिपूरोः] 'शुषि शोषणे' तथा 'पूरी आप्यायने' धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—ऊर्ध्वशोषं शुष्यति (ऊपर सूखता है)। ऊर्ध्वपूरं पूर्यते (ऊपर वर्षा के जल आदि से पूरा होता है) ॥

उपमाने कर्मणि च ॥३।४।४५॥

उपमाने ७।१ कर्मणि ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—कर्त्रोः, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः-उपमानवाचिनि कर्मणि कर्त्तरि चोपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मातरमिव धयति=मातृधायं धयति । गुरुसेवं सेवते । कर्त्तरि—बाल इव रोदिति=बालरोदं रोदिति । सिंहगर्जं गर्जति ॥

भाषार्थः—[उपमाने] उपमानवाची [कर्मणि] कर्म उपपद रहते, [च] चकार से कर्त्ता उपपद रहते भी धातुमात्र से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ जिससे उपमा दी जाय वह उपमान होता है ॥ उदा०—मातृधायं धयति (जैसे माता का दूध पीता है वैसे दूध पीता है)। गुरुसेवं सेवते (जैसे गुरु की सेवा करता है वैसे सेवा करता है)। कर्त्ता में—बालरोदं रोदिति(जैसे बालक रोता है वैसे रोता है)। सिंहगर्जं गर्जति (जैसे सिंह गरजता है वैसे गरजता है) ॥ मातृधायं, यहाँ आतो युक्०(६।३।३३) से युक् आगम होता है ॥

कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥३।४।४६॥

कषादिषु ७।३॥ यथाविधि अ० ॥ अनुप्रयोगः १।१॥ स०—कष आदिर्येषां ते कषादयः, तेषु, बहुव्रीहिः ॥ अर्थः—निमूलसमूलयोः कषः (३।४।३४) इत्यारभ्य ये धातवस्ते कषादयः, एतेषु यथाविध्यनुप्रयोगो भवति ॥ यस्माद् धातोर्णमुल् विहितः तस्यैव धातोरनुप्रयोगः कर्त्तव्यः । तथा चैवोदाहृतम् ॥

भाषार्थः—[कषादिषु] कषादि धातुओं में [यथाविधि] यथाविधि [अनुप्रयोगः] अनुप्रयोग होता है, अर्थात् जिस धातु से णमुल् का विधान करेंगे, उसका ही पश्चात् प्रयोग होगा ॥ निमूलसमूलयोः कषः (३।४।३४) से लेकर इस सूत्र पर्यन्त जितनी धातुएँ हैं, वे कषादि हैं ॥

उपदंशस्तृतीयायाम् ॥३।४।४७॥

उपदंशः ५।१॥ तृतीयायाम् ७।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयान्त उपपदे उपपूर्वाद् 'दंश दशने' इत्यस्माद् धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते, मूलकेनोपदंशम् । आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते, आर्द्रकेणोपदंशम् ॥

भाषार्थः—[तृतीयायाम्] तृतीयान्त शब्द उपपद रहते [उपदंशः] उपपूर्वक दंश धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—मूलकोपदंशं भुङ्क्ते (मूली से काट-काट कर खाता है), मूलकेनोपदंशम् । आर्द्रकोपदंशं भुङ्क्ते (अदरक से काट-काट कर खाता है), आर्द्रकेणोपदंशं भुङ्क्ते ॥ मूलकोपदंशं आदि में 'तृतीयाप्रभृतीन्यन्य० (२।२।२१) से विकल्प से समास हुआ है । शेष पूर्ववत् ही जानें ॥ यहाँ से आगे जिन उपपदों के रहते प्रत्यय कहेंगे, वहाँ सर्वत्र पूर्वोक्त सूत्र से विकल्प से समास हुआ करेगा ॥

यहाँ से 'तृतीयायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५१ तक जायेगी ॥

हिंसार्थानाञ्च समानकर्मकाणाम् ॥३।४।४८॥

हिंसार्थानाम् ६।३॥ च अ०॥ समानकर्मकाणाम् ६।३॥ स०—हिंसा अर्थो येषां ते हिंसार्थाः, तेषां, बहुव्रीहिः । समानं कर्म येषां ते समानकर्मकाः, तेषां, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तृतीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तृतीयान्त उपपदे अनुप्रयुक्तधातुना सह समानकर्मकेभ्यो हिंसार्थकधातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—दण्डोपघातं गाः कालयति, दण्डेनोपघातम् । नखोपघातं यूकान् गृह्णाति, नखेनोपघातम् ॥

भाषार्थः—अनुप्रयुक्त धातु के साथ [समानकर्मकाणाम्] समान कर्मवाली [हिंसार्थानाम्] हिंसार्थक धातुओं से [च] भी तृतीयान्त उपपद रहते णमुल् प्रत्यय होता है ।

अनुप्रयोग की हुई धातु का तथा जिससे णमुल् हो रहा हो उन धातुओं का समान कर्म होना चाहिये। सो उदाहरण में 'कालयति' 'गृह्णाति' अनुप्रयुक्त धातु हैं। इन दोनों धातुओं और हन् का गा: अथवा यूकान् समान कर्म हैं। सो इस प्रकार ये समानकर्मक धातुयें हुईं। अत: उप पूर्वक हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हुआ है ॥ हिंसार्थानां तथा समानकर्मकाणाम् पदों में पञ्चमी के अर्थ में षष्ठी हुई है ॥ उदा०—दण्डोपघातं गा: कालयति (डण्डे से मारकर गौ को हटाता है), दण्डेनोपघातम्। नखोपघातं यूकान् गृह्णाति (नाखून से दबाकर जूँ को पकड़ता है), नखेनोपघातम्। पूर्ववत् विकल्प से समास होकर सिद्धियाँ जानें ॥

सप्तम्यां चोपपीडरुधकर्षः ॥३।४।४९॥

सप्तम्याम् ७।१॥ च अ० ॥ उपपीडरुधकर्ष: १।१, पञ्चम्यर्थे प्रथमा ॥ स०—पीडश्च रुधश्च कर्षश्च पीडरुधकर्ष:, समाहारद्वन्द्व:। उपपूर्व पीडरुधकर्ष: उपपीडरुधकर्ष:, उत्तरपदलोपी तत्पुरुष: ॥ अनु०—तृतीयायाम्, णमुल्, धातो:, प्रत्यय, परश्च ॥ **अर्थ:**—तृतीयान्ते सप्तम्यन्ते चोपपद उपपूर्वेभ्य: पीड रुध कर्ष इत्येतेभ्यो धातुभ्यो णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—पार्श्वोपपीडं शेते, पार्श्वयोरुपपीडम्, पार्श्वाभ्यामुपपीडम्। पाण्युपरोधं चूर्णं पिनष्टि, पाणावुपरोधम्, पाणिनोपरोधम्। पाण्युपकर्षं धाना: संगृह्णाति, पाणावुकर्षं, पाणिनोपकर्षम् ॥

भाषार्थ:—तृतीयान्त तथा [सप्तम्याम्] सप्तम्यन्त उपपद हो, तो [उपपीडरुधकर्ष:] उपपूर्वक पीड रुध तथा कर्ष धातुओं से [च] भी णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—पार्श्वोपपीडं शेते (बगल से या बगल में दबाकर सोता है), पार्श्वयोरुपपीडं, पार्श्वाभ्यामुपपीडम्। पाण्युपरोधं चूर्णं पिनष्टि (हाथ से दबाकर आटा पीसता है), पाणावुपरोधं, पाणिनोपरोधम्। पाण्युपकर्षं धाना: संगृह्णाति (हाथ से पकड़कर धानों को इकट्ठा करता है), पाणावुपकर्षं, पाणिनोपकर्षम् ॥ सर्वत्र तृतीयाप्रभृती० (२।२।२१) से विकल्प से समास होकर पार्श्वयोरुपपीडम् आदि भी बनेंगे ॥ यहाँ 'कृष' धातु से शप् तथा गुण करके निर्देश किया गया है। अत: भ्वादिगण की कृष धातु का ग्रहण होता है, तुदादि का नहीं ॥

यहाँ से 'सप्तम्याम्' की अनुवृत्ति ३।४।५१ तक जायेगी ॥

समासत्तौ ॥३।४।५०॥

समासत्तौ ७।१॥ अनु०—सप्तम्याम्, तृतीयायाम्, णमुल्, धातो:, प्रत्यय:, परश्च ॥ **अर्थ:**—समासत्ति:=सन्निकटता, तस्यां गम्यमानायां तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—केशग्राहं युध्यन्ते, केशैर्ग्राहं, केशेषु ग्राहम्। हस्तग्राहम्, हस्तैर्ग्राहम्, हस्तेषु ग्राहम् ॥

भाषार्थः—[समासत्तौ] समासत्ति अर्थात् सन्निकटता गम्यमान हो, तो तृतीयान्त तथा सप्तम्यन्त उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—केशग्राहं युध्यन्ते (केशों से पकड़कर लड़ते हैं) ॥ शेष उदाहरण पूर्ववत् जान लें। उदाहरणों में केश वा हाथ पकड़-पकड़कर युद्ध हो रहा है। अतः यहाँ अति सन्निकटता है॥ पूर्ववत् ही उदाहरणों में विकल्प से समास हुआ है॥

प्रमाणे च ॥३।४।५१॥

प्रमाणे ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—सप्तम्यां, तृतीयायां, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—प्रमाणे गम्यमाने तृतीयासप्तम्योरुपपदयोर्धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति, द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् । सप्तम्याम्—द्व्यङ्गुल उत्कर्षम्, द्व्यङ्गुलोत्कर्षम् ॥

भाषार्थः—[प्रमाणे] प्रमाण=आयाम=लम्बाई गम्यमान हो, तो [च] भी सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—द्व्यङ्गुलोत्कर्षं खण्डिकां छिनत्ति(दो-दो अङ्गुल छोड़कर लकड़ी काटता है),द्व्यङ्गुलेनोत्कर्षम् । द्व्यङ्गुल उत्कर्षम्, द्व्यङ्गुलोकर्षम् ॥ पूर्ववत् समास का विकल्प यहाँ भी जानें ॥

अपादाने परीप्सायाम् ॥३।४।५२॥

अपादाने ७।१॥ परीप्सायाम् ७।१॥ अनु०—णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—परीप्सा=त्वरा, तस्यां गम्यमानायामपादान उपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—शय्योत्थायं धावति, शय्याया उत्थायं धावति ॥

भाषार्थः—[परीप्सायाम्] परीप्सा=शीघ्रता गम्यमान हो, तो [अपादाने] अपादान उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—शय्योत्थायं धावति (खाट से उठते ही भागता है), शय्याया उत्थायं धावति ॥ 'उत् स्था अम्' यहाँ उदः स्थास्तम्भोः० (८।४।६०) से स्था धातु को पूर्वसवर्ण आदेश होकर 'उत्था अम्' बना। आतो युक्० (७।३।३३) से युक् आगम होकर उत्थायं बन गया॥

यहाँ से 'परीप्सायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५३ तक जायेगी ॥

द्वितीयायाञ्च ॥३।४।५३॥

द्वितीयायाम् ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—परीप्सायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयान्त उपपदे परीप्सायां गम्यमानायां धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति॥ उदा०—यष्टिग्राहं युध्यन्ते, यष्टिं ग्राहम् । असिग्राहं, असिं ग्राहम् । लोष्टग्राहं, लोष्टं ग्राहम् ॥

भाषार्थः—[द्वितीयायाम्] द्वितीयान्त उपपद रहते [च] भी शीघ्रता गम्यमान हो, तो धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—यष्टिग्राहं युध्यन्ते (लाठी लेकर लड़ते हैं), यष्टिं ग्राहम् । असिग्राहं युध्यन्ते (तलवार लेकर लड़ते हैं), असिंग्राहम् । लोष्टग्राहम (ढेला लेकर लड़ते हैं), लोष्टं ग्राहम् ॥ उदाहरणों में शीघ्रता यही है कि जो कुछ लाठी आदि सामने मिल जाती है, उसी को लेकर लड़ने लगता है, कुछ नहीं सोचता कि शस्त्रादि तो ले लें ॥ पूर्ववत् यहां भी समास का विकल्प जानें ॥

यहां से 'द्वितीयायाम्' की अनुवृत्ति ३।४।५८ तक जायेगी ॥

स्वाङ्गेऽध्रुवे ॥३।४।५४॥

स्वाङ्गे ७।१॥ अध्रुवे ७।१॥ स०—अध्रुव० इत्यत्र नञ्तत्पुरुषः । स्वम् अङ्गं स्वाङ्गम्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—अध्रुवे स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ यस्मिन्नङ्गे छिन्नेऽपि प्राणी न म्रियते तदध्रुवम् ॥ उदा०—अक्षिनिकाणं जल्पति, अक्षि निकाणं जल्पति । भ्रूविक्षेपं कथयति, भ्रुवं विक्षेपं कथयति ॥

भाषार्थः—[अध्रुवे] अध्रुव [स्वाङ्गे] स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद रहते धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ अपने अङ्ग को स्वाङ्ग कहते हैं । जिस अङ्ग के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी मरता नहीं, वह अध्रुव होता है । उदाहरणों में अक्षि एवं भ्रू के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी मरता नहीं, अतः ये अध्रुव स्वाङ्गवाची शब्द हैं ॥ उदा०—अक्षिनिकाणं जल्पति (आँख बन्द कर बड़बड़ाता है), अक्षि निकाणम् । भ्रूविक्षेपं कथयति (भौहें टेढी करके कहता है) । भ्रुवं विक्षेपं कथयति ॥ पूर्ववत् यहाँ भी समास का विकल्प जानें ॥

यहाँ से 'स्वाङ्गे' की अनुवृत्ति ३।४।५५ तक जायेगी ॥

परिक्लिश्यमाने च ॥३।४।५५॥

परिक्लिश्यमाने ७।१॥ च अ० ॥ अनु०—स्वाङ्गे, द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ परितः=सर्वतः क्लिश्यमानः परिक्लिश्यमानः ॥ अर्थः—परिक्लिश्यमाने स्वाङ्गवाचिनि द्वितीयान्त उपपदे धातोर्णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—उरःपेषं युध्यन्ते, उरः पेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते, शिरः पेषम् ॥

भाषार्थः—[परिक्लिश्यमाने] चारों ओर से क्लेश को प्राप्त हो रहा हो, ऐसा स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद हो, तो [च] भी धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—उरःपेषं युध्यन्ते (सम्पूर्ण छाती को कष्ट देते हुये लड़ते हैं), उरः पेषम् । शिरःपेषम् (सम्पूर्ण शिर को कष्ट देते हुये लड़ते हैं), शिरः पेषम् ॥ यहाँ

विकल्प से समास करने का एकपद एवं एकस्वर करना ही प्रयोजन है। रूप तो दोनों पक्षों में एक जैसा ही है॥ उदाहरण में 'उरः' एवं 'शिरः' परिक्लिश्यमान स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद हैं॥

विशिपतिपदिस्कन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥३।४।५६॥

विशिपतिपदिस्कन्दाम् ६।३॥ व्याप्यमानासेव्यमानयोः ७।२॥ स०—उभयत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—द्वितीयान्त उपपदे विशि पति पदि स्कन्दिर् इत्येतेभ्यो धातुभ्यो व्याप्यमाने आसेव्यमाने च गम्यमाने णमुल् प्रत्ययो भवति॥ क्रियया पदार्थानां साकल्येन सम्बन्धो व्याप्तिः। क्रियायाः पौनःपुन्यमासेवा॥ उदा०—व्याप्तौ—गेहानुप्रवेशमास्ते। असमासपक्षे—गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते। आसेवायाम्—गेहानुप्रवेशमास्ते। असमासपक्षे—गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते। पति—गेहानुप्रपातमास्ते, गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते। आसेवायाम्—गेहानुप्रपातमास्ते, गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते। पदि—गेहानुप्रपादमास्ते, गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते। आसेवायाम्—गेहानुप्रपादमास्ते, गेहमनुप्रपादमनुप्रपादमास्ते। स्कन्दि—गेहावस्कन्दमास्ते, गेहं गेहमवस्कन्दमास्ते। आसेवायाम्—गेहावस्कन्दमास्ते, गेहमवस्कन्दमवस्कन्दमास्ते॥

भाषार्थः—[व्याप्यमानासेव्यमानयोः] व्याप्यमान तथा आसेव्यमान गम्यमान हों, तो द्वितीयान्त उपपद रहते [विशिपतिपदिस्कन्दाम्] विशि, पति, पदि तथा स्कन्द धातुओं से णमुल् प्रत्यय होता है॥ उदा०—व्याप्ति में—गेहानुप्रवेशमास्ते (घर-घर में प्रवेश करके रहता है)। असमासपक्ष के सब उदाहरण संस्कृतभाग के अनुसार जानते जावें। आसेवा में—गेहानुप्रवेशमास्ते (घर में प्रवेश कर-करके रहता है)। पति—गेहानुप्रपातमास्ते (घर-घर में जाकर रहता है)। आसेवा में—गेहानु प्रपातमास्ते (घर में जा-जा करके रहता है)। शेष पदि स्कन्द धातुओं से णमुल् होकर भी 'गेहानुप्रपातमास्ते' के समान अर्थ जानें।

व्याप्ति द्रव्यों (=सुबन्त) का धर्म है, अतः व्याप्ति गम्यमान होने पर नित्यवीप्सयोः (८।१।४) से सुबन्त को (=गेहम् को) द्वित्व हुआ है। तथा आसेवा क्रिया का धर्म है, सो आसेवा गम्यमान होने पर क्रियावाची को (अनुप्रवेशम् को) द्वित्व हुआ है। इसी प्रकार उदाहरणों के अर्थों में भी व्याप्ति में द्रव्यों की वीप्सा (घर-घर में), तथा आसेवा में क्रिया की वीप्सा (जा-जाकर) समझनी चाहिये। पूर्ववत् यहाँ भी विकल्प से समास होकर दो रूप बना करेंगे। समासपक्ष में व्याप्ति एवं आसेवा समास के द्वारा ही कहे जाते हैं, अतः समासपक्ष में नित्यवीप्सयोः (८।१।४) से द्वित्व नहीं होता॥

अस्यतितृषोः क्रियान्तरे कालेषु ॥३।४।५७॥

अस्यतितृषोः ६।२॥ क्रियान्तरे ७।१॥ कालेषु ७।३॥ स०—अस्यति० इत्यत्रे-तरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ क्रियान्तरः क्रियामन्तरयति, तस्मिन्, तत्पुरुषः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—कालवाचिषु द्वितीयान्तेषूपपदेषु क्रियान्तरे वर्त्तमानाभ्यां 'असु क्षेपणे' 'ञितृषा पिपासायाम्' इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—द्व्यहात्यासं गाः पाययति । असमासे—द्व्यहमत्यासम् । त्र्यहात्यासं गाः पाययति, त्र्यहमत्यासम् । द्व्यहतर्षं गाः पाययति, द्व्यहं तर्षम् ॥

भाषार्थः—[क्रियान्तरे] क्रिया के अन्तर=व्यवधान में वर्त्तमान [अस्यति-तृषोः] असु तथा तृष धातुओं से [कालेषु] कालवाची द्वितीयान्त शब्द उपपद रहते णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदाहरण में द्व्यहात्यासं द्व्यहतर्षं का अर्थ है—"दो दिन के अन्तर में, एवं दो दिन प्यासे रखकर पानी पिलाता है" । सो दो दिन के अनन्तर पानी पिलाने की क्रिया करने से क्रियान्तर है ही । कालवाची द्वितीयान्त द्व्यह (दो दिन) त्र्यह (तीन दिन) भी उपपद हैं । सो अति पूर्वक असु तथा तृष धातु से णमुल् प्रत्यय हो गया है । पूर्ववत् समास विकल्प से होकर द्व्यहम् अत्यासम् आदि प्रयोग भी बनेंगे ॥

नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥३।४।५८॥

नाम्नि ७।१॥ आदिशिग्रहोः ६।२॥ स०—आदिशिश्च ग्रहश्च आदिशिग्रहौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—द्वितीयायाम्, णमुल्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—द्वितीयान्ते नामशब्द उपपदे आङ्पूर्वकदिशि, ग्रह इत्येताभ्यां धातुभ्यां णमुल् प्रत्ययो भवति ॥ उदा०—नामादेशमाचष्टे । नामग्राहमाचष्टे ॥

भाषार्थः—द्वितीयान्त [नाम्नि] नाम शब्द उपपद रहते [आदिशिग्रहोः] आङ् पूर्वक दिश तथा ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय होता है ॥ उदा०—नामादेशमाचष्टे (नाम लेकर कहता है) । नामग्राहमाचष्टे (नाम लेकर कहता है) ॥

अव्ययेऽयथाभिप्रेताख्याने कृञः क्त्वाणमुलौ ॥३।४।५९॥

अव्यये ७।१॥ अयथाभिप्रेताख्याने ७।१॥ कृञः ५।१॥ क्त्वाणमुलौ १।२॥ स०—यद् यद् अभिप्रेतं यथाभिप्रेतम्, अव्ययीभावः । न यथाभिप्रेतम् अयथाभिप्रेतम्, नञ्तत्पुरुषः । अयथाभिप्रेतस्य आख्यानम् अयथाभिप्रेताख्यानम्, षष्ठीतत्पुरुषः । क्त्वा च णमुल् च क्त्वाणमुलौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥

अर्थः—अयथाभिप्रेताख्याने गम्यमाने अव्यय उपपदे कृञ्धातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—हे ब्राह्मण ! तव पुत्रः शास्त्रार्थे विजयी अभूदिति, किं तर्हि मूर्ख ! नीचैःकृत्याचक्षे, नीचैः कृत्वा । नीचैःकारम् । हे ब्राह्मण ! तव पुत्रेण वधः कृतः, किं तर्हि मूर्ख ! उच्चैःकृत्याचक्षे, उच्चैःकृत्वा । उच्चैःकारम् ॥

भाषार्थः—[अयथाभिप्रेताख्याने] अयथाभिप्रेताख्यान अर्थात् इष्ट का कथन जैसा होना चाहिये वैसा न होना गम्यमान हो, तो [अव्यये] अव्यय शब्द उपपद रहते [कृञः] कृञ् धातु से [क्त्वाणमुलौ] क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदाहरण में कोई किसी से धीरे से कहता है कि तुम्हारा पुत्र शास्त्रार्थ में विजयी हो गया । सो दूसरा कहता है कि मूर्ख ! तुम प्रसन्नता की बात को धीरे से क्यों कहते हो ? इसी प्रकार किसी ने जोर से कहा कि तुम्हारे पुत्र ने हत्या कर दी । तो दूसरे ने कहा कि तुम निन्दित बात को इतने जोर से क्यों बोल रहे हो ? अर्थात् अच्छी बात जोर से कहनी चाहिये, एवं निन्दनीय बात धीरे से कही जाती है । सो यदि हर्ष में जोर से उल्लसित होकर न कहे, तथा निन्दित बात को जोर से हर्ष से बोले, तो यह अयथाभिप्रेताख्यान है । यही उदाहरणों से प्रकट हो रहा है । अतः उच्चैः नीचैः अव्यय उपपद रहते कृ धातु से क्त्वा णमुल् प्रत्यय हो गये हैं ॥ क्त्वा च (२।२।२२) से विकल्प से समास होकर नीचैःकृत्य, नीचैः कृत्वा दो रूप बनेंगे । समासपक्ष में क्त्वा को ल्यप् हो ही जायेगा ॥ णमुल्प्रत्ययान्त नीचैःकारम् में भी तृतीयाप्रभृ० (२।२।२१)से विकल्प में समास होगा । सो पक्ष में नीचैः कारम् भी बनेगा । ऐसा ही आगे के सूत्रों में समझते जावें ॥

यहां से 'कृञः' की अनुवृत्ति ३।४।६० तक, तथा 'क्त्वाणमुलौ' की अनुवृत्ति ३।४।६४ तक जायेगी ॥

तिर्यच्यपवर्गे ॥३।४।६०॥

तिर्यचि ७।१॥ अपवर्गे ७।१॥ अनु०—कृञः, क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तिर्यक्शब्द उपपदे कृञ्धातोरपवर्गे गम्यमाने क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ अपवर्गः=समाप्तिः ॥ उदा०—तिर्यक्कृत्य गतः, तिर्यक् कृत्वा । तिर्यक्कारम् ॥

भाषार्थः—[तिर्यचि] तिर्यक् शब्द उपपद रहते [अपवर्गे] अपवर्ग गम्यमान होने पर कृञ् धातु से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—तिर्यक्कृत्य गतः (सारा कार्य समाप्त करके चला गया), तिर्यक् कृत्वा । तिर्यक्कारम् ॥ अपवर्ग समाप्ति को कहते हैं । पूर्ववत् क्त्वा च (२।२।२२)से विकल्प से समास यहाँ भी जानें । णमुल् में तृतीयाप्रभृती० (२।२।२१) से समास विकल्प से होगा ॥

स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृभ्वोः ॥३।४।६१॥

स्वाङ्गे ७।१॥ तस्प्रत्यये ७।१॥ कृभ्वोः ६।२॥ स०—तस् प्रत्ययो यस्मात् स तस्प्रत्ययः शब्दः, तस्मिन्, बहुव्रीहिः । कृ च भू च कृभ्वौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—तस्प्रत्ययान्ते स्वाङ्गवाचिनि शब्द उपपदे कृ भू इत्येताभ्यां धातुभ्यां क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—मुखतः-कृत्य गतः, मुखतः कृत्वा । मुखतःकारम् । पाणितःकृत्य, पाणितः कृत्वा । पाणितःकारम् । मुखतोभूय गतः, मुखतो भूत्वा । मुखतोभावम् । पाणितोभूय गतः, पाणितो भूत्वा । पाणितोभावम् ॥

भाषार्थः—[तस्प्रत्यये] तस्प्रत्ययान्त [स्वाङ्गे] स्वाङ्गवाची शब्द उपपद हो, तो [कृभ्वोः] कृ भू धातुओं से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—मुखतः-कृत्य गतः (सामने करके चला गया), पाणितःकृत्य (हाथ से करके)। मुखतोभूय गतः (सामने होकर चला गया), पाणितोभूय गतः (हाथ से करके चला गया) ॥ शेष उदाहरण संस्कृतभाग के अनुसार जानें ॥ अपादाने चा० (५।४।४५) से मुखतः आदि में तसि प्रत्यय हुआ है । सो ये तस्प्रत्ययान्त स्वाङ्गवाची शब्द हैं । यहाँ भी समास का विकल्प पूर्ववत् जानें ॥

यहाँ से 'कृभ्वोः' की अनुवृत्ति ३।४।६२ तक जायेगी ॥

नाधार्थप्रत्यये च्व्यर्थे ॥३।४।६२॥

नाधार्थप्रत्यये ७।१॥ च्व्यर्थे ७।१॥ स०—ना च धा च नाधौ, तयोरर्थ इवार्थो येषां ते नाधार्थाः (प्रत्ययाः), द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः । नाधार्थाः प्रत्यया यस्य (समुदायस्य) स नाधार्थप्रत्ययः (समुदायः), तस्मिन्, बहुव्रीहिः । च्वेः अर्थः च्व्यर्थः, तस्मिन्, षष्ठीतत्पुरुषः ॥ अनु०—कृभ्वोः, क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—च्व्यर्थे नाधार्थप्रत्ययान्ते उपपदे कृभ्वोर्धात्वोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः ॥ उदा०—अनाना नाना कृत्वा गतः=नानाकृत्य गतः, नाना कृत्वा; नानाकारम् । विनाकृत्य, विना कृत्वा; विनाकारम् । अनाना नाना भूत्वा गतः=नानाभूय, नाना भूत्वा; नाना-भावम् । विनाभूय, विना भूत्वा; विनाभावम् । धार्थप्रत्ययान्ते—अद्विधा द्विधा कृत्वा गतः =द्विधाकृत्य, द्विधा कृत्वा । द्विधाकारम् । द्वैधंकृत्य, द्वैधं कृत्वा; द्वैधंकारम् । अद्विधा द्विधा भूत्वा गतः=द्विधाभूय, द्विधा भूत्वा; द्विधाभावम् । द्वैधंभूय, द्वैधं भूत्वा; द्वैधंभावम् ॥

भाषार्थः—[च्व्यर्थे] च्व्यर्थ में वर्त्तमान [नाधार्थप्रत्यये] नाधार्थप्रत्ययान्त शब्द उपपद हों, तो कृ भू धातुओं से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय होते हैं ॥ उदा०—नानाकृत्य गतः (जो अनेक प्रकार का नहीं उसे अनेक प्रकार का बनाकर चला

गया)। विनाकृत्य (जो छोड़ने योग्य नहीं उसको छोड़ कर)। नानाभूय (जो भिन्न प्राकर का नहीं वह भिन्न प्रकार का होकर)। धार्थप्रत्ययान्त उपपदवाले— द्विधाकृत्य (जो दो प्रकार का नहीं उसे दो प्रकार का बनाकर)। द्वैधंकृत्य (जो दो प्रकार का नहीं उसे दो प्रकार का बनाकर)। शेष छोड़ दिये गये उदाहरण संस्कृत-भाग के अनुसार जानें। यहाँ केवल अर्थप्रदर्शनार्थ ही उदाहरण दिये हैं॥ च्वि का अर्थ अभूततद्भाव है, अर्थात् जो नहीं था वह हो गया॥ विनञ्भ्यां नानाञौ न सह (५।२।२७) से नाना विना में ना नाञ् प्रत्यय हुये हैं। सो ये नाप्रत्ययान्त शब्द हैं। संख्याया विधार्थे धा (५।३।४२) से द्विधा में धा प्रत्यय हुआ है। द्वित्र्योश्च धमुञ् (५।३।४५) से द्वैधं में धमुञ् प्रत्यय हुआ है। सो ये द्वैधं आदि धाप्रत्ययान्त शब्द हैं। इनके उपपद रहते कृ भू धातु से क्त्वा णमुल परे रहते भू को 'भौ' वृद्धि, तथा आवादेश होकर भाव् अम्=भावम् बना है॥

तूष्णीमि भुवः॥३।४।६३॥

तूष्णीमि ७।१॥ भुवः ५।१॥ अनु०—क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अर्थः—तूष्णींशब्द उपपदे भूधातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा०—तूष्णींभूय गतः, तूष्णीं भूत्वा। तूष्णींभावम्॥

भाषार्थः—[तूष्णीमि] तूष्णीम् शब्द उपपद हो, तो [भुवः] भू धातु से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ उदा०—तूष्णींभूय गतः (चुप होकर चला गया), तूष्णीं भूत्वा; तूष्णींभावम्॥ पूर्ववत् यहाँ भी क्त्वा च (२।२।२२) एवं तृतीयाप्रभृ० (२।२।२१) से समास का विकल्प जानें॥

यहाँ से 'भुवः' की अनुवृत्ति ३।४।६४ तक जायेगी॥

अन्वच्यानुलोम्ये॥३।४।६४॥

अन्वचि ७।१॥ आनुलोम्ये ७।१॥ अनु०—भुवः, क्त्वाणमुलौ, धातोः, प्रत्ययः, परश्च॥ अनुलोमस्य भावः आनुलोम्यम्, गुणवचनब्राह्मणा० (५।१।१२३) इति ष्यञ्प्रत्ययः॥ अर्थः—अन्वक्शब्द उपपदे आनुलोम्ये=आनुकूल्ये गम्यमाने भूधातोः क्त्वाणमुलौ प्रत्ययौ भवतः॥ उदा०—अन्वग्भूयास्ते, अन्वग्भूत्वा। अन्वग्भावम्॥

भाषार्थः—[आनुलोम्ये] आनुलोम्य=अनुकूलता गम्यमान हो, तो [अन्वचि] अन्वक् शब्द उपपद रहते भू धातु से क्त्वा णमुल् प्रत्यय होते हैं॥ उदा०—अन्वग्भूयास्ते (अनुकूल बनकर रहता है), अन्वग् भूत्वा। अन्वग्भावम्॥

शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्॥३।४।६५॥

शक···र्थेषु ७।३॥ तुमुन् १।१॥ स०—अस्ति अर्थो येषां तेऽस्त्यर्थाः, बहुव्रीहिः।

शकश्च धृषश्च ज्ञाश्च ग्लाश्च घटश्च रभश्च लभश्च क्रमश्च सहश्च अर्हश्च अस्त्यर्थाश्च शक···स्त्यर्थाः, तेषु, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—शकादिषूपपदेषु धातुमात्रात् तुमुन् प्रत्ययो भवति ॥ अक्रियार्थोपपदार्थोऽयमारम्भः ॥ **उदा०**—शक्नोति भोक्तुम् । धृष्णोति भोक्तुम् । जानाति पठितुम् । ग्लायति गन्तुम् । घटते शयितुम् । आरभते लेखितुम् । लभते खादितुम् । प्रक्रमते रचयितुम् । उत्सहते भोक्तुम् । अर्हति पाठयितुम् । अस्त्यर्थेषु—अस्ति भोक्तुम् । भवति कर्त्तुम् । विद्यते भोक्तुम् ॥

भाषार्थः—[शकधृ···र्थेषु] शक, धृष, ज्ञा, ग्ला, घट, रभ, लभ, क्रम, सह, अर्ह तथा अस्ति अर्थवाली धातुओं (=भवति विद्यते आदि) के उपपद रहते धातुमात्र से [तुमुन्] तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ यहाँ तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां० (३।३।१०) से तुमुन् प्राप्त ही था। पुनर्विधान क्रियार्थक्रिया उपपद न हो, तो भी तुमुन् हो जाये, इसलिये है ॥ उदा०—शक्नोति भोक्तुम् (खाने में कुशल - प्रवीण है) । धृष्णोति भोक्तुम् (खाने में कुशल है) । जानाति पठितुम् (पढ़ने में प्रवीण है) । ग्लायति गन्तुम् (जाने में अशक्त है) । घटते शयितुम् (सोने में होशियार है) । आरभते लेखितुम् (लिखना आरम्भ करता है) । लभते खादितुम् (भोजन प्राप्त करता है) । प्रक्रमते रचयितुम् (रचना आरम्भ करता है) । उत्सहते भोक्तुम् (भोजन करने में प्रवृत्त होता है)। अर्हति पाठयितुम् (पढ़ाने में कुशल है)। अस्त्यर्थकों के उपपद रहते—अस्ति भोक्तुम् (भोजन है) । भवति कर्त्तुम् (करना है) । विद्यते भोक्तुम् (भोजन है) ॥

यहाँ से 'तुमुन्' की अनुवृत्ति ३।४।६६ तक जायेगी ॥

पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु ॥३।४।६६॥

पर्याप्तिवचनेषु ७।३॥ अलमर्थेषु ७।३॥ स०—पर्याप्तिरुच्यते यैस्ते पर्याप्तिवचनाः (शब्दाः) अलमादयः ॥ अलमर्थो येषां ते अलमर्थाः, तेषु, बहुव्रीहिः ॥ अनु०—तुमुन्, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ **अर्थः**—अलमर्थेषु पर्याप्तिवचनेषूपपदेषु धातोस्तुमुन् प्रत्ययो भवति ॥ **उदा०**—पर्याप्तो भोक्तुम् । समर्थो भोक्तुम् । अलं भोक्तुम् ॥

भाषार्थः—[अलमर्थेषु] अलम् अर्थ=सामर्थ्य अर्थवाले [पर्याप्तिवचनेषु] परिपूर्णतावाची शब्दों के उपपद रहते धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है ॥ उदा०-पर्याप्तो भोक्तुम् (खाने में समर्थ है) । समर्थो भोक्तुम् । अलं भोक्तुम् ॥ पर्याप्ति अन्यूनता अर्थात् परिपूर्णता को कहते हैं । यहाँ परिपूर्णता दो प्रकार से सम्भव है,- भोजन के आधिक्य से, अथवा भोजन करनेवाले की समर्थता से । यहाँ भोक्ता के सामर्थ्य का ग्रहण हो, अतः 'अलमर्थेषु' को पर्याप्तिवचनेषु का विशेषण बनाया है ॥

कर्त्तरि कृत् ॥३।४।६७॥

कर्त्तरि ७।१॥ कृत् १।१॥ अनु०- धातोः, प्रत्ययः ॥ अर्थः—अस्मिन् धात्वधिकारे कृत्संज्ञकाः प्रत्ययाः कर्त्तरि कारके भवन्ति ॥ उदा०—कर्त्ता, कारकः, नन्दनः, ग्राही, पचः ॥

भाषार्थः—इस धातु के अधिकार में सामान्यविहित [कृत्] कृत् संज्ञक प्रत्यय [कर्त्तरि] कर्त्ता कारक में होते हैं ॥

यह सूत्र सामान्य करके जहाँ कृत् प्रत्यय कहे हैं, उनको कर्त्ता में विधान करता है। जहाँ किसी विशेष कारक में कोई कृत् प्रत्यय कहा है, वहाँ यह सूत्र नहीं लगेगा। जैसे कि आढ्यसुभग० (३।२।५६) से करण में ख्युन् कहा है। सो वह करण में ही होगा, इस सूत्र से कर्त्ता में नहीं ॥ कृदतिङ् (३।१।९३) से धात्वधिकार में विहित प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है ॥ उदाहरण में तृच ण्वुल् आदि कर्त्ता में हुये हैं ॥

यहाँ से 'कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।४।६६ तक जायेगी ॥

भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा ॥३।४।६८॥

भव्य ... पात्याः १।३॥ वा अ० ॥ स०—भव्य० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—कर्त्तरि, प्रत्ययः ॥ अर्थः—भव्यादयः शब्दाः कृत्यप्रत्ययान्ताः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते ॥ कृत्यप्रत्ययान्तत्वात् तयोरेव कृत्य० (३।४।७०) इत्यनेन भावकर्मणोः प्राप्ताः कर्त्तरि वा निपात्यन्ते। पक्षे यथाप्राप्तं भावे कर्मणि च भवन्ति ॥ उदा०—भवत्यसौ भव्यः, भव्यमनेन। गेयो माणवकः साम्नाम्, गेयानि माणवकेन सामानि। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य, प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः। उपस्थानीयः शिष्यो गुरोः, उपस्थानीयः शिष्येण गुरुः। जायतेऽसौ जन्यः, जन्यमनेन। आप्लवतेऽसौ आप्लाव्यः, आप्लाव्यमनेन। आपतत्यसौ आपात्यः, आपात्यमनेन ॥

भाषार्थः—[भव्य ... पात्याः] भव्य गेयादि कृत्यप्रत्ययान्त शब्द कर्त्ता में [वा] विकल्प से निपातन किये जाते हैं। कृत्यसंज्ञक होने से ये शब्द तयोरेव कृत्य० (३।४।७०) से भाव कर्म में ही प्राप्त थे, कर्त्ता में भी निपातन कर दिया है। सो पक्ष में भाव कर्म में ये शब्द होंगे। गेय, प्रवचनीय, उपस्थानीय में धातु सकर्मक हैं, सो इनसे कर्म में कृत्यप्रत्यय प्राप्त थे, कर्त्ता में निपातन कर दिया है। अतः पक्ष में उनसे भाव में कृत्य प्रत्यय होंगे ॥ उदा०—भव्य (होनेवाला, अथवा इसके द्वारा होने योग्य)। गेयो माणवकः साम्नाम्, गेयानि माणवकेन सामानि (सामवेद के मन्त्रों का गान करनेवाला लड़का, अथवा लड़के के द्वारा गाये जानेवाले सामवेद के मन्त्र)। प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य, प्रवचनीयो गुरुणा स्वाध्यायः (वेद का प्रवचन

करनेवाला गुरु, अथवा गुरु के द्वारा प्रवचन किया जानेवाला वेद)। उपस्थानीयः शिष्यो गुरोः, उपस्थानीयः शिष्येण गुरुः (गुरु के समीप उपस्थित होनेवाला शिष्य, अथवा शिष्य के द्वारा उपस्थित होने योग्य गुरु)। जन्यः, जन्यमनेन (पैदा होनेवाला, अथवा इसके द्वारा पैदा होने योग्य)। आप्लाव्यः, आप्लाव्यमनेन (कूदकर जानेवाला, अथवा इसके द्वारा कूदने योग्य)। आपात्यः, आपात्यमनेन (गिरनेवाला, अथवा इसके द्वारा गिरने योग्य)॥ उदाहरणों में कर्त्ता में प्रत्यय होने पर कर्त्ता अभिहित हो गया है। अतः प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा हुई है, और अनभिहित कर्म में कर्तृकर्मणोः (२।३।६५) से षष्ठी हो गई है। भाव तथा कर्म में प्रत्यय होने पर कर्त्ता अनभिहित होता है। अतः कर्त्ता में कर्तृकरण० (२।३।१८) से तृतीया हो गई है। कर्म अभिहित है, अतः प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा हुई है। सिद्धियां परिशिष्ट में देखें॥

लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ॥३।४।६९॥

लः १।३॥ कर्मणि ७।१॥ च अ०॥ भावे ७।१॥ च अ०॥ अकर्मकेभ्यः ५।३॥ **अनु०**—कर्त्तरि, धातोः॥ **अर्थः**—लः=लकाराः सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः कर्मणि कारके भवन्ति चकारात् कर्त्तरि च, अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो भावे भवन्ति चकारात् कर्त्तरि च॥ द्विश्चकारग्रहणादुभयत्र 'कर्त्तरि' इति सम्बध्यते। अकर्मकग्रहणात् सकर्मका अपि धातव आक्षिप्ता भवन्ति॥ **उदा०**—सकर्मकेभ्यः कर्मणि—पठ्यते विद्या ब्राह्मणेन। कर्त्तरि—पठति विद्यां ब्राह्मणः। अकर्मकेभ्यो भावे—आस्यते देवदत्तेन, हस्यते देवदत्तेन। कर्त्तरि—आस्ते देवदत्तः, हसति देवदत्तः॥

भाषार्थः—सकर्मक धातुओं से [लः] लकार [कर्मणि] कर्मकारक में होते हैं [च] चकार से कर्त्ता में भी होते हैं, और [अकर्मकेभ्यः] अकर्मक धातुओं से [भावे] भाव में होते हैं तथा [च] चकार से कर्त्ता में भी होते हैं॥ दो चकार लगाने से दो बार 'कर्त्तरि' का अनुकर्षण है। सो सकर्मक एवं अकर्मक दोनों धातुओं के साथ कर्त्तरि का सम्बन्ध लगता है॥ सूत्र में 'अकर्मकेभ्यः' कहा है, अतः स्वयमेव 'सकर्मकेभ्यः' का सम्बन्ध कर्मणि के साथ लगता है॥

भाववाच्य कर्मवाच्य कर्तृवाच्य क्या होता है, यह भावकर्मणोः (१।३।१३) सूत्र पर देखें। भाववाच्य कर्मवाच्य में विभक्ति वचन व्यवस्था अनभिहिते (२।३।१) सूत्र पर देखें॥ पठ् धातु सकर्मक है, इसलिये उससे लकार कर्मवाच्य तथा कर्तृवाच्य में हुये हैं। एवं आस् तथा हस् धातु अकर्मक हैं, अतः भाव और कर्त्ता में लकार हुए हैं॥

जिस धातु का कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं है वह अकर्मक, तथा जिसका कर्म के साथ सम्बन्ध है वह सकर्मक धातु होती है॥ पठ् धातु का विद्या कर्म के साथ

सम्बन्ध है अतः वह सकर्मक है। आस, और हस् का कर्म के साथ न सम्बन्ध है न हो सकता है, अतः वे अकर्मक धातु हैं ॥ उदा०—सकर्मकों से कर्म में—पठ्यते विद्या ब्राह्मणेन (ब्राह्मण के द्वारा विद्या पढ़ी जाती है)। कर्त्ता में—पठति विद्यां ब्राह्मणः (ब्राह्मण विद्या पढ़ता है)। अकर्मकों से भाव में—आस्यते देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा बैठा जाता है)। हस्यते देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा हँसा जाता है)। कर्त्ता में—आस्ते देवदत्तः (देवदत्त बैठता है)। हसति देवदत्तः (देवदत्त हँसता है) ॥

यहाँ से 'कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः' की अनुवृत्ति ३।४।७२ तक जायेगी ॥

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥३।४।७०॥

तयोः ७।२॥ एव अ० ॥ कृत्यक्तखलर्थाः १।३॥ स०—खल् अर्थो येषां ते खलर्थाः, बहुव्रीहिः। कृत्याश्च क्तश्च खलर्थाश्च कृत्यक्तखलर्थाः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अनु०**—कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः, प्रत्ययः ॥ **अर्थः**—तयोरेव =भावकर्मणोरेव कृत्यसंज्ञकाः क्तः खलर्थाश्च प्रत्यया भवन्ति। अर्थात् सकर्मकेभ्यो धातुभ्यो विहिता ये कृत्यसंज्ञकाः क्तः खलर्थाश्च प्रत्ययास्ते कर्मणि; अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो विहिताश्च ये कृत्यक्तखलर्थास्ते भावे भवन्ति ॥ **उदा०**—कृत्याः कर्मणि—कर्त्तव्यो घटः कुलालेन, भवता ग्रामो गन्तव्यः। कृत्याः भावे—आसितव्यं भवता शयितव्यं भवता। क्तः कर्मणि—कृतो घटः कुलालेन। क्तो भावे—आसितं भवता, शयितं भवता। खलर्थाः कर्मणि—ईषत्पच ओदनो देवदत्तेन, सुपचः, दुष्पचः। ईषत्पठा विद्या ब्राह्मणेन, सुपठा, दुष्पठा। खलर्थाः भावे—ईषत्स्वपं भवता, सुस्वपम्, दुःस्वपम्। ईषदाढ्यंभवं भवता, स्वाढ्यंभवम्, दुराढ्यंभवम् ॥

भावार्थः—[कृत्यक्तखलर्थाः] कृत्यसंज्ञक प्रत्यय क्त तथा खल् अर्थवाले प्रत्यय [तयोः] भाव और कर्म में [एव] ही होते हैं। अर्थात् सकर्मक धातुओं से विहित जो कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय वे कर्म में होते हैं, तथा अकर्मक धातुओं से विहित जो कृत्य क्त और खलर्थ प्रत्यय वे भाव में होते हैं ॥ उदा०—कृत्यों का कर्म में—कर्त्तव्यो घटः कुलालेन (कुम्हार के द्वारा घड़ा बनाया जाना चाहिये), भवता ग्रामो गन्तव्यः (आपके द्वारा ग्राम को जाया जाना चाहिये)। कृत्यों का भाव में—आसितव्यं भवता (आपके द्वारा बैठा जाना चाहिये), शयितव्यं भवता (आपके द्वारा सोया जाना चाहिये)। क्त का कर्म में—कृतो घटः कुलालेन (कुम्हार के द्वारा घड़ा बनाया गया)। क्त का भाव में—आसितं भवता (आपके द्वारा बैठा गया), शयितं भवता (आपके द्वारा सोया गया)। खलर्थों का कर्म में—ईषत्पच ओदनो देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा चावल पकाया जाना आसान है), सुपचः, दुष्पचः। ईषत्पठा विद्या ब्राह्मणेन (ब्राह्मण के द्वारा विद्या पढ़ा जाना आसान है), सुपठा, दुष्पठा। खलर्थों का भाव में—ईषत्स्वपं भवता (आपके द्वारा सोना आसान है), सुस्वपम्, दुःस्वपम्। ईषदाढ्य-

भवं भवता, स्वाढ्यंभवम्, दुराढ्यंभवम् ।। ईषत्पचः आदि में ईषद्दुःसुषु० (३।३।१२६)से, तथा ईषदाढ्यंभवं में कर्तृकर्मणोश्च० (३।३।१२७) से 'खल्' प्रत्यय हुआ है । आस् शीङ् भू तथा स्वप् अकर्मक धातुयें हैं,सो उनसे भाव में प्रत्यय हुये हैं । तथा पच् पठ् आदि सकर्मक हैं, सो उनसे कर्म में प्रत्यय हुये हैं । कर्त्तव्यम् में तव्यत्तव्यानीयरः (३।१।९६)से तव्य प्रत्यय हुआ है, जिसकी 'कृत्य' संज्ञा कृत्याः (३।१।९५) से हुई है।। भाव कर्म में विभक्ति वचन की व्यवस्था अनभिहिते(२।३।१)सूत्र पर देखें ।।

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ।।३।४।७१।।

आदिकर्मणि ७।१।। क्तः १।१।। कर्त्तरि ७।१।। च अ० ।। स०—आदि चादः कर्म च आदिकर्म, तस्मिन्, कर्मधारयस्तत्पुरुषः ।। अनु०—कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः, प्रत्ययः ।। अर्थः —आदिकर्मणि=क्रियारम्भस्यादिक्षणेऽर्थे विहितः क्तः प्रत्ययः कर्त्तरि भवति, चकाराद्भावकर्मणोरपि भवति ।। उदा०—प्रकृतः कटं देवदत्तः । प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः । कर्मणि—प्रकृतः कटो देवदत्तेन । प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन । भावे—प्रकृतं देवदत्तेन । प्रभुक्तं देवदत्तेन ।।

भाषार्थः—[आदिकर्मणि] क्रिया के आरम्भ के आदि क्षण में विहित जो [क्तः] क्त प्रत्यय वह [कर्त्तरि] कर्त्ता में होता है, [च] तथा चकार से यथाप्राप्त भावकर्म में भी होता है । तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः(३।४।७०)से 'क्त' भाव और कर्म में ही प्राप्त था,कर्त्ता में भी विधान कर दिया है ।। आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या (वा० ३।२।१०२) इस वार्त्तिक से आदिकर्म में क्त प्रत्यय का विधान है, उसी को यहाँ कर्त्ता में कह दिया है ।। उदा०— प्रकृतः कटं देवदत्तः (देवदत्त ने चटाई बनानी प्रारम्भ की) । प्रभुक्त ओदनं देवदत्तः (देवदत्त ने चावल खाना आरम्भ किया) । कर्म में—प्रकृतः कटो देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा चटाई बनाना प्रारम्भ किया गया) । प्रभुक्त ओदनो देवदत्तेन । भाव में—प्रकृतं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा प्रारम्भ किया गया)। प्रभुक्तं देवदत्तेन ।।

यहाँ से 'क्तः कर्त्तरि' की अनुवृत्ति ३।४।७२ तक जायेगी ।।

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ।।३।४।७२।।

गत्यर्था···भ्यः ५।३।। च अ० ।। स०—गतिरर्थो येषां ते गत्यर्थाः, बहुव्रीहिः । गत्यर्थाश्च अकर्मकाश्च श्लिषश्च शीङ् च स्थाश्च आसश्च वसश्च जनश्च रुहश्च जीर्यतिश्च गत्यर्था···जीर्यतयः,तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अनु०—क्तः, कर्त्तरि, कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः, धातोः, प्रत्ययः ।। अर्थः—गत्यर्थेभ्यो धातुभ्योऽक केभ्यः श्लिषादि-

भ्यश्च यः क्तो विहितः स कर्त्तरि भवति, चकाराद् यथाप्राप्तं भावकर्मणोर्भवति ॥ उदा०—गत्यर्थेभ्यः—गतो देवदत्तो ग्रामम्, गतो देवदत्तेन ग्रामः, गतं देवदत्तेन। व्रजितो देवदत्तो ग्रामम्, व्रजितो देवदत्तेन ग्रामः, व्रजितं देवदत्तेन। अकर्मकेभ्यः—ग्लानो देवदत्तः, ग्लानं देवदत्तेन। आसितो देवदत्तः, आसितं देवदत्तेन। श्लिष—उपश्लिष्टा कन्यां माता, उपश्लिष्टा कन्या मात्रा, उपश्लिष्टं भवता। शीङ्—उपशयितो गुरुं देवदत्तः, उपशयितो गुरुर्देवदत्तेन, उपशयितं भवता। स्था—उपस्थितो गुरुं देवदत्तः, उपस्थितो गुरुर्देवदत्तेन, उपस्थितं भवता। आस—उपासितो गुरुं देवदत्तः, उपासितो गुरुर्देवदत्तेन, उपासितं भवता। वस—अनूषितो गुरुं देवदत्तः, अनूषितो गुरुर्देवदत्तेन, अनूषितं भवता। जन—अनुजातः पुत्रः कन्याम्, अनुजाता पुत्रेण कन्या, अनुजातं पुत्रेण। रुह—आरूढो वृक्षं देवदत्तः, आरूढो वृक्षो देवदत्तेन, आरूढं देवदत्तेन। जॄ—अनुजीर्णो देवदत्तो वृषलम्, अनुजीर्णो देवदत्तेन वृषलः, अनुजीर्णं देवत्तेन ॥

भाषार्थः—[गत्यर्था जीर्यतिभ्यः] गत्यर्थक, अकर्मक, एवं श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह तथा जॄ धातुओं से विहित जो क्त प्रत्यय वह कर्त्ता में होता है, [च] चकार से यथाप्राप्त भाव कर्म में भी होता है ॥ श्लिष आदि धातुयें उपसर्ग-सहित होने पर सकर्मक हो जाती हैं। अतः सूत्र में उन का पाठ किया गया है। उदाहरणों में इन धातुओं के सोपसर्ग उदाहरण दिखाये गये हैं ॥ उदा०—गत्यर्थकों से—गतो देवदत्तो ग्रामम् (देवदत्त गांव को गया)। कर्म में—गतो देवदत्तेन ग्रामः (देवदत्त के द्वारा ग्राम को जाया गया)। भाव में—गतं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा जाया गया)। अकर्मकों से—ग्लानो देवदत्तः (देवदत्त ने ग्लानि की), ग्लानं देवदत्तेन देवदत्त के द्वारा ग्लानि की गई)। आसितो देवदत्तः (देवदत्त बैठा), आसितं देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा बैठा गया)। श्लिष—उपश्लिष्टा कन्यां माता (माता ने कन्या का आलिङ्गन किया)। उपश्लिष्टा कन्या मात्रा (माता के द्वारा कन्या का आलिङ्गन किया गया)। उपश्लिष्टं भवता (आपके द्वारा आलिङ्गन किया गया)। शीङ्—उपशयितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु जी के पास रहा)। उपशयितो गुरुर्देवदत्तेन (देवदत्त के द्वारा गुरुजी के पास रहा गया)। उपशयितं भवता (आपके द्वारा रहा गया)। स्था—उपस्थितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु के पास उपस्थित हुआ)। कर्म एवं भाव में उदाहरण संस्कृतभाग में देख लें। आगे से यहाँ अर्थप्रदर्शनार्थ कर्तृ-वाच्य ही दिखायेंगे। आस—उपासितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त ने गुरु की उपासना की)। वस—अनूषितो गुरुं देवदत्तः (देवदत्त गुरु के पास रहा)। जन—अनुजातः पुत्रः कन्याम् (कन्या के पश्चात् पुत्र पैदा हुआ)। रुह—आरूढो वृक्षं देवदत्तः (देवदत्त पेड़ पर चढ़ा)। जॄ—अनुजीर्णो देवदत्तो वृषलम् (देवदत्त ने वृषल=नीच को मार-मार कर क्षीण कर दिया) ॥

दाशगोघ्नौ संप्रदाने ॥३।४।७३॥

दाशगोघ्नौ १।२॥ सम्प्रदाने ७।१॥ स०—दाशश्च गोघ्नश्च दाशगोघ्नौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ **अर्थः**—दाश गोघ्न इत्येतौ कृदन्तौ शब्दौ सम्प्रदाने कारके निपात्येते ॥ कृत्संज्ञकत्वात् कर्त्तरि प्राप्तौ,सम्प्रदाने निपात्येते ॥ 'दाशृ दाने' अस्माद् धातोः पचाद्यच् (३।१।१३४)। दाशन्ति तस्मै इति दाशः । गोघ्न इति टक्प्रत्ययान्तो निपात्यते । गां=दुग्धादिकं[1] घ्नन्ति=प्राप्नुवन्ति[1] यस्मै स गोघ्नोऽतिथिः ॥

भाषार्थः—[दाशगोघ्नौ] **दाश तथा गोघ्न कृदन्त शब्द** [सम्प्रदाने] **सम्प्रदान कारक में निपातन किये जाते हैं ॥ कृदन्त होने से** कर्त्तरि कृत् (३।४।६७)**से कर्त्ता में प्राप्त थे, सम्प्रदान में निपातन कर दिया है ॥ दाशः में दाशृ धातु से पचादि अच् सम्प्रदान कारक में हुआ है । तथा गोघ्नः में गो पूर्वक हन् धातु से टक प्रत्यय निपातन से हुआ है,जो कि प्रकृत सूत्र से सम्प्रदान में हुआ। हन् के 'ह'को कुत्व हो** हन्तेर्ञि० (७।३।५४)**से,** तथा उपधा का लोप गमहनजनखनघसां०(६।४।९८) **से हुआ है ॥** उदा०—**दाशः (जिसके लिये दिया जाता है) । गोघ्नः (गौ का विकार दूध आदि जिसके लिये प्राप्त किया जाता है, ऐसा अतिथि) ॥**

भीमादयोऽपादाने ॥३।४।७४॥

भीमादयः १।३॥ अपादाने ७।१॥ स०—भीम आदिर्येषां ते भीमादयः, बहुव्रीहिः **अर्थः**—भीमादयः शब्दा औणादिकाः, तेऽपादाने कारके निपात्यन्ते ॥ **उदा०**—बिभ्यति जना अस्मात् स भीमः, भीष्मो वा । बिभेत्यस्मादिति भयानकः ॥

भाषार्थः—[भीमादयः] **भीमादि उणादिप्रत्ययान्त शब्द** [अपादाने] **अपादान कारक में निपातन किये जाते हैं ॥ पूर्ववत् कर्त्ता में प्राप्त होने पर अपादान में निपातन हैं ॥** भियः षुग् वा (उणा० १।१४८) **इस उणादिसूत्र से 'ञिभी भये' धातु से मक् प्रत्यय, तथा विकल्प से षुक् आगम होकर भीमः (जिससे लोग डरते हैं), भीष्मः बना है । भयानकः में पूर्ववत् 'भी' धातु से आनकः** शीङ्भियः(उणा०३।८२) **इस उणादिसूत्र से आनक प्रत्यय हुआ है । गुण अयादेश होकर भयानकः बना ॥**

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥३।४।७५॥

ताभ्याम् ५।२॥ अन्यत्र अ० ॥ उणादयः १।३॥ **स०**—उण् आदिर्येषां ते उणादयः, बहुव्रीहिः ॥ **अनु०**—प्रत्ययः ॥ **अर्थः**—उणादयः प्रत्ययास्ताभ्याम्=सम्प्रदाना-

---

१. यहाँ 'हन हिंसागत्योः' धातुपाठ में पढ़े होने से घ्नन्ति का अर्थ प्राप्त करना है । क्योंकि गति के ज्ञान गमन और प्राप्ति तीन अर्थ होते हैं । गौ का अर्थ भी यहाँ निरुक्त के प्रमाण से (नि० २।५) गौ का विकार दूध या चमड़ा आदि है ॥

पादानाभ्यामन्यत्र कारके भवन्ति ।। कृत्संज्ञकत्वात् कर्त्तर्येव प्राप्ते कर्मादिष्वपि विधीयन्ते ।। **उदा०**—कृष्यतेऽसौ=कृषिः । तन्यते इति तन्तुः । वृत्तमिति वर्त्म । चरितमिति चर्म ।।

भाषार्थः—'ताभ्याम्' पद से यहाँ उपर्युक्त सम्प्रदान और अपादान लिये गये हैं ।। [उणादयः] उणादि प्रत्यय [ताभ्याम्] संप्रदान तथा अपादान कारकों से [अन्यत्र] अन्यत्र कर्मादि कारकों में भी होते हैं ।। उणादि प्रत्यय कृदतिङ् (३।१।९३) से कृत्संज्ञक होते हैं । सो कर्त्ता में ही प्राप्त थे, अन्य कारकों में भी विधान कर दिया ।। उदा०—कृषिः (खेती) में इगुपधात् कित् (उणा० ४।१२०) इस उणादिसूत्र से कृष धातु से इन् प्रत्यय तथा इन् को कित्वत् कार्य हुआ है, जो कि प्रकृत सूत्र से कर्त्ता में हुआ । तन्तुः(धागा)में तन् धातु से सितनिगमि०(उणा० १।६९)से तुन् प्रत्यय हुआ है, जो कि प्रकृत सूत्र से कर्म में हुआ है । चर्म वर्त्म की सिद्धि ३।३।२ सूत्र पर देखें ।।

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ।।३।४।७६।।

क्तः १।१।। अधिकरणे ७।१।। च अ० ।। ध्रौव्य···र्थेभ्यः ५।३।। स०—ध्रौव्यञ्च गतिश्च प्रत्यवसानञ्च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानानि, तान्यर्था येषां ते ध्रौव्य···र्थाः, तेभ्यः, द्वन्द्वगर्भो बहुव्रीहिः ।। **अनु०**—धातोः, प्रत्ययः ।। **अर्थः**—ध्रौव्यार्थाः=स्थित्यर्थकाः (अकर्मकाः), प्रत्यवसानार्थाः=अभ्यवहारार्थाः । स्थित्यर्थेभ्यः (अकर्मकेभ्यः) गत्यर्थेभ्यः प्रत्यवसानार्थेभ्यश्च धातुभ्यो यः क्तो विहितः सोऽधिकरणे कारके भवति, चकाराद् यथाप्राप्तं भावकर्मकर्त्तृषु ।। **उदा०**—अकर्मकेभ्योऽधिकरणे—इदमेषामासितम्, इदमेषां स्थितम् । भावे—आसितं तेन, स्थितं तेन । कर्त्तरि—आसितो देवदत्तः, स्थितो देवदत्तः । गत्यर्थेभ्योऽधिकरणे—इदमेषां यातम्,इदमेषां गतम् । कर्मणि—यातो देवदत्तेन ग्रामः, गतो देवदत्तेन ग्रामः । भावे—यातं देवदत्तेन, गतं देवदत्तेन । कर्त्तरि—यातो देवदत्तो ग्रामं,गतो देवदत्तो ग्रामम् । प्रत्यवसानार्थेभ्योऽधिकरणे—इदमेषां भुक्तम् । कर्मणि भुक्त ओदनो देवदत्तेन । भावे—देवदत्तेन भुक्तम् ।।

भाषार्थः—[ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः] ध्रौव्यार्थक=स्थित्यर्थक (अकर्मक) गत्यर्थक तथा प्रत्यवसानार्थक धातुओं से विहित जो [क्तः] क्त प्रत्यय वह [अधिकरणे] अधिकरण कारक में होता है,[च] तथा चकार से यथाप्राप्त भाव कर्म कर्त्ता में भी होता है।। पूर्ववत् ही यहाँ भी अकर्मक धातुओं से क्त कर्त्ता एवं भाव में होगा, तथा सकर्मक धातुओं से कर्त्ता एवं कर्म में होगा, ऐसा जानें ।। गत्यर्थाकर्मकश्लिष० (३।४।७२) से गत्यर्थक तथा अकर्मक धातुओं से विहित क्त कर्त्ता में भी होता है, सो आसितो देवदत्तः, यातो देवदत्तो ग्रामम् आदि कर्त्ता के उदाहरण भी दिये हैं ।

सकर्मक धातुओं से जब कर्म वा सम्बन्ध नहीं होगा, तब वे अकर्मक ही मानी जायंगी, तो भाव में क्त होगा। जैसे कि 'यातं देवदत्तेन' में है ॥ ध्रौव्य अकर्मक धातुओं के उपलक्षण के लिये है, प्रत्यवसानार्थ अभ्यवहारार्थ (खाने-पीने योग्य) को कहते हैं ॥ इदमेषाम् आसितम् (यह इनके बैठने का स्थान), इदमेषां स्थितम् (यह इनके ठहरने का स्थान) यहाँ 'एषां' में अधिकरणवाचिनश्च (२।३।६८) से षष्ठी विभक्ति हुई है ॥

लस्य ॥३।४।७७॥

लस्य ६।१॥ अर्थः—इतोऽग्रे आतृतीयाध्यायपरिसमाप्तेः (३।४।११७) वक्ष्यमाणानि कार्याणि लकारस्यैव स्थाने भवन्ति, इत्यधिकारो वेदितव्यः ॥ लस्येति उत्सृष्टानुबन्धस्य लकारसामान्यस्य निर्देशः। तेन धातोर्विहितस्य लकारमात्रस्य ग्रहणं भवति —लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् इत्येते दश लकारा ॥ अग्र उदाहरिष्यामः ॥

भाषार्थः—[लस्य] 'लस्य' यह अधिकारसूत्र है, पादपर्यन्त जायेगा। यहाँ से आगे जो कार्य कहेंगे, वे लकार के स्थान में हुआ करेंगे, ऐसा जानना चाहिये ॥ 'लस्य' यहां 'ल' का सामान्यनिर्देश है। अतः लस्य से लकारमात्र (दसों लकारों) का ग्रहण होता है ॥

तिप्तस्झिसिप्थस्थमिब्वस्मस्तातांझथासाथांध्वमिड्-
वहिमहिङ् ॥३।४।७८॥

तिप्त..... महिङ् १।१॥ स०—तिप्तस्झि० इत्यत्र समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—लस्य, धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोः तिप्-तस्-झि, सिप्-थस्-थ, मिप्-वस्-मस् (परस्मैपदम्), त-आताम्-झ, थास्-आथाम्-ध्वम्, इट्-वहि-महिङ् (आत्मनेपदम्) इत्येते अष्टादश आदेशाः लस्य=लकारस्य स्थाने भवन्ति॥ तत्र नव आदेशाः परस्मैपदिनां धातूनां, नव च आत्मनेपदिनाम् ॥ उदा०—परस्मैपदिभ्यः—पठति पठतः पठन्ति, पठसि पठथः पठथ, पठामि पठावः पठामः। आत्मनेपदिभ्यः—एधते एधेते एधन्ते, एधसे एधेथे एधध्वे, एधे एधावहे, एधामहे। एवमन्येषु लकारेषूदाहार्यम् ॥

भाषार्थः—लकार=लट्, लिट् आदि के स्थान में [तिप्···महिङ्] तिप् तस् झि आदि १८ प्रत्यय होते हैं। इनमें ९ तिप् तस् आदि परस्मैपदी धातुओं से, तथा शेष ९ आत्मनेपदी धातुओं से होते हैं ॥ पठ् शप् तिप्=पठति बना। पठन्ति की सिद्धि परि० १।१।२ के पचन्ति के समान जानें। पठामि आदि में अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१) से दीर्घ होगा। एध् शप् त=एधते बना। यहां सर्वत्र टित आत्म० (३।४।७९) से टिभाग को एत्व होता है। एधेते, एधेथे की सिद्धि परि० १।१।११

के पचेते के समान जानें। एधन्ते में पठन्ति के समान शप् को पररूप होगा। 'एध् अ थास्=यहाँ थास: से(३।४।८०)से थास् को 'से' होकर एधसे बना है। एधावहे में भी अतो दीर्घो यञि(७।३।१०१)से दीर्घ होगा॥ ये सब आदेश यहाँ लट् के स्थान में हुए हैं। इसी प्रकाश अन्य दसों लकारों के स्थान में भी ये आदेश होंगे, सो जानें॥

टित आत्मनेपदानां टेरे ॥३।४।७९॥

टित: ६।१॥ आत्मनेपदानाम् ६।३॥ टे: ६।१॥ ए लुप्तप्रथमान्तनिर्देश:॥ अनु०—लस्य, धातो:, प्रत्यय:, परश्च॥ अर्थ:—टितो लकारस्य य आत्मनेपदादेशास्तेषां टे: एकारादेशो भवति॥ उदा०—एधते, एधेते॥

भाषार्थ:—[टित:] टित् अर्थात् लट् लिट् लुट् लृट् लेट् लोट् इन छ: लकारों के जो [आत्मनेपदानाम्] आत्मनेपद आदेश 'त आताम् झ' आदि, उनके [टे:] टि भाग को [ए] एकार आदेश हो जाता है॥ टि संज्ञा अचोऽन्त्यादि टि (१।१।६३) से होती है॥

यहाँ से 'टित:' की अनुवृत्ति ३।४।८० तक जायेगी॥

थासस्से ॥३।४।८०॥

थास: ६।१॥ से लुप्तप्रथमान्तनिर्देश:॥ अनु०—टित:, लस्य॥ अर्थ:—टितो लकारस्य य: 'थास्' आदेश: तस्य स्थाने 'से' आदेशो भवति॥ उदा०—एधसे, पचसे॥

भाषार्थ:—टित् ६ लकारों के स्थान में जो [थास:] थास् आदेश, उसके स्थान में [से] 'से' आदेश होता है॥ यहां लट् लकार का ही उदाहरण दिया है। ऐसे ही टित् छहों लकारों में 'से' आदेश होगा, ऐसा जानें॥ एधसे की सिद्धि ३।४।७८ सूत्र में देख लें॥

लिटस्तझयोरेशिरेच् ॥३।४।८१॥

लिट: ६।१॥ तझयो: ६।२॥ एशिरेच् १।१॥ स०—तझ० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्व:। एश् च इरेच् च एशिरेच्, समाहारो द्वन्द्व:॥ अर्थ:—लिडादेशयोस्तझयो: स्थाने यथासङ्ख्यम् एश् इरेच् इत्येतावादेशौ भवत:॥ उदा०—त—पेचे, लेभे। झ—पेचिरे, लेभिरे॥

भाषार्थ:—[लिट:] लिट् के स्थान में जो [तझयो:] त और झ आदेश, उनको यथासङ्ख्य करके [एशिरेच्] एश् तथा इरेच् आदेश होते हैं॥ लिट् लकार में सिद्धि परि० १।२।६ के समान जानें। केवल यहाँ यही विशेष है कि अत एकहल्मध्ये० (६।४।१२०) से अभ्यास का लोप एवं धातु के 'अ' को एत्व हो जाता है॥

यहाँ से 'लिट:' की अनुवृत्ति ३।४।८२ तक जायेगी॥

परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ॥३।४।८२॥

परस्मैपदानाम् ६।३। णलतु ... माः १।३॥ स०—णल० इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिटः ॥ अर्थः—लिडादेशानां परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने यथासंख्यं णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अ, णल्, व, म इत्येते नव आदेशा भवन्ति ॥ उदा०—पपाठ पेठतुः पेठुः, पेठिथ पेठथुः पेठ, पपाठ-पपठ, पेठिव, पेठिम ॥

भावार्थः—लिट् लकार के [परस्मैपदानाम्] परस्मैपदसंज्ञक जो ९ तिबादि आदेश, उनके स्थान में यथासंख्य करके [णल ··· माः] णल् अतुस् आदि ९ आदेश हो जाते हैं ॥ पेठतुः पेठुः आदि में पूर्ववत् अत एकहल्मध्ये अना० (६।४।१२०) से अभ्यास-लोप तथा एत्व होगा ॥ शेष पूर्वनिर्दिष्ट सिद्धियों के अनुसार ही जानें। णलुत्तमो वा (७।१।९१) से उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णित्वत् माना जाता है। अतः णित् पक्ष में अत उपधायाः (७।२।११६) से वृद्धि होकर पपाठ, और अणित् पक्ष में वृद्धि न होकर पपठ बन गया है ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।४।८४ तक जायेगी ॥

विदो लटो वा ॥३।४।८३॥

विदः ५।१॥ लटः ६।१॥ वा अ० ॥ अनु०—परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमा, धातोः ॥ अर्थः—'विद ज्ञाने' इत्यस्माद्धातोः परो यो लट् तस्य परस्मैपदसंज्ञकानां तिबादीनां स्थाने यथासंख्यं णलादयो नव आदेशा विकल्पेन भवन्ति ॥ उदा०—वेद विदतुः विदुः, वेत्थ विदथुः विद, वेद विद्व विद्म। पक्षे लडेव—वेत्ति वित्तः विदन्ति, वेत्सि वित्थः वित्थ, वेद्मि विद्वः विद्मः ॥

भावार्थः—[विदः] 'विद ज्ञाने' धातु से [लटः] लडादेश (तिप् आदि) जो परस्मैपदसंज्ञक उनके स्थान में क्रम से णल् अतुस् आदि ९ आदेश [वा] विकल्प से होते हैं, अर्थात् वर्त्तमानकाल में वेद वेत्ति दोनों प्रयोग होंगे ॥ वेत्ति में खरि च (८।४।५४) से द् तो त् हुआ है ॥ शेष पूर्ववत् ही जानें ॥ उदा०—वेद (जानता है), विदतुः (दोनों जानते हैं), विदुः (जानते हैं)। पक्ष में—वेत्ति (जानता है), वित्तः, विदन्ति ॥

यहाँ से 'लटो वा' की अनुवृत्ति ३।४।८४ तक जायेगी ॥

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥३।४।८४॥

ब्रुवः ५।१॥ पञ्चानाम् ६।३॥ आदितः अ० ॥ आहः १।१॥ ब्रुवः ६।१॥ अनु०—लटो वा, परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः, धातोः ॥ अर्थः—ब्रूञ्धातो-

रुत्तरो यो लट् तस्यादिभूतानां परस्मैपदसंज्ञकानां पञ्चानां तिबादीनां स्थाने यथाक्रमं पञ्चैव णलादय आदेशा विकल्पेन भवन्ति, तत् सन्नियोगेन च ब्रुवः स्थाने आह इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा० —आह आहतुः आहुः, आत्थ आहथुः । पक्षे तिबादय एव— ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति, ब्रवीषि ब्रूथः ॥

भाषार्थः—[ब्रुवः] ब्रू धातु से परे जो लट् लकार, उसके स्थान में जो परस्मैपदसंज्ञक [आदितः] आदि के [पञ्चानाम्] पाँच आदेश (तिप् तस् झि सिप् थस्), उनके स्थान में क्रम से पाँच ही णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस् ये आदेश विकल्प से हो जाते हैं, तथा उन आदेशों के साथ-साथ [ब्रुवः] ब्रूञ् धातु को [आहः] आह आदेश भी हो जाता है ॥ उदाहरण संस्कृतभाग में देखें ॥

लोटो लङ्वत् ॥३।४।८५॥

लोटः ६।१॥ लङ्वत् अ० ॥ लङ इव लङ्वत्, षष्ठ्यन्तात् तत्र तस्येव (५।१।११५) इति वतिः ॥ अर्थः—लोट्लकारस्य लङ्वत् कार्यं भवति ॥ अतिदेशसूत्रमिदम्॥ उदा० —पचताम्, पचतम्, पचत, पचाव, पचाम ॥

भाषार्थः—यह अतिदेशसूत्र है । [लोटः] लोट् लकार को [लङ्वत्] लङ् के समान कार्य हो जाते हैं ॥ लङ्वत् अतिदेश होने से ङित् लकारों को कहे हुए तस्थस्थमिपां० (३।४।१०१) से ताम् तम् त अम् आदेश लोट् को भी हो जाते हैं । सो लोट के तस् को ताम् होकर पचताम्, लोट के थस् को तम् होकर पचतम्, तथा थ को त होकर पचत बना है । इसी प्रकार लङ्वत् अतिदेश होने से पचाव पचाम में नित्यं ङितः (३।४।९९) से ङित् सकारों को कहा हुआ सकारलोप यहाँ भी हो जाता है । पच् शप् व, यहां आडुत्तमस्य पिच्च (३।४।९२) से आट् आगम होकर पच् अ आट् व=पचाव, पचाम बन गया ॥

यहाँ से 'लोटः' की अनुवृत्ति ३।४।९३ तक जायेगी ॥

एरुः ॥३।४।८६॥

एः ६।१॥ उः १।१॥ अनु० —लोटः ॥ अर्थः—लोडादेशानाम् इकारस्य स्थाने उकारादेशो भवति ॥ उदा०—पचतु, पचन्तु ॥

भाषार्थः—लोट् लकार के जो तिप् आदि आदेश, उनके [एः] इकार को [उः] उकार आदेश होता है ॥ ति तथा अन्ति (झि) लोडादेश हैं, सो इनके इ को उ हो गया है ॥ लोडादेश सिप् तथा मिप् के इकार को उकार नहीं होता, क्योंकि इन्हें 'हि' और 'नि' आदेश विधान किये हैं ॥

सेर्ह्यपिच्च ॥३।४।८७॥

सेः ६।१॥ हि लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अपित् १।१॥ च अ० ॥ स०—न पित् अपित्, नञ्तत्पुरुषः ॥ अनु०—लोटः ॥ अर्थः—लोडादेशस्य सिपः स्थाने 'हि' इत्ययमादेशो भवति, अपिच्च भवति स आदेशः ॥ उदा०—लुनीहि, पुनीहि, राध्नुहि, तक्ष्णुहि ॥

भाषार्थः—लोडादेश जो [सेः] सिप् उसके स्थान में [हि] हि आदेश होता है, [च] और वह [अपित्] अपित् भी होता है ॥ सिप् पित् है, सो उसके स्थान में हुआ आदेश 'हि' भी स्थानिवद्भाव से पित् माना जाता, अतः अपित् कर दिया है ॥

यहाँ से 'सेर्ह्यपित्' की अनुवृत्ति ३।४।८८ तक जायेगी ॥

वा छन्दसि ॥३।४।८८॥

वा अ० ॥ छन्दसि ७।१॥ अनु०—सेर्ह्यपित्, लोटः ॥ अर्थः—पूर्वसूत्रेण सिपः स्थाने यो हिर्विधीयते, स वेदविषये विकल्पेनाऽपिद् भवति ॥ पूर्वेण नित्यमपिति प्राप्ते विकल्प्यते ॥ उदा० —युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः (यजु०४।१६)। जुहोधि, जुहुधि । प्रीणाहि, प्रीणीहि ॥

भाषार्थः—पूर्व सूत्र से जो लोट् को हि विधान किया है, उसको [छन्दसि] वेदविषय में [वा] विकल्प से अपित् होता है ॥ पूर्वसूत्र से नित्य अपित् प्राप्त था, विकल्प कर दिया है ॥ युयोधि में व्यत्ययो बहुलम् (३।१।८५) से व्यत्यय होने से शप् को श्लु हो गया है । अतः श्लौ (६।१।१०) से द्वित्व भी हो जायेगा । जुहुधि की सिद्धि परि० ३।३।१६६ में देखें । पित् पक्ष में जुहोधि युयोधि गुण होकर बनेगा, तथा अपित् पक्ष मे जुहुधि बनेगा । प्रीणीहि में अपित् पक्ष में ङित्वत् (१।२।४) होने से ई हल्यघोः (६।४।११३) से ईत्व हुआ है । पित् पक्ष में ईत्व न होकर प्रीणाहि बनेगा ॥

मेर्निः ॥३।४।८९॥

मेः ६।१॥ निः १।१॥ अनु०—लोटः ॥ अर्थः—लोडादेशस्य मिपः स्थाने 'निः' इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा०—पठानि, पचानि ॥

भाषार्थः—लोडादेश जो [मेः] मिप् उसके स्थान में [निः] नि आदेश हो जाता है ॥ आडुत्तमस्य० (३।४।९२) से आट् आगम होकर सिद्धि जानें ॥

आमेतः ॥३।४।९०॥

आम् १।१॥ एतः ६।१॥ अनु०—लोटः ॥ अर्थः—लोट्सम्बन्धिन एकारस्य स्थाने 'आम्' आदेशो भवति ॥ लोटष्टित्वात् टित आत्मनेपदा० (३।४।७९) इति सूत्रेण यदेत्वं भवति, तस्येह 'आम्' विधीयते ॥ उदा०—पचताम्, पचेताम्, पचन्ताम् ॥

भाषार्थः—लोट् सम्बन्धी जो [एतः] एकार उसे [आम्] आदेश होता है ॥ लोट् के टित् होने से टित आत्मनेपदा० (३।४।७९) से जो टि भाग को एत्व प्राप्त था, उसी को यह सूत्र आम् करता है।

यहाँ से 'एतः' की अनुवृत्ति ३।४।९१ तक जायेगी ॥

सवाभ्यां वामौ ॥३।४।९१॥

सवाभ्यां ५।२॥ वामौ १।२॥ स०—सश्च वश्च सवौ, ताभ्याम्, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ वश्च अम् च वामौ, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—एतः, लोटः ॥ अर्थः—सकारवकाराभ्यामुत्तरस्य लोटसम्बन्धिन एकारस्य स्थाने यथासंख्यम् व अम् इत्येतावादेशौ भवतः ॥ उदा०—पचस्व। पचध्वम् ॥

भाषार्थः—[सवाभ्याम्] सकार वकार से उत्तर लोट् सम्बन्धी एकार के स्थान में यथासङ्ख्य करके [वामौ] व और अम् आदेश हो जाते हैं ॥ पच् शप् थास्, यहाँ थासः से(३।४।८०) से थास् को 'से' होकर 'पचसे' बना। उस स् से उत्तर ए को व होकर पचस्व (तू पका) बन गया। 'पच् शप् ध्वम्', यहाँ टित आत्मने० (३।४।७९) से टि भाग को ए होकर पचध्वे बना। अब व् से उत्तर ए को इस से अम् होकर पचध्वम् बन गया ॥

आडुत्तमस्य पिच्च ॥३।४।९२॥

आट् १।१॥ उत्तमस्य ६।१॥ पित् १।१॥ च अ० ॥ अनु० - लोटः ॥ अर्थः—लोट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्याडागमो भवति, स चोत्तमपुरुषः पिद् भवति ॥ उदा०—करवाणि, करवाव, करवाम ॥

भाषार्थः—लोट् सम्बन्धी [उत्तमस्य] उत्तम पुरुष को [आट्] आट् का आगम हो जाता है, [च] और वह उत्तम पुरुष [पित्] पित् भी माना जाता है ॥

यहाँ से 'उत्तमस्य' की अनुवृत्ति ३।४।९३ तक जायेगी ॥

एत ऐ ॥३।४।९३॥

एतः ६।१॥ ऐ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ॥ अनु०—उत्तमस्य, लोटः ॥ अर्थः—लोटसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य य एकारस्तस्य स्थाने 'ऐ' इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा०—करवै, करवावहै, करवामहै ॥

भाषार्थः—लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष का जो [एतः] एकार, उसके स्थान में [ऐ] 'ऐ' आदेश होता है ।। परि० ३।४।९२ के समान सब कार्य होकर 'करव् आट् इट्' रहा । टित आत्म० (३।४।७९) से एत्व, तथा उस 'ए' को प्रकृतसूत्र से 'ऐ' एवं आटश्च (६।१।८७) से वृद्धि एकादेश होकर करवै आदि की सिद्धि जानें ।।

लेटोऽडाटौ ।।३।४।९४।।

लेटः ६।१।। अडाटौ १।२।। स०—अडाटौ इत्यत्रेतरेतरयोगद्वन्द्वः ।। अर्थः—लेटोऽट् आट् इत्येतौ आगमौ पर्यायेण भवतः ।। उदा०—जीवाति शरदः शतम् । भवति, भवाति, भविषति, भविषाति ।।

भाषार्थः—[लेटः] लेट् लकार को [अडाटौ] अट् आट् का आगम पर्याय से होता है ।। सिद्धि परि० ३।१।३४ में देखें ।।

यहाँ से 'लेटः' की अनुवृत्ति ३।४।९८ तक जायेगी ।।

आत ऐ ।।३।४।९५।।

आतः ६।१।। ऐ लुप्तप्रथमान्तनिर्देशः ।। अनु०—लेटः ।। अर्थः—लेट्सम्बन्धिन आकारस्य स्थाने ऐकारादेशो भवति ।। आत्मनेपदेषु 'आताम् आथाम्' इत्यत्र आकारो विद्यते, तस्येह कार्यमुच्यते ।। उदा०—एधिषैते एधिषैते, एधैते एधैते । एधिषैथे एधिषैथे, एधैथे एधैथे ।।

भाषार्थः—लेट् सम्बन्धी जो [आतः] आकार उसके स्थान में [ऐ] ऐकारादेश होता है ।। आत्मनेपद के आताम् आथाम् में आकार है, उसी आकार को यहां ऐ होता है ।।

यहाँ से 'ऐ' की अनुवृत्ति ३।४।९६ तक जायेगी ।।

वैतोऽन्यत्र ।।३।४।९६।।

वा अ० ।। एतः ६।१।। अन्यत्र अ० ।। अनु०—ऐ, लेटः ।। अर्थः—लेट्सम्बन्धिन एकारस्य स्थाने वा ऐकारादेशो भवत्यन्यत्र, अर्थात् 'आत ऐ' इत्येतत्सूत्रविषयं वर्जयित्वा ।। उदा०—एधतै एधातै एधते एधाते । एधिषतै एधिषातै एधिषते एधिषाते । एधन्तै एधान्तै एधन्ते एधान्ते एधिषन्तै एधिषान्तै एधिषन्ते एधिषान्ते । एधसै एधासै एधसे एधासे । एधिषसै एधिषासै एधिषसे एधिषासे । एधध्वै एधाध्वै एधध्वे एधाध्वे । एधिषध्वै एधिषाध्वै एधिषध्वे एधिषाध्वे । एधै, एधे । एधिषै, एधिषे । एधवहै एधावहै, एधवहे एधावहे । एधिषवहै एधिषावहै एधिषवहे एधिषावहे । एधमहै एधामहै एधमहे एधामहे । एधिषमहै एधिषामहै एधिषमहे एधिषामहे । अहमेव पशूनामीशै, सप्ताहानि शयै, मदग्र एव वो ग्रहा गृह्यान्तै, मद्देवतान्येव वः पात्राणि उच्यान्तै । न च भवति—यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।।

भाषर्थ:——लेट् सम्बन्धी जो [एतः] एकार उसके स्थान में ऐकारादेश [वा] विकल्प से होता है।[अन्यत्र]अन्यत्र अर्थात् आत ऐ(३।४।९५)सूत्र के विषय को छोड़ कर ॥ प्रक्रिया दर्शाने के लिए संस्कृतभाग में 'एध' धातु के सब रूप दे दिये गये हैं ॥

यहाँ से 'वा' की अनुवृत्ति ३।४।९८ तक जायेगी ॥

इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥३।४।९७॥

इतः ६।१॥ च अ० ॥ लोपः १।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ अनु०—वा, लेटः ॥ अर्थः—परस्मैपदविषयस्य लेट्सम्बन्धिन इकारस्य वा लोपो भवति ॥ उदा०—भविषत् भविषात्, भाविषत् भाविषात्, भवत् भवात्। प्रचोदयात्। जोषिषत्। तारिषत्। पक्षे—भविषति भविषाति, भाविषति भाविषाति, भवति भवाति। पताति विद्युत्॥

भाषार्थः—[परस्मैपदेषु] परस्मैपद विषय में लेट् लकार सम्बन्धी [इतः]इकार का [च]भी विकल्प से[लोपः]लोप हो जाता है॥ सिद्धि परि० ३।१।३४ में देखें॥

यहाँ से 'लोपः' की अनुवृत्ति ३।४।१०० तक जायेगी ॥

स उत्तमस्य ॥३।४।९८॥

सः ६।१॥ उत्तमस्य ६।१॥ अनु०—लोपः, लेटः, वा ॥ अर्थः—लेट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्थस्य सकारस्य वा लोपो भवति ॥ उदा०—भविषाव, भविषाम। पक्षे—भविषावः, भविषामः ॥

भाषार्थः—लेट् सम्बन्धी [उत्तमस्य] उत्तम पुरुष के [सः] सकार का लोप विकल्प से हो जाता है॥ विस्तार से लेट् के रूप सूत्र ३।१।३४ पर दर्शाये हैं, वहीं देख लें। सिद्धि भी परि० ३।१।३४ में देखें॥

यहाँ से 'स उत्तमस्य' की अनुवृत्ति ३।४।९९ तक जायेगी ॥

नित्यं ङितः ॥३।४।९९॥

नित्यम् १।१॥ ङितः ६।१॥ अनु०—स उत्तमस्य, लोपः, लस्य ॥ अर्थः—ङित्लकारसम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य नित्यं लोपो भवति ॥ उदा०—अपचाव, अपचाम ॥

भाषार्थः—[ङितः] ङित् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का [नित्यम्] नित्य ही लोप हो जाता है॥ लङ् लिङ् लुङ् लृङ् ये चार ङित् लकार हैं। वस् मस् के सकार का नित्य लोप होकर लङ् लकार में 'अट् पच् अ व' रहा। अतो दीर्घो यञि (७।३।१०१) से दीर्घ होकर अपचाव अपचाम बना है॥

यहाँ से 'नित्यम्' की अनुवृत्ति ३।४।१०० तक, तथा 'ङितः' की अनुवृत्ति ३।४।१०१ तक जायेगी ॥

इतश्च ॥३।४।१००॥

इत: ६।१॥ च अ० ॥ अनु०—नित्यं ङित:, लोप:, लस्य ॥ अर्थ:—ङित्-लकारसम्बन्धिन इकारस्य नित्यं लोपो भवति ॥ उदा०—अपचत्, अपचन्, अपचम्। अपठीत् ॥

भाषार्थ:—ङित् लकार सम्बन्धी [इत:] इकार का [च] भी नित्य ही लोप हो जाता है ॥ अन्ति के इकार का लोप होकर 'अन्त्' रहा । पुन: संयोगान्तस्य० (८।२।२३) से तकार लोप होकर 'अपचन्' लङ् लकार में बना है । अपठीत् की सिद्धि परि० १।१।१ में देखें ॥

तस्थस्थमिपां तांतंतामः ॥३।४।१०१॥

तस्थस्थमिपाम् ६।३॥ तांतंताम: १।३॥ स०—तश्च थश्च थश्च मिप् च तस्थस्थमिप:, तेषां, इतरेतरयोगद्वन्द्व: । ताम् च तम् च तश्च अम् च तांतंताम:, इतरेतरयोगद्वन्द्व: ॥ अनु०—ङित:, लस्य ॥ अर्थ:—ङित्लकारसम्बन्धिनां तस् थस् थ मिप् इत्येतेषां स्थाने यथासंख्यं ताम् तम् त अम् इत्येते आदेशा भवन्ति ॥ उदा०—अपचताम्, अपचतम्, अपचत, अपचम् ॥

भाषार्थ—ङित् लकार सम्बन्धी [तस्थस्थमिपाम्] तस्, थस्, थ, मिप् के स्थान में यथासंख्य करके [तांतंताम:] ताम्, तम्, त और अम् आदेश होते हैं ॥ लङ् लकार में अपचताम् आदि बने हैं । सिद्धियों में कुछ विशेष नहीं है ॥

लिङः सीयुट् ॥३।४।१०२॥

लिङ: ६।१॥ सीयुट् १।१॥ अर्थ:—लिङादेशानां सीयुड् आगमो भवति ॥ उदा०—पचेत, पचेयाताम्, पचेरन् ॥

भाषार्थ:—[लिङ:] लिङ् के आदेशों को [सीयुट्] सीयुट् आगम होता है ॥ पच् शप् सीयुट् सुट् त=पच् अ सीय् स् त, इस अवस्था में लिङ: सलोपो० (७।२।७९) से दोनों सकारों का लोप होकर—एच ईय् त रहा । आद् गुण: (६।१।८४) तथा लोपो व्यो० (६।१।६४) लगकर पचेत बन गया । पचेरन् में झस्य रन् (३।४।१०५) से झ के स्थान में रन् आदेश हो गया है । शेष पूर्ववत् हैं ॥

यहां से 'लिङ:' की अनुवृत्ति ३।४।१०८ तक जायेगी ॥

यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ॥३।४।१०३॥

यासुट् १।१॥ परस्मैपदेषु ७।३॥ उदात्त: १।१॥ ङित् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—लिङ: ॥ अर्थ:—परस्मैपदविषयस्य लिङो यासुडागमो भवति, स चोदात्तो भवति ङिच्च ॥ उदा०—कुर्यात् कुर्याताम् कुर्यु: ॥

भाषार्थ: — [परस्मैपदेषु] परस्मैपदविषयक लिङ् लकार को [यासुट्] यासुट् का आगम होता है, [च] और वह [उदात्त:] उदात्त तथा [ङित्] ङित्वत् भी माना जाता है ॥ आगम अनुदात्त होते हैं, अत: यासुट को अनुदात्त प्राप्त था। सो उदात्त कहा है ॥

यहाँ से 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्त:' की अनुवृत्ति ३।४।१०४ तक जायेगी ॥

किदाशिषि ॥३।४।१०४॥

कित् १।१॥ आशिषि ७।१॥ अनु०—यासुट् परस्मैपदेषूदात्त:, लिङ: ॥ अर्थ: —आशिषि विहितस्य परमैपदविषस्य लिङो यासुड् आगमो भवति, स किदुदात्तश्च भवति ॥ उदा० —उच्यात् उच्यास्ताम्। इज्यात् इज्यास्ताम्। जागर्यात् जागर्यास्ताम् ॥

भाषार्थ: —[आशिषि] आशीर्वाद में विहित परस्मैपदसंज्ञक लिङ् को यासुट् आगम होता है, वह [कित्] कित् और उदात्त होता है ॥ कित् तथा ङित् दोनों में गुणप्रतिषेध कार्य समान हैं। किन्तु यहाँ कित् करने के विशेष प्रयोजन ये हैं कि—कित् परे रहते संप्रसारण तथा जागृ धातु को गुण हो जावे। वच् तथा यज् धातु को यासुट् के कित् होने से वचिस्वपियजा० (६।१।१५) से सम्प्रसारण होकर उच्यात् इज्यात् बनता है। तथा जागर्यात् में यासुट् के कित् करने से जाग्रोऽविचि० (७।३।८५) से गुण हो जाता है। क्योंकि वहाँ ङित् परे रहते गुणनिषेध कहा है, सो कित् परे रहते हो ही जायेगा। उच्यास्ताम् आदि में तस्थस्थमिपां० (३।४।१०१) से तस् को ताम् हुआ है ॥

झस्य रन् ॥३।४।१०५॥

झस्य ६।१ रन् १।१॥ अनु०—लिङ: ॥ अर्थ:—लिङादेशस्य झस्य 'रन्' आदेशो भवति ॥ उदा०—पचेरन्, यजेरन् ॥

भाषार्थ:—लिङादेश जो [झस्य] झ उसको [रन्] रन् आदेश होता है ॥

इटोऽत् ॥३।४।१०६॥

इट: ६।१॥ अत् १।१॥ अनु०—लिङ: ॥ अर्थ:—लिङादेशस्य इट: स्थाने 'अत्' इत्ययमादेशो भवति ॥ उदा०—पचेय, यजेय, कृषीय ॥

भाषार्थ:—लिङ् आदेश [इट:] 'इट्' (उत्तमपुरुष का एकवचन) के स्थान में [अत्] 'अत्' आदेश होता है ॥ 'पच् शप् सीय् इट्' पूर्ववत् होकर लिङ: सलोपो० (७।२।७६) से सकार लोप:, तथा प्रकृत सूत्र से इट् के स्थान में अत् आदेश होकर—पच ईय् अ = पचेय बन गया ॥ आशीर्लिङ् में कृ सीय् इट = कृ सीय् अ = कृषीय बना। यहाँ 'अत्' के 'त्' की इत्संज्ञा का निषेध नहीं होता ॥

सुट् तिथोः ॥३।४।१०७॥

सुट् १।१॥ तिथोः ६।२॥ स०—तिश्च थ च तिथौ, तयोः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङ्सम्बन्धिनोस्तकारथकारयोः 'सुड्' आगमो भवति ॥ उदा०—एधिषीष्ट, एधिषीष्ठाः। भूयात्, भूयास्ताम्। पचेत ॥

भाषार्थः— लिङ् सम्बन्धी [तिथोः] तकार और थकार को [सुट्] सुट् का आगम होता है ॥ ति में इकार उच्चारणार्थ है। परस्मैपद के थस् एवं थ को तस्थस्थमिपां०(३।४।१०१)से क्रम से तम् त आदेश हो जाते हैं। अतः परस्मैपद के थकार के आगम का उदाहरण नहीं देखा जा सकता॥ सुट् आगम तकार थकार मात्र को कहा है। अतः विधिलिङ् एवं आशीर्लिङ् में आत्मनेपदी परस्मैपदी सभी धातुओं से सुट् होता है। पर विधिलिङ् के सार्वधातुक होने से लिङः सलोपो० (७।२।७९) से सकार लोप होकर श्रवण नहीं होता, आशीर्लिङ् में श्रवण होता है ॥ एधिषीष्ट की सिद्धि परि० १।२।११ के भित्सीष्ट के समान जानें। एधिषीष्ठाः थास् में बनेगा। भूयात् में 'स्कोः संयोगाद्यो० (८।२।२९) से यासुट् के सकार का लोप होगा। तथा पुनः इसी सूत्र से सुट् के सकार का लोप भी हो जायेगा॥ पचेत् की सिद्धि परि० ३।१। ६८ के पठेत् के समान जानें ॥

झेर्जुस् ॥३।४।१०८॥

झेः ६।१॥ जुस् १।१॥ अनु०—लिङः ॥ अर्थः—लिङादेशस्य झेः स्थाने जुस् आदेशो भवति ॥ उदा०—पचेयुः, पच्यासुः। भवेयुः, भूयासुः ॥

भाषार्थः—लिङादेश [झेः] 'झि' (परस्मैपद में) को [जुस्] जुस् आदेश हो जाता है ॥ विधिलिङ् आशीर्लिङ् दोनों में ही झि को जुस् हो जायेगा॥ पचेयुः भवेयुः में सूत्र ३।४।१०२ के समान सारे कार्य होकर प्रकृत सूत्र से झि को जुस् हो जायेगा॥ आशीर्लिङ् में पच् यास् झि=पच् यास् उस्=रुत्व विसर्गादि होकर पच्यासुः बन गया। विधिलिङ् में सार्वधातुक होने से शप् प्रत्यय होता है। पर आशीर्लिङ् लिङाशिषि (३।४।११६) से आर्धधातुकसंज्ञक होता है। अतः यहाँ शप् विकरण नहीं होता ॥

यहाँ से 'झेर्जुस्' की अनुवृत्ति ३।४।११२ तक जायेगी ॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च ॥३।४।१०९॥

सिजभ्यस्तविदिभ्यः ५।३॥ च अ० ॥ स०—सिच् च अभ्यस्तञ्च विदिश्च सिजभ्यस्तविदयः, तेभ्यः, इतरेतरयोगद्वन्द्वः ॥ अनु०—झेर्जुस्, लस्य, मण्डूकप्लुतगत्या ङित इत्यप्यनुवर्त्तते, नित्यं ङितः (३।४।९९) इत्यतः ॥ अर्थः—सिचः परस्य, अभ्यस्तसंज्ञके-

भ्यो वेत्तेश्चोत्तरस्य ङितो झेर्जुसादेशो भवति ॥ उदा०—सिच्—अकार्षुः, अहार्षुः । अभ्यस्तसंज्ञकेभ्यः—अबिभयुः, अजुहवुः, अजागरुः । वेत्तेः-अविदुः ॥

भाषार्थः—[सिजभ्यस्तविदिभ्यः] सिच् से उत्तर, अभ्यस्तसंज्ञक से उत्तर, तथा विद् धातु से उत्तर [च] भी झि को जुस् आदेश होता है ॥ अभ्यस्त और विदि का ग्रहण सिच् परे न रहने पर, अर्थात् लङ् में भी झि को जुस् हो जावे इसलिए है ॥ यहाँ प्रश्न यह है कि लट् लकार में झि को जुस् क्यों नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि यहाँ 'ङितः' की अनुवृत्ति मण्डूकप्लुतगति से आती है। सो ङित् लकार (लङ्) के ही झि को जुस् होगा ॥

यहाँ से 'सिचः' की अनुवृत्ति ३।४।११० तक जायेगी ॥

आतः ॥३।४।११०॥

आतः ५।१॥ अनु०—झेर्जुस्, सिचः ॥ अर्थः—पूर्वेणैव प्राप्ते नियमार्थमिदं सूत्रम् । सिचः=सिज्लुकि आकारान्तादेव झेर्जुस् भवति ॥ उदा०—अदुः । अधुः । अस्थुः ॥

भाषार्थः—पूर्वसूत्र से ही झि को जुस् प्राप्त था, पुनः यह सूत्र नियमार्थ है ॥ सिच् से उत्तर (सिच्लुगन्त से उत्तर) यदि झि को जुस् हो, तो [आतः] आकारान्त धातु से उत्तर ही हो ॥ यहाँ 'सिचः' एवं 'आतः' दोनों में पञ्चमी है। सो दोनों से अनन्तर झि सम्भव नहीं, अतः सिचः से यहाँ सिच्लुगन्त अर्थात् जहाँ सिच् का लुक् हो जावे, वहीं का ग्रहण होता है। प्रत्ययलक्षण से वहाँ सिच् से उत्तर 'झि' होगा। तथा श्रुति से आकारान्त धातु से उत्तर भी हो ही जायेगा ॥ दा धा स्था इन धातुओं के सिच् का लुक् गातिस्थाघुपाभूभ्यः० (२।४।७७) से हुआ है ॥

यहाँ से 'आतः' की अनुवृत्ति ३।४।१११ तक जायेगी ॥

लङः शाकटायनस्यैव ॥३।४।१११॥

लङः ६।१॥ शाकटायनस्य ६।१॥ एव अ० ॥ अनु०—आतः, झेर्जुस् ॥ अर्थः—आकारान्तादुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन ॥ उदा०—अयुः, अवुः । अन्येषां मते—अयान्, अवान् ॥

भाषार्थः—आकारान्त धातुओं से उत्तर [लङः] लङ् के स्थान में जो झि आदेश उसको जुस् आदेश होता है, [शाकटायनस्य] शाकटायन आचार्य के मत में [एव] ही ॥

यहाँ से सम्पूर्ण सूत्र की अनुवृत्ति ३।४।११२ तक जायेगी ॥

द्विषश्च ॥३।४।११२॥

द्विषः ५।१॥ च अ० ॥ अनु०—लङः शाकटायनस्यैव, झेर्जुस् ॥ अर्थः—द्विष्-धातोरुत्तरस्य लङादेशस्य झेर्जुस् आदेशो भवति, शाकटायनस्यैवाचार्यस्य मतेन ॥ उदा०—अद्विषुः । अन्येषां मते—अद्विषन् ॥

भाषार्थः—[द्विषः] द्विष् धातु से परे [च] भी लङादेश झि के स्थान में जुस् आदेश होता है, शाकटायन आचार्य के ही मत में ॥ अन्यों के मत में नहीं होगा, सो अद्विषन् (उन्होंने द्वेष किया) बनेगा ॥

तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥३।४।११३॥

तिङ्शित् १।१॥ सार्वधातुकम् १।१॥ स०—श् इत् यस्य स शित्, बहुव्रीहिः ॥ तिङ् च शित् च तिङ्शित्, समाहारो द्वन्द्वः ॥ अनु०—धातोः,प्रत्ययः,परश्च ॥ अर्थः—धातोर्विहिताः तिङः शितश्च प्रत्यया सार्वधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—भवति, नयति । स्वपिति, रोदिति । पचमानः, यजमानः ॥

भाषार्थः—धातु से विहित [तिङ्शित्] तिङ् तथा शित्=शकार जिनका इत्संज्ञक हो, उन प्रत्ययों की [सार्वधातुकम्] सार्वधातुक संज्ञा होती है ॥ शप् के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होकर सार्वधातुकाश्रित सार्वधातु० (७।३।८४) से 'भू' 'नी' को गुण होता है । स्वपिति रोदिति में तिप् की सार्वधातुक संज्ञा होने से रुदादिभ्यः सार्वधातुके (७।२।७६) से इट् आगम हो गया है । स्वप् इट् ति=स्वपिति, रुद् इट् ति=रोदिति बना । अदिप्रभृतिभ्यः०(२।४।७२)से शप् का लुक् हो ही जायेगा ॥ पचमानः की सिद्धि परि० ३।२।१२४ में देखें । यजमानः में भी इसी तरह जानें, केवल यहाँ पूङ्यजोः शानन् (३।२।१२८) से शानन् प्रत्यय होता है ॥

आर्धधातुकं शेषः ॥३।४।११४॥

आर्धधातुकम् १।१॥ शेषः १।१॥ अनु०—धातोः, प्रत्ययः, परश्च ॥ अर्थः—धातोर्विहिताः शेषाः (तिङ्शिद्भिन्नाः)प्रत्यया आर्धधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ तिङ्शितं वर्जयित्वाऽन्यः प्रत्ययः शेषः ॥ उदा०—लविता, लवितुम्, लवितव्यम् ॥

भाषार्थः—[शेषः] शेष अर्थात् तिङ्शित् से शेष बचे, धातु से विहित जो प्रत्यय, उनकी [आर्द्धधातुकम्] आर्द्धधातुक संज्ञा होती है ॥ तृच् तुमुन् तव्य प्रत्यय तिङ्शित् से शेष हैं, सो आर्द्धधातुसंज्ञक हैं । आर्धधातुक संज्ञा होने से सार्वधातु० (७।३।८४) से गुण, तथा आर्धधातुकस्ये० (७।२।३५) से इट् आगम हो जाता है ।

१. यहाँ से 'आर्द्धधातुकम्' की अनुवृत्ति ३।४।११७ तक जायेगी ॥

लिट् च ॥३।४।११५॥

लिट् १।१॥ च अ० ॥ अनु०—आर्द्धधातुकम् ॥ अर्थः—लिडादेशा ये तिबादयस्ते आर्द्धधातुकसंज्ञका भवन्ति ॥ उदा०—पेचिथ, शेकिथ । जग्ले, मम्ले ॥

भाषार्थः—[लिट्] लिडादेश जो तिबादि उनकी [च] भी आर्द्धधातुक संज्ञा होती है ॥

लिङाशिषि ॥३।४।११६॥

लिङ् १।१॥ आशिषि ७।१॥ अनु०—आर्द्धधातुकम् ॥ अर्थः—आशिषि विषये यो लिङ् स आर्धधातुकसंज्ञको भवति ॥ उदा०—लविषीष्ट, एधिषीष्ट ॥

भाषार्थः—[आशिषि] आशीर्वाद अर्थ में जो [लिङ्] लिङ् वह आर्धधातुकसंज्ञक होता है ॥ परि० १।२।११ के समान सिद्धि जानें । पूर्ववत् यहाँ भी आर्धधातुक संज्ञा होने से इट् आगम होता है ॥

छन्दस्युभयथा ॥३।४।११७॥

छन्दसि ७।१॥ उभयथा अ० ॥ अर्थः–छन्दसि विषये उभयथा सार्वधातुकम् आर्धधातुकं च भवति । अर्थात् यस्य सार्वधातुकसंज्ञा विहिता तस्यार्द्धधातुकसंज्ञाऽपि भवति, यस्यार्द्धधातुकसंज्ञा कृता तस्य सार्वधातुकसंज्ञाऽपि भवति ॥ उदा०—वर्धन्तु त्वा सुष्टुतय: (ऋ० ७।९९।७) । स्वस्तये नावमिवारुहेम । लिट् सार्वधातुकम्—ससृवांसो विशृण्विरे । सोममिन्द्राय सुन्विरे । लिङ् उभयथा भवति–उपस्थेयाम शरणं बृहन्तम् ॥

भाषार्थः—[छन्दसि] वेदविषय में [उभयथा] दोनों सार्वधातुक आर्धधातुक संज्ञायें होती हैं । अर्थात् जिसकी सार्वधातुक संज्ञा कही है, उसकी आर्धधातुक संज्ञा भी होती है । तथा जिसकी आर्धधातुक संज्ञा कही है, उसकी सार्वधातुक संज्ञा भी होती है । अथवा एक ही स्थान में दोनों संज्ञायें हो जाती हैं ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥